इस सूचना को पहिले पढिये.

यह समय शांतिपूर्वक सबसे मिलकर रहनेका है, बहुत लोग खंडन मंडनके विवादकी पुस्तकें छपवाना नहीं चाहते, तोभी स्थानकवासियों की तरफ से मुख वस्त्रिकानिर्णय, गुरु गुणमहिमा, जैनतत्त्वप्रकाश, वगैरह ८-१० पुस्तकोंकी अनुमान २००००-३०००० हजार प्रतियें छपकर प्रकाशित होचुकी हैं उन्होंमें भगवती, ज्ञाताजी, निरयावली, निशीथ, महानिशीथ आदि आगमोंके नामसे तथा आचार दिनकर, योगशास्त्र, ओघनिर्युक्ति आदि प्राचीन शास्त्रोंके नामसे और शिवपुराण आदि अन्यशास्त्रों के नामसे प्रत्यक्ष झूठ बोलकर व्यर्थ भोले जीवोंको धोखे में डालनेके लिये हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका ठहराया है और हाथमें मुंहपत्ति रखकर मुंह की यत्ना करके बोलने वाले सर्व जैनियों के ऊपर बहुत अनुचित आक्षेप किये व झगडा फैलाया, यह सब बातें सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे भव्यजीवोंको सत्य बातका निर्णय होने के लिये मेरेको स्थानक वासियों की मुंहपत्ति बांधने संबंधी सब पुस्तकों का और सब शंकाओंका समाधान अच्छी २ युक्तियों पूर्वक सर्व शास्त्र पाठों के साथ इस ग्रंथमें लिखना पडाहै। स्थानक वासी, बाईस टोले, ढूंढिये व साधु मार्गी इन चार नामोंमें ढूंढिया नाम विशेष करके सर्वत्र प्रसिद्ध है तथा "ढूंढत ढूंढत ढूंढलिया सब. वेद पुराण कुरानमें जोई। ज्यों दही मांहीसु मक्खन ढूंढत, त्यों हम ढूंढियों का मत होई॥१८॥" इस प्रकार यह लोग ढूंढिया नाम स्वीकार करते हैं इसलिये मैंने इस ग्रंथमें ढूंढिया नाम लिखा है इसपर कोई नाराज न होवे।

प्रेसवालोंकी कई तरहकी तकलीफोंसे यह ग्रंथ बहुत विलंबसे प्रकट हुआ है और छपाई में भी बडी गडबड रहगई है इसलिये प्रेसदोष, दृष्टिदोष, लेखक दोषकी पाठक गण क्षमा करें। प्रथम जाहिर उद्घोषणा नंबर १-२-३ पढकर फिर मूल ग्रंथ पढें और सत्य तत्त्वको ग्रहण करें।

इस ग्रंथको आप पढो. औरोंको पढाओ. मित्रोंको व आसपासके गांवोंमें भेजो. श्वेतांबर जैनों में घर घरमें प्रचार करो. तभी सत्य असत्यकी सर्वत्र परीक्षा होगी. सोनेकी कसवटी की तरह शुद्धोपयोगसे मिथ्यात्वको छोडना और चिंतामणिरत्नकी तरह सत्य बातरूप सम्यक्त्वको ग्रहण करना यही सच्चे जैनोंका पहिला कर्तव्य है। लघुकर्मी मोक्षगामी सत्य बात ग्रहण करतेहैं और गुरुकर्मी संसारगामी

॥ जाहिर खबर ॥

जैन साधु धर्मलाभ कहतेहैं, यहभी अनादि मर्यादाहै परन्तु नई रीति नहींहै । वीरप्रभुके समयमें नंदीषेणमुनि वेश्याके घरमें गोचरी गये तब धर्मलाभ कहाथा, उसके प्रति उत्तरमें मुक्त मिलानेके लिये वेश्या ने अर्थलाभ कहाथा, यह बात प्रसिद्धही है । धर्मलाभ आशीर्वाद का वचनहै और दयापालो यह उपदेशका वचनहै, आशीर्वाद और उपदेश के वचनोंकी ढूंढियोंको समझ नहींहै इसलिये हर समय सब जगह पर दयापालो कहा करतेहैं १, पहिलेके श्वेतवस्त्रवाले यतिलोग शुद्ध संयमी थे परंतु अभी बहुतसे यतिलोग आरंभ-परिग्रहवाले होगये और ढूंढिये लोग यतियोंकी निंदा करतेहुये जिनमूर्तिका भी उत्थापन करनेलगे इस लिये यतियोंसे भिन्नता दिखलानेके लिये तथा अनादि जिनमूर्तिकी मान्यताकी रक्षाकरनेके लिये व शुद्धसंयम धर्मकी जगतमें महिमा बढाने के लिये संवेगी नाम रखकर शुद्ध संयमी साधुओंने पीलेवस्त्र कियेहैं २, जिनराजके जन्माभिषेक, दीक्षा-केवलज्ञान-निर्वाण कल्याणक महोत्सव, नंदीश्वरद्वीपमें शाश्वतचैत्योंमें अट्ठाईमहोत्सव, जिनप्रतिमाकी पूजादि धार्मिक कार्योंमें देव-देवी-श्रावक-श्राविका आदिको छकायकी दया, १८ पापस्थानक सेवनका त्याग व जिनराजके अनंत गुणोंका स्मरण ध्यान होनेसे अशुभ कर्मोंकी निर्जरा, शुभ पुण्यानुबंधी पुण्यकी वृद्धि और मोक्षकी प्राप्तिहोतीहै ३, जिनप्रतिमाकी जल-चंदन-पुष्प आदि अष्ट प्रकार पूजामें जीवहिंसाका पाप बतलाकर निषेध करनेवाले ढूंढिये-तेरहापंथियोंकी अनसमझ और प्रत्यक्ष अनंत लाभकी प्राप्ति ४, जिनमूर्ति-तीर्थयात्राकी मान्यता वीरप्रभुके मोक्ष पधारे बाद नई शुरु नहीं हुई है किंतु अनादिसेहै और इसका निषेध करनेवालोंको छकायकी हिंसा, १८पापस्थानक सेवन करनेका पाप और जिनेश्वर भगवान् के गुणोंका स्मरण परम वैराग्य, शुभभावना वगैरह महान् धर्म कार्योंकी अंतरायका दोष आता है५, जिनप्रतिमाके द्वेषसे ढूंढियोंने मूलसूत्रों में व रामचरित्र-श्रीपालचरित्रादिमें कैसे २ पाठ और अर्थ बदलकर नये २ कौन २ पाठ बनाकर डालेहैं६, चैत्य विवाद निर्णय७, निक्षेप विवाद निर्णय ८, इत्यादि बातोंका तथा तेरहापंथियोंकी दया-दान विषयी सब शंकाओंका निर्णय ९, इन सबका निर्णय " श्रीजिनप्रतिमाको वंदन-पूजन करनेकी अनादि सिद्धि " नामा ग्रंथमें तथा " जाहिरउद्घोषणा नंबर ४-५-६" में लिखनेमें आवेगा ।

॥ ॐ ॥

॥ श्रीजिनाय नमः ॥

जाहिर उद्‌घोषणा नंबर १.

॥ मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करने वालोंको सूचना ॥

पहिले इस लेख को पूरा २ अवश्य पढिये.

सुलहो विमाण वासो, एगछत्ता मेहीणि वि सुलहा ॥
दुल्लहा पुण जीवाणं, जिणंदवर सासणे बोहिं ॥ १ ॥

इस अनादि संसारचक्रमें जन्म-मरण-रोग-शोक-आधि-व्याधि उपाधि-संयोग-वियोग-गर्भावास-नरक-तिर्यचादि अनंत दुःख भोगते हुए भी कभी पुण्ययोग से देवलोकमें वास होना तथा एकछत्र पृथ्वीका राज्य, लोकपूजा, सरस आहार, इष्टभोग वगैरह मिलने सुलभहै परन्तु संसारके अनंत दुःखों का विनाश करके मोक्षका अक्षय सुख को देने वाले श्रीजिनेश्वर भगवान्‌के वचनोंपर शुद्धश्रद्धा (सम्यग् दर्शन) प्राप्त होना बहुत मुश्किलहै।

"सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष मार्गः" शुद्ध सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र ही मोक्षका मार्गहै यह वाक्य जैनसिद्धांतों में प्रसिद्धही है, जबतक सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र इन तीनोंकी प्राप्ति न होगी तबतक किसी भी जीवका मोक्ष हुआ नहीं, होगा नहीं, और हो सकेगाभी नहीं, इसलिये मोक्षप्राप्ति की इच्छाकरने वालोंको सम्यग् दर्शनादि इन तीनोंको अंगीकार करने चाहिये।

जबतक जिनेश्वर भगवान्‌के वचनोंपर शुद्धश्रद्धा न होगी तबतक सम्यग् दर्शन कभी नहीं होसकता, जबतक सम्यग्दर्शन न होगा तब तक सम्यग् दर्शनके बिना पदार्थका यथार्थ बोध कभी नहीं होसकता जबतक पदार्थका यथार्थ बोध न होगा तबतक सम्यग् ज्ञान नहीं हो

देखो—ऊपरकी गाथाओंका भावार्थ ऐसाहै कि-जो पुरुष जिनाज्ञा के अनुसार सत्य बातरूप शुद्धश्रद्धाका निषेध करके अपने मतपक्षकी झूंठी बातरूप मिथ्यात्वको अपने कुलमें याने-समुदायमें स्थापन करे, वह अपने समुदायकी सद्गतिका नाशकरके दुर्गतिमें डालनेका दोषी होताहै ॥ १ ॥ उत्सूत्र (शास्त्र विरुद्ध) प्ररूपणा करने वालेको बोधीबीज सम्यक्त्वका नाश होताहै और अनंत संसार बढताहै, इसलिये प्राण जानेपरभी जन्म मरणादि दुःखोंसे डरनेवाले धीरपुरुष कभी उत्सूत्रप्ररूपणा नहींकरते ॥२॥ उत्सूत्रप्ररूपणा करनेवाला अपने चिकने (गाढ मजबूत) कर्मोंका बंध करताहै, कपट सहित माया मृषा बोलताहै तथा संसार बढाताहै,॥३॥ जिन आज्ञाके अनुसार सत्य बातको झूंठी बतला कर निषेध करनेवाला और उन्मार्गकी अपनी कल्पित झूंठी बात को सत्य कहकर स्थापन करनेवाला गूढ कपटी अंतर मिथ्यात्वरूप शल्य सहित होनेसे तिर्यंच योनिके आयुष्यका बंध करताहै ॥४॥ औरउन्मार्ग की बात जमानेसे जिनेश्वर भगवान्का कहाहुआ पंच महाव्रतरूप अपने चारित्र धर्मका नाश करताहै. इत्यादि बहुत बातें शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करनेवाले के लिये लिखी हैं ।

और यहबात सर्वजैन समाजमें प्रसिद्धहै कि-कोईभी प्राणी शास्त्र का एकपद, एकअक्षर या काना-मात्र-बिंदुकोभी उत्थापना करे या अर्थ उलटा करे या पहिलेका पाठ निकाल कर नया दाखिल करके सूत्र को और अर्थको उलट पुलट करदेवे तो वह अपने सम्यक्त्वका और चारित्रका नाश करके मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी होताहै ।

तथा सच्चे उपदेशसे एक जीवको सम्यक्त्वी बनानेसे वह जीव परंपरासे मोक्ष जाताहै. उससे ८४ लक्ष जीवायोनिके सर्वजीवोंको अभय दान देताहै. उसका लाभ सच्चा उपदेश देनेवालेको मिलताहै. और मिथ्या उपदेशसे किसी जीवको सम्यक्त्वसे भ्रष्ट करके मिथ्यात्वमें डालनेसे वह संसारमें रूलताहै. उससे ८४ लक्ष जीवायोनिकी घातकरताहै, उसका पाप मिथ्याउपदेश देनेवालेको लगताहै. इसलिये मिथ्याउपदेश देनेवाला ८४ लक्ष जीवायोनिका घातक महान्दोषी समझा जाताहै

और जो कोई साधु होकरके भी कभी बडीजीवहिंसा करे, चोरी करे, किसी से व्यभिचार सेवे, धनादि परिग्रह रक्खे और रात्रिभोजन

इसलिये भवभिरुयोंको ऐसे झूंठे हठ छोडनेमें कभी विलंब न करना चाहिये।

सम्यक्त्वीके लक्षण.

शुद्धश्रद्धावाले शुद्ध सम्यक्त्वी सच्चे जैनीका यही लक्षणहै कि-झूंठीप्रपंचबाजी, मायाचारी, हठाग्रह न करे. अपनीभूलको समझने या समझानेपर तत्काल सुधारलेवे झूंठीबातको त्याग करनेमें लोकलज्जा व गुरुपरंपराका हठ न रक्खे, वहतो जिनाज्ञानुसार चलकर कर्मविटंबनासे दूर होकर आत्मकल्याण करनेकी ही हमेशा चाहनाकरे और जबतक संसारमें रहे तबतक भवभवमें जिनाज्ञानुसार धर्मकार्य करनेकी भावना भावे. देखो-जिनाज्ञानुसार चलनेवाला शुद्ध सम्यक्त्वी थोड़ा तपकरे, थोड़ा जपकरे, थोडा ज्ञानपढे, थोडा चारित्रपाले या चारित्र लेनेकी भावना रक्खे, चारित्र धर्मपरः जिन आज्ञापर गाढ (दृढ) अनुराग रक्खे और जीवदया दान शीलादि यथा साध्य थोडे २ धर्मकार्य करे तो भी वो बडवृक्षके बीजकी तरह बहुत फलदेनेवाले होतेहैं. तथा सूर्यकी किरणोंकी तरह मिथ्यात्व-अज्ञानरूपी अंधकारका नाशकरके मोक्षनगरमें जानेके लिये रास्तामें कर्मरूपी कीचडको सुखाकर मोक्षनगरका रास्ता साफ करतेहैं और सम्यग्ज्ञानका प्रकाश करनेवाले होतेहैं उससे श्रेणिक महाराज व कृष्ण वासुदेव वगैरह महान्पुरुषोंकी तरह थोड़े धर्मकार्यभी निर्विघ्नतापूर्वक शीघ्र मोक्षदेनेवाले होतेहैं इसलिये शुद्ध श्रद्धासहित जिनाज्ञा मूजब थोड़े धर्म कार्य करने से भी आत्महित होता है, सर्व कर्मोंका नाश होताहै, जन्म-मरणादि दुःख विनाश होतेहैं और मोक्ष मिलनेसे अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है.

मिथ्यात्वीके लक्षण.

जोप्राणी पांच महाव्रत लेकर ऊपरसे साधुका वेषधारणकरले, परंतु उसके अंतरमें यदि मिथ्यात्वका वास होतो वह प्राणी हजारों सत्य बातोंको छोडकर किसीतरहके झूंठे आलंबन खडे करके सत्यबातको उथापन करताहै और झूंठीबातको स्थापन करनेके लिये बड़ापरिश्रम करताहै अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी होताहै वह अपने मनमें दूसरे सामनेवालेकी सत्यबातको न्यायपक्ष से समझने परभी सिर्फ लोकलज्जा व पूजा मान्यताका अभिमान तथा गुरुपरंपराके आग्रहसे जानबूझकर

करतेथे, जिन्होंके दानसे हजारों लाखों मनुष्योंका और पशुओंका पालन होताथा. ऐसे दातार धर्मी व गुरु भक्त जैनियोंके देशोंमें किसी जगह भी हमेशा मुंहपत्ति बांधनेवाला कोईभी साधु न मिला तोफिर दूर २ के अनार्य देशोंमें कैसे मिल सकताहै, कभी नहीं. और अनार्यदेशों में साधुको जाना कल्पता नहीं, वहां शुद्ध आहारादि मिलसकते नहीं तथा जैसा धर्म कार्यों के उपदेशका लाभ आर्यदेशोंमें मिलताहै वैसा लाभ अनार्य देशोंमें कभी नहीं मिलसकता, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधने वाले साधु कहीं २ दूर २ अनार्य देशोंमें होनेका बहाना बतलाना सर्वथा झूंठ है.

फिरभी देखिये-इस देशमें पहिले बडे २ दुष्काल पडेथे. तोभी जैन साधुओंको आहार मिलताथा. आहारके अभावसे आर्यदेश छोडकर कोई भी जैनसाधु अनार्यदेशमें नहीं गयाथा और उसके बादभी इस देशमें लाखों जैनियोंमें व करोडों सनातनधर्म वालोंमें ढूंढियोंके पूर्वजोंको आहार नहीं मिला तथा कुछभी धर्म देखनेमें न आया इस लिये दूर २ के अनार्य म्लेच्छ देशोंमें जाना पडा, बडे अफसोसकी बातहै कि अपनी नईबातको प्राचीन ठहरानेके लिये जैनसमाजको व सनातनी उत्तम हिंदुओंको आहार न देनेका व कुछभी धर्म न होनेका कलंक रूप ऐसी २ कल्पित झूंठी बातें बनानेमें ढूंढियोंको कुछभी विचार नहीं आता इसलिये ऐसी प्रत्यक्ष झूंठी गप्प चलाकर लवजीकी हमेशा मुंहपत्ति बांधनेकी बातको सच्ची साबित करना चाहते हैं सो कभी नहीं होसकती.

फिरभी देखिये विचार करिये-इस आर्य खंडमें भगवान्ने पंचमकाल में जैनशासनमें २१ हजार वर्ष तक अखंड परंपरासे साधु होते रहनेका फरमायाहै जिसमें बहुतसे साधु शिथिलाचारी होंगे, थोडे आत्मार्थी शुद्ध संयमी होंगे ऐसा कहाहै परन्तु सर्व भ्रष्टाचारी होजावेंगे, कोईभी शुद्धसाधु न रहेगा. इसप्रकार संयमी साधुओंका अभाव किसी सूत्रमें नहीं बतलाया, जिसपर भी ढूंढिये लोग भगवान्के वचन विरुद्ध होकर सर्व साधुओंको भ्रष्टाचारी ठहरा कर इस आर्य खंडमें शुद्ध साधुओंका सर्वथा अभाव बतलाते हैं और हमेशा मुंहपत्ति बांधनेके नये मत वालों को शुद्ध साधु ठहराते हैं यहभी प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणा है।

ढूंढिये कहतेहैं कि लवजीने आगम देखकर मुंहपत्ति बांधीहै उसीके अनुसार हमलोगभी आगमप्रमाण मुजब हमेशा मुंहपत्ति बांधतेहैं, यह भी

है यहभी प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणाही है क्योंकि दीक्षालेकर राजकुमार मुनियोंने मुंहपत्तिसे मुंह बांधा नहीं था इसलिये गृहस्थ नाईके मुंहबांधनेकी बातको आगेकरके भोले जीवोंको भ्रममें डालकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका मत स्थापन करना यही भूलहै। अगर गृहस्थ नाईकी तरह ढूंढिये मुंह बांधना मानते होवें तबतो मुखकोश जैसा लंबा वस्त्र लेकर नाक मुंह दोनों बांधने चाहिये, जिसके बदले नाक खुला रखकर अकेला मुंहबांधनेका ठहराना सर्वथा अनुचित है।

---

४. विपाकसूत्रके प्रथम अध्ययनमें गौतमस्वामी मृगाराणीके जन्मांध बहुत दुःखी और रोगीष्ट मृगापुत्रको देखनेके लिये गये, तब मृगापुत्रके ठहरनेके दुर्गंधी वाले भूमिघरका दरवाजा खोलनेके समय मृगाराणीने वस्त्रसे पहिले अपना मुंहबांधा और दुर्गंधीका बचाव करनेकेलिये गौतमस्वामीको भी कहा कि आपभी अपनी मुंहपत्तिसे मुंह बांध लें. इस बातसे साबित होताहै कि गौतमस्वामीके मुंहपर मुंहपत्ति पहिले बांधी हुई नहीं थी, किंतु हाथमें थी. इसलिये मृगाराणीने दुर्गंधीका बचाव करने के लिये मुंहपर बांधनेका कहा, यदि पहिलेसे बांधी हुई होती तो फिर दूसरी बार बांधनेका कभी नहीं कहती, यह बात अल्पमति वाले भी अच्छी तरहसे समझ सकते हैं, तोभी ढूंढिये लोग इस सत्य बातको उडानेके लिये और अपनी कल्पित बात को स्थापन करनेके लिये कहतेहैं कि मृगाराणीने नाक बांधनेका कहाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना सर्वथा झूठहै "मुहपोत्तीयाए मुहं बंधेह" मुंहपत्तिसे मुख बांधो, ऐसा मूल पाठ होने परभी नाक बांधनेका कहना प्रत्यक्ष झूठहै और गौतमस्वामी के तथा मृगाराणी के लिये दुर्गंधीका बचाव करने संबंधी एकही अधिकारमें एकही समान पाठ होनेसे यदि गौतमस्वामीका पहिलेसे मुंहबंधा हुआ मानोंगे तो मृगाराणीकाभी मुंह पहिलेसे बंधा हुआ ठहर जावेगा और मृगाराणीका मुंह खुला मानोंगे तो गौतमस्वामीका भी मुंह खुला मानना पडेगा. एकही बात में, एकही संबंध में दोनोंके लिये मुंह बांधनेका समान पाठ होनेपरभी मृगाराणीका मुंह खुला और गौतमस्वामीका मुंह बंधा हुआ ऐसा पूर्वापर विरोधी (विसंवादी) उलट पुलट अर्थ कभी नहीं होसकता इसलिये गौतमस्वामीका पहिलेसे ही मुंहबंधा हुआ ठहराना बडी भूल है।

क्रियाकी आलोचना करलेता तो आराधक होकर वैमानिक देवलोकमें अवश्यही उत्पन्न होता. इसलिये सोमिल तापसके काष्ठमुद्रासे मुंहबांधनेका दृष्टांत बतलाकर ढूंढियेलोग हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराते हैं. सो प्रत्यक्ष ही श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाकी विराधना करके मिथ्यात्वी बनतेहैं।

७. फिरभी देखिये जैसे उस देवताने सोमिलको मिथ्यात्वी क्रियासे छुड़वाकर सम्यक्धर्ममें पीछा स्थापन किया. इसी तरहसे जिनेश्वर भगवान् के भक्त सर्व श्रावकोंका यही कर्तव्य है कि- सोमिलकी तरह हमेशा मुंहपत्ति बांधने वाले ढूंढियोंको इस मिथ्यात्वी क्रियाको किसी भी तरह छुड़वाकर उन्होंको जिनाज्ञानुसार सम्यक्धर्ममें स्थापन करें. आराधक बनावें तो बड़ा लाभ होगा।

---

८. ढूंढिये कहतेहैं कि- "महा निशीथ" सूत्रके ७ वें अध्ययनमें लिखाहै कि- मुंहपत्ति बांधेबिना प्रतिक्रमण करे, वाचना देवे-लेवे, वांदना देवे या इरियावही करे तो पुरिमड्ढका प्रायश्चित्त आवे. ऐसा कहकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरातेहैं सोभी प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि 'महानिशीथ' सूत्रके ७ वें अध्ययनमें आलोयणाके अधिकारमें मुंहपत्तिको अपने मुंहके आगे रक्खे बिना साधु प्रतिक्रमणादि क्रिया करे तो उसको पुरिमड्ढका प्रायश्चित्त आवे मगर मुंहमागे रखकर उपयोगसे कार्य करे तो दोष नहीं. इससे हमेशा बांधना नहीं ठहर सकता. और "कन्नोहियाए वा मुहणंतगेण वा विणा इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढं वा" इस वाक्य का भावार्थ ऐसा होताहै कि-गौचरी जाकर पीछे उपाश्रय में आवे बाद गमनागमन की आलोयणा करनेके लिये इरियावही करने वाला साधु प्रमादवश मुंहपत्तिको मुंह के आगे आड़ी डालकर कानोंपर रखकर इरियावही करे तो उस को मिच्छामिदुक्कडंका प्रायश्चित्त आवे और सर्वथा मुंहके आगे रक्खे बिना इरियावही करे तो उसको पुरिमड्ढ का प्रायश्चित्त आवे. इसतरहसे दोनों बातोंके लिये दो तरहके अलग २ प्रायश्चित्त कहे हैं सो इसका भावार्थ समझे बिना और आगे पीछेके पूर्वापर संबंधवाले पाठको छोड़कर बिना संबंध का अधूरा पाठ भोले लोगोंको बतलाकर कानोंमें मुंहपत्ति डाले बिना इरियावही करे तो मिच्छामि दुक्कडं या पुरिमड्ढका प्रायश्चित्त कहें

(मुंहपत्ति हाथपत्ति का विचार)

१०. ढूंढिये कहतेहैं कि मुंहपर बांधे सो मुंहपत्ति और हाथमें रक्खे सो हाथपत्ति' ऐसी ऐसी कुयुक्तियें लगाकर भोले लोगों को भ्रम में डालतेहैं सोभी उत्सूत्र प्ररूपणा ही है क्योंकि देखो- रजको दूर करने के कारनमें आनेवालेको रजोहरण कहतेहैं उसको बगलमें रक्खे तो भी रजोहरण ही कहेंगे परंतु बगल पुंछ कभी नहीं कहसकते. वैसेही मुंह-आगे रखनेके बदलेमें हाथमें रखनेसे भी हाथपत्ति कभी नहीं कह सकते किंतु मुंहपत्ति ही कहेंगे। ढूंढिये भी आहार करने के समय मुंहपत्तिको गोडे पर या आसन पर रखतेहैं तो भी उसको मुंहपत्ति ही कहतेहैं परंतु गोडापत्ती या आसनपत्ती नहींकहते इसी तरहसे मुंहपत्तिको हाथमें रखने से भी हाथपत्ति कभी नहीं कहसकते किंतु मुंहपत्ति ही कहेंगे। और नैगम-संग्रह-व्यवहार नय के मतसे साधू मुंहपत्तिके लिये वस्त्रकी याचना करनेको जावे या याचना करे तथा वस्त्र ले, उसको भी मुंहपत्ति कहतेहैं उस मुंहपत्तिको उपयोग पूर्वक मुंहआगे रखकर यत्ना से बोलने वालों को हाथपत्ति कहकर मुंहपत्तिका निषेध करते हैं सो सर्वज्ञ शासन में नयवादकी भंगकरके जिनाज्ञाकी उत्थापना करने वाले महान् दोषी बनतेहैं।

११. फिरभी देखिये-सर्वज्ञ भगवान् निष्फल क्रिया का उपदेश कभी नहीं देते तो भी ढूंढिये मुंहपत्ति को हमेशा मुंहपर बांधी रखतेहैं सो निष्फल क्रियाहै क्योंकि जब साधू दिनमें या रात्रिमें मौनपने काउस्सग्ग ध्यानकरे अथवा महीना दो महीना चार छः महीना काउस्सग्ग ध्यानमें खडारहे उस वक्त बोलनेका सर्वथा त्यागहोताहै तबभी हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका ढूंढिये कहतेहैं सो निष्फल क्रियाकी प्ररूपणा करतेहैं और उपासकदशा- अंतगडदशा- अनुत्तरोववाई- उत्तराध्ययन- निशीथादि आगमोंमें मुंहपत्ति शब्द देखकर उसका भावार्थ समझे विना मुंहपत्ति शब्द से हमेशा मुंहपर बांधनेका अर्थ करते हैं सो सर्वज्ञ शासनके विरुद्ध होनेसे उत्सूत्र प्ररूपणा ही है।

(एक मायाचारी की कुतर्क देखो)

१२. कोई २ ढूंढिये ऐसी भी कुतर्क करतेहैं कि सूत्रोंमें मुंहपत्ति चलीहै परंतु बांधने का नहीं लिखा वैसेही हाथमें रखनाभी नहीं लिखा. यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै. क्योंकि देखो प्रथम तो शास्त्रके

नाक मुंह दोनोंकी यत्ना हो सकती है और मुंह परसे सचित्त रज वगैरह की प्रमार्जनाभी हो सकतीहै अगर बांधी हुई होवे तो यह सब कार्य नहीं बन सकते इसलिये मुंहपत्ति हमेशा बांधी रखनसे मुंहपत्तिसे करने योग्य सर्व कार्य अधूरे रहतेहैं, उस से मुंहपत्ति रखनेका पूराफल नहीं होसकता इसलिये सूत्र विरुद्ध होकर अधूरी क्रिया करने रूप हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखना योग्य नहीं है।

(देखो हलाहल झूठ का नमूना)

१६. प्रवचनसारोद्धार (प्रकरण रत्नाकर भाग तीसरा), आचार दिनकर, ओघनिर्युक्ति, आवश्यक बृहद्वृत्ति, यतिदिनचर्य्या, योग शास्त्र वृत्ति, आदि सर्व प्राचीनशास्त्रोंमें तथा साधुविधि प्रकाश आदि सर्व आधुनिक शास्त्रोंमें "सम्पातिमा जीवा मक्षिका मशकादयस्तेषां रक्षणार्थं भाषमाणै र्मुखे मुखवस्त्रिका दीयते" तथा "मुखवस्त्रिका कराभ्यां मुखाग्रे धृत्वा" इत्यादि, इस प्रकार मुंहपत्ति हाथमें रखना तथा बोलते समय मुंहआगे रखकर बोलना और प्रतिक्रमणादि धर्मक्रिया करनी ऐसा खुलासा पूर्वक स्पष्ट लिखाहै तो भी ढूंढिये इन सर्वशास्त्रोंके नामसे हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बांधनेका ठहरातेहैं सो प्रत्यक्ष हलाहल झूठ बोल कर उत्सूत्र प्ररूपणा से उन्मार्ग बढाते हैं। बडे २ प्राचीन शास्त्रोंके नामसे भोले लोगों को भ्रममें डालनेमें ही ढूंढियोंने अपनी बहादुरी समझ रक्खी है, परन्तु ऐसी झूंठीप्रपंच बाजी करनेसे कर्म बंधन होनेका भय होता तो ऐसा अनर्थ कभी न करते आत्मार्थी भव्यजीवों को ऐसे झूठे प्रपंच को त्याग करना ही हितकारी है।

(थूंक में असंख्य जीवों की उत्पत्ति)

१७. हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने से बोलते समय मुंहपत्तिके थूंक लगताहै मुंहपत्ति गीली होती है, उस में समय २ असंख्य पंचेंद्रीय संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, यह पंचेंद्रिय जीवोंकी हिंसा का दोष हमेशा मुंहपत्ति बांधने वाले ढूंढियों को लगताहै जिस पर भी उस का झूठा बचाव करने के लिये ढूंढिये कहते हैं कि संमूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति के १४ स्थान बतलाये हैं उस में थूंक का १५ वां स्थान नहीं बतलाया इसलिये थूंकमें जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती यह भी ढूंढियों का कहना सर्वथा सूत्र विरुद्ध है क्योंकि देखो १४ स्थानों मे मुख के मलमें तथा सर्व अशुचि पदार्थोंमें जीवोंकी उत्पत्ति होना बतलायाहै

"मुखे मुंहपत्ती देई" इस लेखको बदलाकर "मुंहपत्ती मुखे बांधी" ऐसा झूंठा छपवा दिया उसके बाद फिर भी संवत् १९५४ में भीमसिंह माणेकने भी भूलसे वैसाही छपवादिया, प्रूफ सुधारने वाला ढूंढक श्रावक नौकरथा उसने पुस्तक छपवाते समय ऐसा बदल बदल करने का अनर्थ करदिया. इतने वर्ष होगये हजारों पुस्तकें फैल गई परन्तु किसी भी साधु श्रावक ने इस बात का ध्यान न दिया और ढूंढिये ऐसे २ झूठे बनावटी लेख आगे करके भोले जीवों को बतला कर व्यर्थ उन्मार्ग स्थापन करके मिथ्यात्व बढाते हैं उनोंको अपनी भूल का शुद्ध भावसे मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिये।

(ढूंढिये भ्रम में पडकर भूलते हैं)

२०. प्रश्न व्याकरण, महानिशीथ ओघनिर्युक्ति आदि प्राचीन शास्त्रोंमें "मुहपंतगेण" शब्द आयाहै इसका अर्थ 'मुखानंतक' मुखवस्त्रिका, मुंहपत्ति ऐसा होताहै, तोभी ढूंढियों की समझमें नहीं आया इस लिये "मुहपंतगेण" शब्द देखकर मुंहपत्तिका 'दोरा' ऐसा गमारी अर्थ करके महानिशीथ, ओघनिर्युक्ति की चूर्णि आदि शास्त्रोंके नामसे दोरा डालकर मुंहपत्ति बांधनेका समझ बैठे हैं सो निष्केवल भ्रममें पडकर भूलतेहैं। "मुहपंतगेण" का अर्थ मुखवस्त्रिका है इसलिये दोरा का अर्थ कभी नहीं होसकता और ओघनिर्युक्ति आदि शास्त्रकारोंने 'बोलनेका कामपडे तब मुंहआगे मुंहपत्ति रखकर बोलना' ऐसा अर्थ स्पष्ट खुलासा सहित लिखदियाहै जिसपर भी प्रत्यक्ष शास्त्रकारोंके विरुद्ध होकर अपनी अज्ञान कल्पनासे ओघनिर्युक्ति आदि के नाम से हमेशा मुंहपर बांधनेका ठहराने वाले व्यर्थही बालचेष्टा जैसा हठाग्रहसे उन्मार्ग बढातेहैं।

(भुवनभानु केवलि आदि रासोंमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना नहीं लिखा)

२१. ढूंढिये कहतेहैं कि भुवनभानु केवलि के रासमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना लिखाहै यहभी झूठहै. क्योंकि इस रासमें रोहिणी नामा एक सार्थवाहकी लडकी को निंदा विकथा करनेका स्वभाव पडगया था सो अच्छी हित शिक्षा देने वालोंको भी उल्टा जवाब देती थी. जिन मंदिरमें देवदर्शन करनेको और उपाश्रयमें व्याख्यान सुननेको आवे

ायडा मांडे निग्रसट कर्म ॥ साधुजन मुख मुमती यांधी कहे ? जिन
में ॥ १ ॥" ऐसा लेख है इसका भावार्थ यहहै कि फजर में उठकर
द्धावान् भव्यजीव जिनमन्दिर में जिनराजकी पूजा करें, गुरुकी सेवा
रें. स्वाध्यायादि ६ धर्मकार्य करें. अब विचार करना चाहिये कि जैसे
पुंडपापर्व में अमारी घोषणाकी व्याख्या करनेके प्रसंगमें यकरीदकी
पशुवलिकी रौद्र हिंसाकी पुष्टि कभी नहीं होसकती वैसेही जिन
दिरमें पूजा करनेके प्रसंगकी व्याख्या करनेमें प्रत्यक्ष मिथ्यात्वका हेतु
प हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका लेख कभी नहीं लिखा जासकता
रंतु विपरीत बातका अतिशयोक्ति से प्रसंगवश उपहास कर सकते
. वैसेही हरिबलमच्छी के रास बनाने वालेने जिनपूजा, गुरुसेवा के
संगसे अतिशयोक्ति में "साधुजन मुख मुनती बांधी कहे? जिन धर्म"
ह वाक्य कहेहैं याने-ढूंढियेलोग मुंहपर मुंहपत्ति हमेशा बांधी रखने
ा कहतेहैं सो जैनधर्म विरुद्ध है ऐसा गंभीराशयसे मीठे वाक्य से
पहास कियाहै और लिखीत प्रतोंमें (कहे?) यह शब्द वक्रोक्तिवाचक
ा परंतु रास छपवानेके समय (क) अक्षर भूलसे रहगया होगा
ा "सम्यक्त्वमूल बाहर ब्रतकी टीपकी" तरह किसी ढूंढक अनुयाई
ेखकने जानबूझ कर 'क' अक्षर निकाल दिया होगा और 'हे' की
जगह 'है' करके गुजराती भाषा बिगाड कर हिंदी भाषा बनाडाली,
ूल से वैसा ही छपकर प्रकट हो गया उसको देखकर सब ढूंढिये
भ्रममें पडगये हैं। इस लिये हरिबल मच्छी के रासके नामसे हमेशा
मुंहपत्ति बांधनेका ठहराना सर्वथा झूठहै।

---

२४. ढूंढिये कहतेहैं कि हितशिक्षाके रासमें हमेशा मुंहपत्ति
बांधनेका लिखाहै यहभी झूठहै क्योंकि देखो ढूंढिये साधु कभी दवाई
लेनेके लिये, जल पीनेके लिये या कफ आदि थूकने के लिये नाटक के
परदेकी तरह मुंहपत्तिको किसी समय नीचेके होठपर हटालेतेहैं, कभी
डाढीपर खींच लेतेहैं, कभी एक कानपर से दोरेको हटा लेतेहैं उससे
दूसरे कानपर ध्वजकी तरह मुंहपत्ति लटकने लगतीहै और कभी गाडी
के बैलके जोतर (जूसर) की तरह गलेमें खींच लेते हैं इस लिये हित
शिक्षा के रासके लेखकने ढूंढियोंको मुंहपत्ति की ऐसी विटंबना न कर
नेकेलिये "मुखे बांधीने मुंहपत्ति, हेठे पाटो धारी ॥ अति हेठी दाढीये

जोतर गले निवारी ॥ १ ॥ एकवाने घम्म सम कहीं" इत्यादि उपदानके वाक्य लिखेहैं उसका भावार्थ समझे बिना ऐसे २ प्रमाण आगे करके ढूंढिये लोग हमेशा मुंहपत्ति बांधना ठहरातेहैं पुष्ट करते हैं और खुशी मनातेहैं यही बडी अनसमझ की बातहै।

(शिवपुराणादिमेंभी हमेशा मुंहपत्ति बांधना नहींलिखा)

२५. ढूंढिये कहते हैं कि 'शिवपुराण' में "हस्ते पात्र दधानश्च तुंडे वस्त्रस्य धारकाः" इस वाक्यमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना लिखाहै ऐसा कहते हैं सोभी झूठहै क्योंकि इस वाक्यमें हाथमें पात्र रखनेवाले और मुंहपर वस्त्र रखने वाले लिखेहैं। इसका भावार्थ ढूंढियोंकी समझमें नहीं आया इसलिये हमेशा मुंह बांधनेका ले बैठे हैं देखो-हाथमें पात्र कहनेसे आठोंही प्रहर रात्रि-दिन हमेशा हाथ में पात्र नहीं लियाजाता किंतु जब आहार आदि कार्य होवे तब उस प्रयोजन के लिये लियाजाताहै. वैसेही मुंहपर मुंहपत्ति कहने से जब बोलनेका कार्य होवे तब मुंहपर मुंहपत्ति रखनेमें आती है परन्तु हमेशा बांधनेका नहीं ठहर सकता. जिसपर भी हमेशा बांधने का हठ करने वाले ढूंढियोंको मुंहपत्तिकी तरह सोते, बैठते, सूत्रपढते, व्याख्या वांचने वगैरह सर्व कार्योंमें हमेशा हाथमें पात्र भी रखना चाहिये और हमेशा हाथमें पात्र रखना मंजूर न करें तो हमेशा मुंहपत्ति बांधनेकी अज्ञानता का हठाग्रहको छोडदेना योग्य है।

(नाभा में भी ढूंढिये हारगये थे)

२६. पंजाब देशमें 'नाभा' में मुंहपत्तिकी चर्चामें ढूंढियोंने हमेशा मुंहपत्ति बांधने बाबत 'शिवपुराण' का वाक्य आगे कियाथा उसपर वहांके मध्यस्थ विद्वानों ने अपने फैसलेमें ऐसे लिखाहै कि "आपके प्रतिवादीके हठके कारण और उनके कथनानुसार हमें शिवपुराणके अवलोकनकी इच्छा हुई. बस इस विषयमें उसके देखने की कोई आवश्यकता नहीं थी ईश्वरेच्छासें उसके लेखसे भी यही बात प्रकट हुई कि वस्त्रवाले हाथको सदा मुखपर फैंकता है इससे भी प्रतीत होताहै कि सर्व काल मुखवस्त्र के मुखपर बांधे रहने की आवश्यकता नहीं है किंतु वार्तालापके समय पर वस्त्रका मुखपर होना जरूरीहै" इस लेखमें हाथमें मुंहपत्ति रखना ठहरायाहै इस लिये 'नाभा' की चर्चा के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराने वाले मायाचारी सहित प्रत्यक्ष मिथ्यावादीहैं।

(ढूंढिये अपनी थोडी सी अकल खर्च करें)

२७. देखो ढूंढिये लोग संवेगी साधुओंको दंडी २ कहा करते हैं परन्तु संवेगी साधु हमेशा हर समय हाथमें दंडा नहीं रखते किन्तु आहार वगैरह के लिये बाहिर जाना पडे तब हाथमें धारण करतेहैं नहींतो उपाश्रयमें पडारहताहै। इसी तरहसे ढूंढियोंको अपने कथन मूजिब थोडीसी अकल खर्च करके विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि बोलनेके समय मुंहआगे मुंहपत्ति रखने वालोंको मुखपर वस्त्र धारण करने वाले कहेजाते हैं उससे ढूंढियोंके ही दंडी २ कहनेके न्यायकी तरह हमेशा मुंहपर वस्त्र बांधा रखना नहीं ठहर सकता इसलिये हमेशा बांधने का हठकरने वालों की अनसमझहै। और श्रीमालपुराणमें भी जैनसाधुको हाथमें दंडा, मुखपर वस्त्र, बगलमें रजोहरण धारण करनेवाले लिखे हैं. सो यह तीनों वस्तु जब काम पडे तब उस २ कार्य के उपयोगमें ली जातीहैं नहीं तो पास में पडी रहतीहैं, इस बातसे भी यह तीनों वस्तु हमेशा बांधी रखनेका नहीं ठहर सकता। इसी तरह से 'अवतारचरित्र' में भी मुंहपत्ति शब्दका पर्याय मुखपट्टी नाममात्र लिखाहै उसको देखकर हमेशा बांधने का ठहराना यही भूलहै।

(नाक और मुंह दोनों से जीव मरते हैं)

२८. ढूंढिये कहते हैं नाककी श्वास (हवा) से जीव नहीं मरते इस लिये हम नाक खुला रखते हैं, यहभी झूट है क्योंकि नाकके श्वासोश्वासके सपाटे से छोटे २ जीवों की हिंसाका कहनाही क्या परन्तु डांस-मच्छर-मक्खी आदि भी नाकमें घुस जाते हैं और मरभी जाते हैं यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै इसलिये नाककी गरम श्वाससे त्रस-स्थावर दोनों प्रकारके जीवोंकी अवश्य हानि होतीहै तथा बोलते समय मुंहकी श्वास बाहर निकलते ही फैलकर जल्दी ठंडी होजातीहै और नाककी श्वासतो १०-११ अंगुल तक जोर से धमनी की तरह गरम २ चली जातीहै इसलिये मुंहकी श्वाससे भी नाककी श्वाससे जीवों को पीडा विशेष ज्यादे होती है और दिनभरके २४ घंटों में १-२ घंटे बोले तब मुंहसे जीवोंको पीडा होगी परन्तु नाकसे तो २४ घंटे हमेशा जीवों को पीडा होतीहै इसलिये ढूंढियोंकी सच्ची जीवदया तबही समझी जावे जब कि मुखकी तरह नाक भी हमेशा बांधा रक्खें, नहीं तो दयाके नामसे भोले लोगोंको भ्रममें डालने का ढोंगही समझना चाहिये।

(मुंहपत्ति में दोरा डाल कर बांधना नहीं लिखा.)

२९. जब ढूंढियों को पूछने में आता है कि मुंहपत्ति में दोरा डाल कर बांधना किसी सूत्र में नहीं लिखा जिस पर भी दोरा क्यों डालते हो इसपर ढूंढिये कहते हैं कि जैसे साध्वीके साडेमें दोराडालने का नहीं लिखा तोभी दोरा डाला जाताहै वैसेही मुंहपत्तिमें दोरा डालने का नहीं लिखा तोभी समझ लेनाचाहिये ऐसा कहकर मुंहपत्तिमें दोरा डालना ठहरातेहैं, सोभी अनुचितहै क्योंकि देखो-साध्वीके साडेमें तो लज्जा ढकनेके लिये दोरा डालने में आता है परंतु मनुष्योंका मुंह लज्जनीय नहीं है इसलिये गुप्त और लज्जनीय स्थान बांधनेका दृष्टान्त बतलाकर जगतमें प्रकट और शोभनीय मुंह बांधनेका दोरा साबित करना बडी भारी निर्विवेकता है। दूसरी बात यहभी है कि जब कभी दुर्गंधी की जगह जाना पडे या उपाश्रय की प्रमार्जना करने के समय सूक्ष्म रजकण मुंहमें न जाने पावे इसलिये दोरा डाले बिनाही मुंहपत्तिको त्रिकोणी करके मस्तक के पीछेके भागमें गांठ बांधके ऐसी रीतिसे थोडी देरके लिये नाक-मुंह दोनों बांधनेकी मर्यादा बतलाई है उसरीतिको छोडकर अपनी कल्पनासे दोरा डालनेका नया नाक खुलारखकर अकेला मुंहको हमेशा बांधनेका नया ढोंग चला कर सर्वज्ञ शासनकी हीलना करवाना सर्वथा अयोग्य है।

(बोलनेमें कभी उपयोग न रहे तोभी हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखना बहुत बुरा है)

३०. ढूंढिये कहतेहैं कि बोलते समय मुंहकी यत्ना करनेका कभी उपयोग न रहे तो दोष लगे जिससे हमेशा बांधी रखना अच्छा ही है उससे कभी उघाडे मुख बोलनेका दोष न लगे. यह भी ढूंढियों का कहना अनसमझका है क्योंकि साधुका धर्म ही उपयोगमें है, जिस को शुद्ध उपयोग नहींहै उससे शुद्ध संयम धर्म कभी नहीं पल सकता. देखो - किसी का उपयोग न रहा अवश्य स्त्रीका रूप देखने लगगया उसमें इसके अपना मन हमेशा पट्टा बांधा रखना कोई अच्छा नहीं। मन अपना सदा किसी वस्तु का कभी भटकनेमें उपयोग न रहा उस म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विषय [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करें भी अच्छा नहीं कहसकता किंतु उस-

युक्ति आदि प्राचीन शास्त्रोंमें लिखाहै। तीसरी जगह लिखतेहैं प्राचीन शास्त्रोंमें हमेशा बांधना नहीं लिखा किंतु मुखमात्रु केवलि आदिके रासोंमें लिखाहै। चौथी जगह लिखतेहैं जैन शास्त्रोंमें नहीं लिखा परंतु अन्य दर्शनियोंके शिवपुराणादि में तो लिखाहै। पांचवीं जगह लिखतेहैं गोभिल तापसने अपने मुंहपर काष्ठकी पटडी बांधीथी उसीतरह हमभी हमेशा मुंहपत्ति बांधतेहैं। छठी जगह लिखतेहैं पैरोंका भूषण पैरोंमें शोभे, वैसेही हमारे मुंहपर बांधीहुई मुंहपत्ती शोभतीहै। सातवीं जगह लिखतेहैं किसी शास्त्रमें हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका स्पष्ट लेख नहींहै परंतु मुंहपत्ति शब्दसे मुंहपर बांधना मानतेहैं। आठवीं जगह लिखतेहैं बोलते समय मुंहपत्तिके थूंक लगताहै मुंहपत्ति गीली होतीहै परंतु संमूर्छिम जीवों की उत्पत्ति हानि नहीं होती, थूक अशुचि पदार्थ नहींहै। नवमी जगह लिखते हैं नाकके श्वासोश्वाससे किसी जीवकी हानि नहीं होती इसलिये हम नाक खुली रखतेहैं। दशवीं जगह लिखतेहैं वायुकाय के जीवोंकी दया पालन करनेके लिये मुंहपत्ति बांधी रखतेहैं। ग्यारहवीं जगह लिखते हैं विष्टाआदि अशुद्ध जगह की मक्खी अपने मुंहपर बैठने न पावे इस लिये मुंहपत्ति बांधी रखतेहैं। बारहवीं जगह लिखतेहैं जगतमें मकटी २ परन्तु ढकी आती है वैसेही हमारा मच्छा मुंह हमेशा ढका रहताहै। तेरहवीं जगह लिखतेहैं जैसे साध्वीके साडा दोरेसे बांधा जाताहै, वैसे ही हमारे मुहपत्ति भी दोरेसे बांधनेमें आतीहै। चौदहवीं जगह लिखतेहैं मुंहपत्ति बांधने वाले सीमंधर भगवान का समावसरण (?) मात्र जाते हैं। पंदरहवीं जगह लिखतेहैं मूलसूत्रोंमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना नहीं लिखा परन्तु बोलते समय हमारेसे बारबार उपयोग नहीं रहता इसलिये प्रमाद के कारण बांधी रखतेहैं। इत्यादि तरह २ की पूर्वापर विरोधी मनमानी झूठी २ बातें लिखकर भोले लोगोंको बहकातेहैं और कुयुक्तियोंसे सर्वज्ञ शासनमें हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका मिथ्यात्व फैलाते हैं. जिसमें लिखनेके बातोंका थोडासा दिग्दर्शन मात्र समाधान इस "जाहिरउद्घोषणा" के प्रथम व दूसरे में बतलाया है और अन्य सब शंकाओंका व मुंहपत्ति संबंधी ढूंढियोंकी तरफसे आजतक छपी हुई सब पुस्तकों के लेखोंका विस्तारपूर्वक निर्णय आगमादि शास्त्र पाठों के साथ "आगमानुसार मुंहपत्तिका निर्णय" नामा ग्रंथमें लिखाहै, पक्षपातको छोडकर सब दिखलायेहैं उसको सब सज्जनगण पूरा २ पढ कर सत्य ग्रहण करें।

जाहिर उद्घोषणा. नम्बर २.

(झूंठको छोडो और सत्यको ग्रहण करो)

॥ इसको भी पूरा २ अवश्य ही पढिये ॥

(हमेशा मुंहपत्ति बाधी रखनेमें ३६ दोषोंकी प्राप्ति)

३३. देखिये अपनेसे किसी कार्यमें पूरा २ उपयोग न रहे कुछ भूल होजावे, दोषलगे तो पश्चाताप करके प्रायश्चित्त लेनेसे शुद्धहोतेहैं इसीलिये प्रतिक्रमणादि क्रियाएँ शास्त्रोंमें बतलायीहैं । परंतु अपनी प्रमाद दशाकी थोडीसी भूलको आगे करके अनादि सच्ची मर्यादाका उत्थापन करनेसे बडा अनर्थ होताहै । इसी तरहसे ढूंढियोंने उपयोग न रहनेसे मुंहपत्ति बांधी रखनेका नया रिवाज चलाया किंतु अब इस बातमें अनेक दोषोंका सेवन करना पड़ताहै, सो नीचे बतलातेहैं:—

१. अनादि कालके सर्व साधुओंको हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने का झूंठा दोष लगाते हैं ।

२. आगमादि शास्त्रोंके नामसे प्रत्यक्ष झूंठ बोलकर हमेशा मुंह-पत्ति बाधी रखनेका ठहरातेहैं ।

३. भगवती सूत्रमें तथा ज्ञाताजी सूत्रमें हजामत करनेवाले गृ-हस्थ नाइयोंने राजकुमारोंके केश काटनेके लिये थोड़ी देर नाक मुंह बांधेथे ऐसा अधिकार है, उस बातको आगे करके ढूंढिये साधुपनेमें हमेशा मुंह बांधनेका ठहराने वाले अपनी हंसी करवातेहैं ।

४. निरयावली सूत्रमें अन्यलिंगी सोमिल तापसने मिथ्यात्व दशा में अपने मुंहपर काष्टमुद्रा बांधीथी, उसी प्रमाणको आगेकरके ढूंढिये भी अपना मुंह हमेशा बाधा रखकर प्रकटपने अन्यलिंगी मिथ्यात्वी बनते हैं ।

५. थूंककी गीली मुंहपत्ति चौमासेमें सुखाने परभी १-२ रोज तक नहीं सूखती, उसमें समय २ असंख्य संमुर्च्छिम पंचेंद्रीय मनुष्यों की उत्पत्ति और हानि होनेका पाप बांधतेहैं ।

६. वर्षा चौमासेमें थूंककी गीली मुंहपत्ति रात्रिमें मुंहपरसे अलग रखतेहैं, उसमें नीलण-फुलणकी उत्पत्ति होनेसे अनंत जीवोंकी हिंसाका दोष लगता है।

७. थूंककी गीली मुंहपत्तिको हर समय मुंहपर बांधी रखनेसे मुंह झूंठा रहताहै, झूंठे मुंहसे सूत्र पढतेहैं, व्याख्यान बांचतेहैं यहभी ज्ञानावर्णीय कर्म बंध का हेतुहै।

८. बांधीवालेको व्याख्यान बांचते समय मुंहमेंसे बहुत थूंक उडताहै, इसलिये मुंहपत्तिके अंदर कपड़ेका दूसरा टुकड़ा (छोटी मुंहपत्ति) रखनेकी विटंबना करनी पड़तीहै।

९. मौन रहने परभी हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेसे बाल वेश जैसी निष्फल क्रिया होनेका दोष लगताहै।

१०. मुंहपर मुंहपत्ति बांधी रखनेसे नाक कान आंख ललाट मस्तक वगैरह छोटे २ स्थानोंपर कोई सूक्ष्मजीव या सचित्त रजादि गिरजावे तो मुंहपत्तिसे उसकी प्रमार्जना नहीं होसकती तथा छींक करते समय और दुर्गंधिकी जगह मुंहपत्तिसे नाककी यत्ना भी नहीं होसकती यह अधूरी क्रियाका दोष लगताहै।

११. ढूंढिये साधु दवाई लेनेके समय या थूकनेके समय मुंहपत्तिको वार वार ऊंची नीची करके नाटकके पर्देकी तरह मुंहपत्तिकी बड़ी विटंबना करतेहैं।

१२ होठोंके ऊपर हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेसे बोलते समय, छींक-उबासी-डकार खांसी करते समय मुंहके श्वासोश्वास द्वारा पेटमें से दुर्गंधयुक्त अशुद्ध पुद्गल बाहिर निकलतेहैं, वह सब मुंहपत्ति के चिपकजातेहैं और पीछेही पेटमें आतेहैं, जिससे पेटमें रोगकी उत्पत्ति होतीहै तथा मुंहमें दुर्गंध होतीहै इसलिये अनुभवी वैद्य और डाक्टर लोग हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेमें अनेक नुकसान बतलातेहैं।

१३. विपाक सूत्रमें तथा ओघनिर्युक्ति आदि शास्त्रोंमें कभी दुर्गंधिकी जगह पर या उपाश्रयकी प्रमार्जना करनेके समय मुंहपत्तिको नाक मुंह दोनोंके ऊपर थोडीदेर बांधनेका कहाहै, जिसपरभी ढूंढिये आदरपूर्वक नहीं बांधते यहभी सूत्रकी आज्ञा लोपन करनेका दोष लगताहै।

१४ एकवेंत चारअंगुल (१६ अंगुल) समचौरस या अपने २ मुंह प्रमाणे समचौरस मुंहपत्ति रखनेकी मर्यादाहै परंतु ढूंढिये एक कपड़ेकी लंबी चौड़ी लेकर लपेट कर बांधतेहैं यहभी शास्त्र विरुद्धहै

१५ "मुहणंतगेण" पाठका मुखवस्त्रिका अर्थ है, जिसपरभी मुंहपत्तिमें डोरा डालनेका झूठा अर्थ करते हैं यहभी उत्सूत्र प्ररूपणाका दोष लगता है।

१६. धूपके दिनोंमें पसीनासे मुंहपत्तिके उपर मैलके दाग पड़ जाते हैं, कभी २ दिनभरमें नयी नयी २-३ मुंहपत्ति बदलनी पड़ती हैं नहीं तो वास आने लगती है।

१७. कभी छींक करते समय या श्लेष्मके समय नाकका मैल मुंहपत्तिके उपर लग जाता है तो बहुत बुरा लगता है, यहभी विचारनेकी है।

१८ होठोंके उपर मुंहपत्ति बांधी रखनेसे जोरसे बोलने परभी बहुत साधुओंकी आवाज रुक जाती है, गूंगेके जैसा स्वर भंग हो जाता है, जिससे धर्मका उपदेश सुनने वालोंको साफ २ समझमें नहीं आता है।

१९. बैरागियोंकी तरह मुंहका रूप दिखता है इसलिये अन्य दर्शनीय लोग मुंहबंधे मुंहबंधे कहकर जैन साधुकी हंसी करते हैं, जिससे जगत् मान्य सर्वज्ञ शासनकी अपभ्राजना होती है, उससे उन लोगोंके कर्म बंधन होते हैं और हमेशा मुंह बांधकर शासनकी अपभ्राजना करवाने वाले दुर्लभ बोधी होते हैं।

२०. दशवैकालिकमें 'अहं मुंहणंमी भासंतो' इसपाठमें मुंहको ढका करके बोलनेका कहा है, सो हाथ में मुंहपत्ति रखकर मुंहको ढका करके बोलने वालोंको जब १-२ घंटे तक बोलनेका काम पड़े तब हाथको कष्ट होता है, उससे उपयोगभी विशेष शुद्ध रहता है परंतु हमेशा बांधी रखने वालेको मुंहको ढका करनेकी जरूरत नहीं रहती, जिससे हाथको कुछभी कष्ट नहीं होगा, उपयोगभी शुद्ध नहीं रहता है इसलिये दशवैका. अ[illegible]की आज्ञा उत्थापन होती है तथा उपयोग शून्य बोलनेका दोष आता है।

२१ शास्त्रोंमें त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीवोंकी रक्षा करनेके लिये मुंहपत्ति रखनेका कहा है [illegible] दृष्टिसे एक वायुकायकी रक्षा करनेके लिये मुंहपत्ति रखनेका कहते हैं सोभी शास्त्र विरुद्ध बोलते हैं।

२२ मुंहपत्तिके साथ और मुंह दोनोंकी प्रतिलेखना करनेका [illegible] है, [illegible] दृष्टिसे मुंहपत्तिकी [illegible] नहीं करनेका कहते हैं और [illegible] [illegible] नहीं होती [illegible] करते हैं [illegible] [illegible]

२३ [illegible] साधुओं और [illegible] [illegible]

और होठोंको साफ करना, रंग लगाना या बडेहोठको कटवाकर सुधराना इत्यादि कार्यकरने वालेको दोष बतलायाहै, यह बात खुला मुंह हो तब शोभाके लिये की जातीहै, परंतु बांधा हुआ हो तो नहीं, यदि खुला मुंह हो तो लोकलज्जासेभी साधु होठोंको रंगना वगैरह दोष न लगा सके परंतु बंधाहुआ होतो गुप्तदोष लगा सकताहै, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेसे निशीथसूत्रकी आज्ञा उत्थापन होतीहै और दांत होठ रंगने वगैरह का गुप्तदोष लगानेकी मायाचारी भी कर सकताहै।

२२. भाषा बोलनेके लिये पुद्गल ग्रहण करने तथा भाषा बोलनी और आगे बोलनेमें आवे, यह सब भाषावर्गणा कही जातीहै, "पन्नवणा" सूत्रमें इस भाषा वर्गणामें नियमा शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष यह चार स्पर्श बतलायेहैं, परंतु भाषा बोलेबाद गुरु (भारी) वगैरह आठस्पर्श होनेका नहीं बतलाया, जिसपरभी ढूंढियेलोग "पन्नवणा" सूत्रके नाम से भाषा वर्गणामें आठस्पर्श होनेका कहकर वायुकायके जीवोंकी हानि करनेका ठहरातेहै, यहभी सर्वथा सूत्र विरुद्धहै।

२३. उववाई, भगवती, ज्ञाताजी आदिसूत्रोंमें श्रावकोंको दुपट्टे का उत्तरासन रखनेका जगह २ अधिकार आयाहै, यह उत्तरासन ब्राह्मणोंकी जनोईकी तरह रखा जाताहै, कभी काम पडे तब उसका छेडा मुंहके आगे रख सकतेहैं, उससे नाक मुंह दोनोंकी यत्ना होतीहै यह बात प्रत्यक्ष अनुभवसे सिद्ध है, जिसपरभी ढूंढियेलोग उत्तरासनका अर्थ मुखकोशकी तरह मुंह बांधना करतेहैं, यहभी सूत्र विरुद्ध होनेसे उत्सूत्र प्ररूपणाहीहै।

२४. जब डाक्टर लोग चीराफाडीका काम करतेहैं तब दुर्गंधिका और राज्य युद्धमें जहरी धुंआका बचाव करनेके लिये नाक-मुंह दोनों ढक लेतेहैं तथा विवाह शादी, राजदरबार, जाहिर सभा वगैरहमें कई लोग अपने मुंहके आगे उत्तरासनका छेडा या रुमाल आदि रखतेहैं. यह श्रेष्ट व्यवहारहै. परंतु इन बातोंसे नाक खुला रखकर अकेला मुंह बांधा रखनेका साबित नहीं होसकता. जिसपरभी ढूंढियेलोग भोलेजीवोंको उपरकी बातें बतलाकर हमेशा मुंह बांधनेका ठहरातेहैं यहभी प्रत्यक्ष झूठा मायाचारीका प्रपंचहै।

२५. जिनेश्वर भगवान्ने मुंहके आगे वस्त्रादि रखकर उपयोग से बोलने वालेकी भाषाको निर्दोष कहाहै और ढूंढिये इस [illegible] के

विरुद्ध होकर मुंहपति बांध कर बोलने वाले की भाषा को निर्दोष कहते है, इसलिये जिन आज्ञा के उत्थापन करने वाले बनते हैं। एक जिनराज की आज्ञा उत्थापन करने वालों को अतित, अनागत और वर्तमान काल के अनंत तीर्थंकर महाराजों की आज्ञा उत्थापन करने का दोष आता है, उससे अनंत संसार बढता है।

३६. ऊपर मुजब जिनाज्ञा विरुद्ध होकर हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखकर फिरनेसे जैनलिंग बदल जाता है, जैनलिंग बदल जानेसे, द्रव्य मुनिधर्म चला जाता है, द्रव्य मुनिधर्म जानेसे, अन्यलिंग हुआ, अन्य लिंगको जैनलिंग कहनेसे, श्रद्धारखनेसे और गुरु माननेसे, सम्यग् दर्शन जाताहै, सम्यग् दर्शन जानेसे सम्यग् ज्ञान जाता है, सम्यग् ज्ञान जानसे सम्यग् चारित्र जाता है, इस तरहसे खास मोक्षके हेतु सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्रके जानेसे मिथ्यात्व आताहै, मिथ्यात्व आनेसे द्रव्य और भाव दोनों प्रकारका साधुका धर्म चला गया, द्रव्य-भावसे साधुका धर्म जानेपरभी शुद्ध साधु कहलानेसे झूठा ढोंगहुआ, झूठे ढोंग में जैन शासनके नामसे भोलेलोगोंको फंसानेसे सच्चेमोक्ष मार्ग का उत्थापन हुआ, सच्चे मोक्षमार्गका उत्थापन होनेसे संसार भ्रमणका फल हुआ संसार भ्रमण करनेसे ८४ लक्ष जीवायोनिकी घात होनेका दोष आया इस प्रकार हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराने में जिनाज्ञाकी उत्थापना मिथ्यात्वकी प्राप्ति और संसार भ्रमणादि अनेक दोषोंका सेवन करना पडता है परंतु तत्त्व दृष्टिसे कुछभी लाभनहीं है, जिसपरभी ढूंढिये लोग 'जिनवर फुरमाया, मुंहपत्ति बांधो मुख उपरे' ऐसी २ जिनराजके नामसे रागबनाकर हजारों पुस्तकें छपवाकर बडे २ शास्त्रोंके नामसे झूठी धोखे बाजी करके हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराकर आप डूबतेहैं और अपने भक्तोंकोभी डूबाते हैं (इसका पूरा २ विशेष निर्णय मूल ग्रंथमें देखो इस प्रकार हमेशा मुहपत्ति बांधना अनर्थका मूल होनेसे इस ग्रंथको पढे बाद ढूंढिये व तेरहापंथी साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविका अपनों को भी सच्चा इसबातका आग्रह कभी न करेंगे, इतनेरोज अंधरूढिसे बांधी या बांधनेकी पुष्टिकी उसका प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होकर बांधने का त्याग करके सत्य बात अवश्य ग्रहण करेंगे, यही परम हितकारी है।

(वायुकायकी दया पालन करनेके लिये मुंहपत्ति बांधने वालोंको तथा दया २ का नाम रटने वालोंको नीचे लिखे प्रमाणे हिंसाके कार्य त्याग करने योग्यहैं)

१. ढूंढिये साधु लंबा ओघा रखते हैं, जिससे चलते समय नीचे लटकता रहता है, उससे समय २ वायुकाय के असंख्य जीवोंकी हानि होती है अतएव लंबा ओघा छोडकर संवेगी साधुओंकी तरह शास्त्र प्रमाणके अनुसार ३२ अंगुल प्रमाणे और चद्दरके अंदर ढका हुआ रहसके ऐसा छोटा ओघा रखना योग्य है।

२. ढूंढिये ओढनेकी चद्दरको गांठ बांधते हैं जिससे चलते समय सामनेकी हवा आनेसे नावके पालकी तरह चद्दरमें हवा भर जाती है उससे पीठके पीछे ढोलकी तरह चद्दर ऊंची होजाती है, उससे भी वायुकायके जीवोंकी हानि होती है अतएव गमारोंकी तरह चद्दरके गांठ बांधना छोडकर संवेगीसाधुओंकी तरह खुली चद्दर ओढना योग्य है।

३. ढूंढिये साधु ऊपरसे मुंहपत्ति बांध लेतेहैं परंतु नीचे से खुली रखते हैं, जिससे हिलती रहती है, उससे भी समय २ वायुकायकी हिंसा होती है अतएव यदि पूरी २ दया पालन करना होतो मुंहपत्तिको नीचेसे भी बांध लेना चाहिये या ऊपर मुजब अनेक दोष समझकर हमेशा बांधनेका त्याग करना योग्य है।

४. ढूंढिये साधुओंको बाजारमें व्याख्यान बांचनेके लिये प्रत्येक गांव २ में कहीं २ तंबु शामियाने खडे किये जाते हैं, पाल वगैरह बांधे जाते हैं तथा चौमासेमें ढोलकी चद्दरें डलवाकर छायाकी बैठक की जाती है और तपस्या के पूरके उत्सवपर खास मंडप बनवाकर ध्वजा पताकायें लगाई जाती हैं, उसमें खड्डे व खीली गाडने वगैरहमें पृथ्वीकायकी, पाल, शामियाना, ध्वजा, पताका आदिसे वायुकायकी और चौमासेमें अपकाय, नीलण फूलण आदि छ कायके अनेक जीवोंकी हिंसा होती है इसकी त्याग करना योग्य है। यदि ढूंढिये साधु अपने लोगोंको ऐसे हिंसाके कार्य करनेकी न कहें और उसमें जाकर बैठने की मनाई कर दें तो इस हिंसाका बचाव मालूम हो सकता है।

[illegible]. ढूंढिये साधु अपने लोगोंके लिये अनेकों जगहपर चौमासी पक्खि, संवत्सरी पक्खि, तपस्या के पूरके पक्खि उपवासोंके और साथ

लेने को जाते हैं. उसमें त्रस और स्थावर अनेक जीवोंकी हानि होती है; इस रिवाज का त्याग करके वायुकायकी दया पालने के लिये मुंहपत्ति बांधने वालों को किसी तरह की सूचना करवाये बिनाही विहार करके दूसरे गाव जाना योग्य है।

---

८ मगध, बंगाल वगैरह देशोंमें चावल, अंधाडी, आंब, तिल, यव इत्यादि वस्तु धोनेका प्रायः प्रत्येक घरमें प्रसिद्ध रिवाजहै, इसलिये स्थानोंमें ऐसे निर्दोष धोवन साधुको लेनेकी आज्ञाहै, वहभी कितनी देरका बना हुआहै इत्यादि पूछकर, वर्ण-रस-गंधकी परीक्षा करके या थोडासा हाथमें लेकर चाखकर पूरा निर्णय करके पीछे लेनेका कहाहै पूर्वधरादि दिव्यज्ञानी पूर्वाचार्योंने ऐसे धोवनको अचित्त हुए बाद अनुमान ३ प्रहरका काल बतलायाहै. बाद जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै इसलिये उसके समयके अंदरमें वापरकर खलास करदेना चाहिये, बहुत देरका लेनेकी या ज्यादे रखनेकी मनाईहै। ढूंढियोंको इस बातका पूरा ज्ञान नहींहै और गृहस्थोंके वासी पिंडो धोनेका या हाडे, कुंडे, लोटे, गलास आदि पात्र-वाले झूठे बर्तनोंको मांजनेका मैला पानीको धोवन समझ कर लेतेहैं, यह प्रायः सचित्त जल होताहै कभी ज्यादे राखोडीके कारण अचित्त होजावे तोभी दो घडी बाद पीछा सचित्त होजाताहै, उसमें अनंतकाय और फुंआरे आदि त्रसजीवोंकी उत्पत्ति होतीहै ऐसे जल ढूंढिये साधु लेकर शामतक रखतेहैं, पीतेहैं. उसमें कभी फुंआरे देखनेमें आतेहैं, तब नदी, तलाव, कूप आदिके पासमें गीली जगहमें जाकर फेंकतेहैं. उससे परस्पर शस्त्र होकर उन फुंआरोंके तथा गीली जगहके दोनों प्रकारके जीवोंका नाश होताहै. किसी समय अन्य दर्शनी लोग देख लेतेहैं तब बडी निंदा होतीहै. धर्म बंधनका व जैनशासनके उड्डाह होनेका हेतु बनताहै. ऐसे कारण मारवाड आदिमें बहुतबार बन चुकेहैं। और कोई २ ढूंढिये कभी २ कुम्हार आदिके घरका नही गोबर का मैला पानी लेतेहैं. उससेभी शासनकी हिलना (अवज्ञा) होतीहै यह सब बातें सूत्र विरुद्धहैं, द्रव्य और भाव दोनों प्रकारकी हिंसाके हेतुहैं इसलिये ऐसे जल लेनेका त्याग करना योग्यहै।

९ भगवती सूत्रमें साधुको आहार पानी तीन प्रहर तक रखने की आज्ञा दी है सो गरम जल, त्रिफलाका जल, या छाछकी आछ, कांजी आदि जल को कारण वश उत्कृष्ट काल मर्यादा बतलायी है परंतु

लेतेहैं और खातेहैं यहभी त्याग करने योग्यहै।

१३. आषाढ चौमासेसे कार्त्तिक चौमासे तक हरिपत्तिके शाक वगैरह में तीन इन्द्री वाले छोटे २ कुंथुवे आदि त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, जिससे शास्त्रकारोंने चौमासेमें श्रावकोंकोभी हरिपत्ति खानेका त्याग करनेका बतलायाहै, इसलिये संवेगी साधु हरिपत्तिके शाक, चटनी आदि नहीं लेते। ढूंढियोंको इस बातकाभी ज्ञान नहींहै, ढूंढिये श्रावक हरिपत्तिके शाक आदि बनातेहैं और उनके साधु लेतेहैं यहभी असंख्य त्रस जीवोंकी हिंसाका हेतु होनेसे त्याग करना योग्यहै।

१४. बहुत रोजका आचार, मुरब्बा आदिमें उसी वर्णवाले अनंतकाय निगोद (फूलण) उत्पन्न होतीहै, प्रत्यक्ष स्वाद बदल जाता है, तार आतीहै, उनमें सूक्ष्म त्रस जीवोंकीभी उत्पत्ति होतीहै। ढूंढियों को इस बातका भी ज्ञान नहीं है, जिससे ढूंढिये साधु ऐसे आचार, मुरब्बे आदि लेते हैं यहभी त्याग करने योग्य है।

१५. बासी सीरा, लापसी, खीचडी, चावल, रोटी वगैरहमेंभी त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, जैसे अग्निमें उष्ण कायके व बरफमें शीत कायके जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, वैसेही ओसर मोसर आदिके जीमण में पहिले रोज रात्रिको बनाये हुए सीरा लापसी आदि यदि दूसरे दिन फजर तक गरम २ रहे तोभी उसमें उष्ण कायके जीव उत्पन्न होतेहैं तथा सरदीमें रोटी आदि बहुत ठंडे रहतेहैं तोभी उसमें शीत कायके जीव उत्पन्न होतेहैं और कभी २ रोटी खीचडी आदिमें तारबंध आते हैं, स्वाद फिर जाताहै, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै, संवेगी साधु ऐसी वस्तु कभी नहीं लेते। ढूंढियोंको इस बातका भी ज्ञान नहींहै, इसलिये जीमण वारके तथा शीतला पूजनेके व गुरुवोंके बरसी सालके बचे हुए सीरा, लापसी, बडे, गुलगुले, मालपुवे, खसपुडी, रोटी, खीचडी आदि बासी आहार लेकर खातेहैं यहभी असंख्य त्रस जीवोंकी हिंसाका हेतु होनेसे त्याग करने योग्यहै

१६. जो ढूंढिये कहतेहैं कि आधाकर्मी दूषणसे [illegible]

या बहुत रोजका, सरस या निरस, सार या असार, घृतवाला या बिना घृतका, लुखा और क्षीरका भोजन या उडदके बाकुले आदि जैसा आहार मिलता वैसा लेतेथे, यदि उडदके बाकुले आदि निरस आहार भी न मिलता तोभी अदिग्न मनसे समभाव रहतेथे" ऐसा आचारांग सूत्रमें कहाहै परंतु उसमें वासी रोटी.खीचडी आदि लेनेका नाम नहीं है और बहुत दिन का ठंढा वासी आहारमें सूखी पुडी, खाजा, लड्डु, घेवर, खाखरे, भुनेहुए चने और चने या चावलके आटेका सातु आदि अनेक वस्तु निर्दोषहै, उनको भी बहुत रोजका ठंढा आहार कहा जाताहै, ऐसी वस्तु लेनेमें कोई दोषनहींहै इसलिये भगवान्‌के नामसे आचारांग सूत्रका नाम आगे करके वासी रोटी, खीचडी आदि खानेवाले सूत्र के ऊपर और भगवान्‌के ऊपर झूठा दोष लगातेहैं तथा असंख्य त्रस जीवोंका भक्षण करके पापके भागी होतेहैं।

१७. फिरभी देखो विचारकरो भगवान् अनंत बल वीर्य पराक्रम वालेथे, दिव्यज्ञानी, शुद्ध उपयोगी, अप्रमादी, निर्ममत्वी, मास क्षमण आदि तपस्याके पारणे में तीसरे प्रहरमें अपरिचय वाले अज्ञात घरोंमें गौचरी जाने वालेथे, अनेक तरहके उपसर्ग और परिसह सहन करके केवलज्ञान प्राप्त करके जगत्‌के ऊपर अनंत उपकार करके मोक्षगयेहैं परंतु ढूंढियोंमें ऐसे एकभी गुण नहीं किंतु विशेष करके अपने रागी भक्तोंके घरोंमें गौचरी जातेहैं ममत्वभावसे व लोभ दशासे सरस २ गरिष्ट आहार लेकर शरीरको पुष्ट करतेहैं और अपने स्वादके लिये या विहारमें भातारूप आहार अपने साथमें लेजाने के लिये सूर्यका उदय होतेही गृहस्थों के घर जाकर वासी रोटी आदि व बहुत दिनों का आचार और चुल्हे परका प्राय कच्चा जल लेतेहैं फिर भगवान्‌के नाम से लोगोंको बहकाकर अपनी अज्ञान कल्पनाको पुष्ट करते हुए त्रस जीवोंकी उत्पत्ति वाला आहार खाकर निर्दोष बनतेहैं, यही बडी अज्ञानताहै।

१८. देखो शामको च्यारबजे कोई साधु किसी गृहस्थके घरमें गौचरी गया होय उसके रसोई होनेमें देरीहोये तो वह कहताहै कि महाराज गरम रसोईमें थोडा विलंबहै परंतु फजरकी ठंडी रोटी हाजरहै लीजिये इसप्रकार फजर का बनाया हुआ आहार शाम को ठंढा कहा जाताहै भगवान तीसरे प्रहर गौचरी जातेथे तब ठंढा आहार मिलता

२२. आषाढ महीनेमें आद्रा नक्षत्र बैठनेपर वर्षाऋतु गिनी जाती है, जिससे आमके फलमें जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, स्वादभी बदल जाताहै इसलिये पूर्वाचार्योंने गुजरात, मारवाड, कच्छ, मालवा, मेवाड, दक्षिण वगैरह देशोंमें आद्रा नक्षत्र बैठेबाद धर्मी श्रावकोंको आंब खानेका त्याग करना बतलायाहै, जिससे आंबेका अचित्त रसकोभी संवेगी साधु नहीं लेते। ढूंढियोंको इस बातकाभी ज्ञान नहीं है, इसलिये आद्रा बैठेबाद आंबका रस लेतेहैं, यहभी त्रस जीवोंको भक्षण करनेका दोष होनेसे त्याग करने योग्यहै।

---

२३. ढूंढिये साधु जब आहारादिके लिये गृहस्थोंके घरमें जातेहैं, तब चौरकी तरह चुपचाप चलेजाते हैं, यहभी अनेक अनर्थोंका मूल है क्योंकि देखो- गृहस्थोंके घरमें चुपचाप चले जानेसे बहुत जगह बहु, बेटी आदि खुले शरीर बैठी हों, शरीरकी शोभा करती हो, कभी स्नान करते समय, वस्त्र बदलते समय वस्त्र रहित हो या कभी कोई स्त्री-पुरुष आपसमें हास्य विनोद काम चेष्टा वगैरह करतेहों ऐसे समय यदि चुपचाप साधु घरमें चला आवे तो लज्जा जातीहै, अप्रीति होतीहै, किसी को क्रोधभी आजावे, उलंभा मिलताहै, या कभी अकेली वस्त्र रहित स्त्री को देखकर साधु को विकार उत्पन्न होजावे अथवा ऐसे समय साधुको देखकर स्त्रीका चित्त बिगड जावे तो बडा अनर्थ होजावे। कभी अन्यदर्शनीके घरमें चुपचाप चले जानेपर झगडा होजावे, गालियें खानी पडें, शासनकी उडाह होवे, इसलिये चौरकी तरह गृहस्थों के घरमें चुपचाप चलेजाना बहुत अनर्थका मूल होनेसे सर्वथा अनुचितहै।

२४. फिरभी देखिये- अच्छी नीतिको जानने वाले विवेकी गृहस्थ लोग भी अपनी बहु, बैन बेटी आदिकी बे शर्मी अवज्ञा न होनेके लिये अपने या अन्य किसी के घरमें चुप चाप नहीं जाते, किन्तु खुंखारा, कासी आदि चेष्टा करके या किसी तरहका आवाज करके पीछे घरमें प्रवेश करते हैं तो फिर सर्वज्ञ पुत्र कहलाने वाले जैनसाधु नाम धराने वाले होकर प्रत्यक्ष जगतके व्यवहार विरुद्ध गृहस्थोंके घरमें चौरकी तरह चुपचाप चलेजाना, यह कैसी अज्ञानदशा कहीजावे। यदि कोई शंका करेगा कि किसी तरहकी आवाज करके जानेसे भक्तलोग अशुद्ध आहार को शुद्ध करके देंगे जिससे साधुको चुपचापही जाना योग्य है, यहभी

अन समझकी यातहै क्योंकि जैनसाधुको पूर्वकर्म और पश्चात्कर्म आदि यहुत वातोंका पूर्वापर उपयोग रखकर आहार आदि लेनेकी सर्वज्ञ भगवान्को आज्ञाहै जिस साधु को पूर्वापरका (आगे-पीछेका) इतनाही उपयोग नहीं होगा वह साधु आहार आदिके लिये गृहस्थोंके घरमें जानेके योग्यही नहीं है। देखो संवेगी साधु 'धर्मलाभ' का उच्चारण करके गृहस्थोंके घरमें प्रवेश करतेहैं और सव तरहसे उपयोग पूर्वक निर्दोष शुद्ध आहार लेतेहैं (धर्मलाभ कहना शास्त्रानुसार युक्तियुक्त प्राचीन नियमहै इसको नयी कल्पना कहने वाले ढूंढियोंकी वडी भूल है इसका विशेष खुलासा आगे लिखनेमें आवेगा)

२५. फिरभी देखो-खास ढूंढियों का ही छपवाया हुआ निशीथ सूत्रके चौथे उद्देशमें पृष्ठ ४२-४३ में "जे भिक्खू निग्गथीणं उवस्सयंसि अविहाए अणुप्पविसई, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ ॥२५॥ अर्थः— जो साधु साध्वीके उपाश्रयमें अपना आगमन जानाये विना [खांसी आदि किये विना] प्रवेश करे, प्रवेश करते को अच्छा जाने ॥ २५" तो प्रायश्चित्त आवे। इस लेखमें जब साध्वीके उपाश्रयमें भी किसी प्रकारकी सूचना किये विना जानेवाले साधुको प्रायश्चित्त वतलायाहै। इस वातपर विचार किया जावे तो वहु, वैन, वैटी, दासी वाले गृहस्थोंके घरोंमें चौरकी तरह चुपचाप चले जाने वाले प्रत्यक्ष जिनाज्ञाकी विराधना करके अनेक अनर्थका मूल और भावहिंसाका हेतु होनेसे त्याग करने योग्यहै।

---

२६. ढूंढिये साधु नित्य पिंडका दोष टालनेके लिये एकांतरे वारा वंधीसे गोचरी आतेहैं, यहभी अनर्थका हेतुहै क्योंकि देखो ढूंढियों के भक्त गृहस्थ लोग यह वात अच्छी तरहसे समझ लेते हैं कि साधु आज हमारे घर गोचरी आये हैं कल रोज न आवेंगे, परसों आवेंगे, जिससे वे लोग वाराके रोज जल्दीसे आहार आदि वना कर धर रखते हैं। ढूंढिये साधु उस आहार पानी आदिको ग्रहण करते हैं उससे आधाकर्मी आदि अनेक दोष लगते हैं, खास साधुके आनेके उद्देशसे जल्दी छ कायकी हिंसा होतीहै. ढूंढिये ऐसे आहारको निर्दोष समझतेहैं। परंतु तत्त्व दृष्टिमें दोष वालाहीहै और नित्य पिंडभीहै। जैनसाधुकी अज्ञात और अनियत गोचरी कहीहै कभी लगोलग २-४ रोज एकघर में चले जावें और १, २ रोज या ५-७ रोज न भी जावे परन्तु आज आये,

कल न आवें, परसों आवेंगे, इत्यादि किसी तरहका नियम न होना चाहिये। एक रोजकी बातहै हमारे गुरु महाराज नागोर शहरमें एक ढूंढियोंके बड़े श्रावकके घरमें गोचरी गयेथे, उसघरमें सिर्फ १-२ मनुष्य चौकेमें भोजन करने वालेथे, परंतु आहार, पानी, मीठाई वगैरह बहुत वस्तुओंका योग देखनेमें आया. किसीको पूछनेपर मालूम हुआ कि आज अमुक ढुंढिये साधुओंके गौचरी आनेका वाराहै, जिससे ... सामग्रीकी तैयारीहै. फिर दूसरे रोज खास परीक्षा करनेके ... उसी घरमें गुरु महाराज गोचरी चलेगये, परंतु कुछभी नया ... आदि सामग्री न देखनेमें आयी परंतु पहिले रोज का बचा हुआ भोजन करते देखनेमें आये और तीसरे रोज किसी नोकरसे ... मालूम हुआ कि आजभी पूज्यजी का वारा होनेसे सामग्री तैयारहै. इस प्रकार वारा बंधीसे गौचरी जानेसे छ कायकी हिंसा, आधाकर्मी और स्थापनादोष आदि अनेकदोष आतेहैं यहभी त्याग करने योग्यहै।

२७. चने, उडद, मुंग, तुयर वगैरह दोफाड वाले धानको कच्चे दही, छाछ, दूधमें मिलानेसे उसको विदल कहा जाताहै। जैसे बड़े, पकोडी, चीलरी, पीतोड आदिमें कचा दही या छाछ डालकर रायता बनातेहैं, खीचडीमें दही—छाछ डालकर खातेहैं और बेशणमें कचा दही छाछ मिलाकर कढी करतेहैं उसमें तत्काल सुक्ष्म त्रसजीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, ऐसा आहार खानेसे त्रस जीवोंकी हानि होतीहै, बुद्धिमंद होतीहै, कभी किसी प्रकारका रोगभी हो जाताहै इत्यादि कारण होनेसे ऐसी वस्तु जानकार संवेगी श्रावक कभी नहीं खाते और संवेगी साधुभी नहीं लेते। ढूंढियोंको इस बातकाभी ज्ञाननहींहै जिससे ढूंढिये श्रावक ऐसा विदल बनातेहैं, खातेहैं, ढुंढिये साधुभी लेकर खातेहैं उसमें असंख्य त्रसजीवोंकी हिंसा होनेसे विदल वस्तु खानेका त्याग करना योग्यहै।

२८. अमोलकऋषी वगैरह कितनेही ढुढिये विलदमें जीवोंकी उत्पत्ति मानतेहैं, 'जैनतत्त्वसार' मे बाइस अभक्ष्यके अधिकारमें पृष्ठ ५९३ वें मे लिखतेभी है, परन्तु व्यवहारमें नहीं लाते, खानेका त्याग नहीं करते, ढुंढिये श्रावकोंको उपदेश भी नहीं देते, यहभी स्वादका लोभहीं है। बहुत ढुढिये विदलमें जीवोंकी उत्पत्ति नहीं मानते और कहतेहैं कि विदलमें हमको प्रत्यक्ष जीव बतलावो, ऐसे अनसमझ

तैसा शुद्ध आहार लेकर शरीरको भाडा देताहै, ऐसे शुद्ध साधुको यदि कभी कंदमूलका शाक आदि मिलजावे तो निर्ममत्व भावसे ले, उसमें कोई दोष नहीं है, इसलिये उन उग्रविहारी साधुओंके लिये दश-वैकालिक सूत्रमें लेनेका कहाहै परंतु ढूंढिये साधुतो प्रायः करके महेश्वरी, अग्रवाल, दिगंबर श्रावगी आदि उत्तम जातिके बहुत घरोंको बीचमें छोडकर अपने परिचयवाले रागी भक्तोंके घरोंमें गौचरी जाते हैं और खास ममत्वभाव लोभदशासे अपने जीभके स्वादके लिये, शरीरकी पुष्टिकेलिये, रोटी अधिक खानेके लिये और प्रत्यक्षही संयोजना नामक दोष सेवन करनेके लिये कंदमूलका साक व लसण, कांदे की चटनी आदि लेतेहैं, यह सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै। इसलिये दशवैकालिक सूत्रके नामसे कंदमूल की वस्तु लेकर खाने का ठहराना अनंत जीवोंकी घातका हेतुहै। देखो-बौद्धमतके साधु दियाहुआ मांस खाने लगगये तो सब बौद्ध समाज मांस भक्षण करनेवाला हिंसक बनगया. इसीतरह ढूंढिये साधुभी मिलेसो लेतेहैं, ऐसा कहकर कंदमूलकी वस्तु लेने लगगये उससे ढूंढियों के श्रावक समाजमें प्रायः सैंकडे ९५ टके लोग कंदमूल खाने वाले होंगे और संवेगी साधुओं ने वैसी वस्तु लेना छोड़ दिया तो संवेगी श्रावकोंमेंभी प्रायः सैंकडे ९५ टका लोगोंने कंदमूल खानेका छोड़दियाहै यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै इसलिये अनंतजीवोंकी दयाके लिये ढूंढिये साधुओंको वैसी वस्तु लेकर खानेका त्याग करना योग्यहै।

३२. फिरभी देखिये 'धर्मरुचि' अनगार मास क्षमणके पारणे गौचरी गये वहां अकेला कडवा तुंबाका शाक मिला उसमेंही संतोष रखकर उसको राग द्वेष रहित होकर खा लिया. तथा 'धन्नाजी' अनगार गौचरी जातेथे तब उनको कभी अन्न मिलजाता परन्तु पाणी नहीं मिलता तोभी संतोष रखतेथे, ऐसी २ सैंकडों बातें आचारांग, ज्ञाताजी, अनुत्तरोववाइ आदि आगमोंमें बतलाईहैं, उस मुजबतो कोई भी ढूंढिया चलता नहीं और लोभसे अपने स्वाद के लिये कंदमूलकी वस्तु लेनेका सूत्रके नामसे पुष्ट करके निर्दोष बनते हैं यह कितना भारी अधर्म है।

३३ फिरभी देखिये विचार करीये-यद्यपि कोई वस्तु निर्दोष होय तोभी लोक शंका करें, और जीव हिंसाका हेतु होवे, अधर्म बढे तो वैसी वस्तु साधुको नहीं लेना चाहिये उसी तरहसे हरे कंदमूलकी

वस्तुभी साधुको सर्वथा लेना योग्य नहींहै, जिसपर भी जो ढूंढिये साधु लेतेहैं वो लोग अनंत जीवोंकी हिंसाका दोषके भागी आप होतेहैं और दूसरोंकोभी बनातेहैं, यह बात हमने दक्षिण व खानदेशमें धूलिया वगैरह बहुत गांवोंमें ढूंढियोंके श्रावकोंके घरमें प्रत्यक्ष देखीहै. वे लोग हमको आलु- कांदे का शाक देनेलगे. हमने कहा तुमलोग दया पालने वाले कहलाकर कंदमूलके अनंत जीवों को खातेहो, तब वे लोग बोले हमारे साधुभी खातेहैं, जब हमने समझाकर उपदेश दिया, तब समझ गये. इसलिये ऐसी वस्तु साधुको नहीं लेना चाहिये, जिससे गृहस्थ लोगभी त्यागकरें। पहिलेके साधु शहर बाहर रहतेथे, अकस्मात गांव में आकर निर्दोषमिला सो लेकर चलेजाते थे परंतु अब अपनेलोग गांव में व भक्तोंके पासमें रहतेहैं इसलिये द्रव्य-क्षेत्र-काले भाव देखकर बहुत वस्तुओंका बचाव करना उचितहै किंतु सूत्रकी बातें आगे लाकर पेट भराईको पुष्ट करना उचित नहींहै।

३४. ढूंढिये साधु-साध्वी अपनी पूजा मानताके लिये अपने भक्तोंको अपने दर्शन करानेके लिये खास युक्ति पूर्वक बैठकर अपना फोटो उतरवातेहैं, अपने भक्तोंको दर्शनके लिये देतेहैं, उस फोटोको धोकर साफ करनेमें बहुत जल ढुलताहै, जिससे अपकाय आदि छ कायके असंख्य व अनंत जीवोंकी हिंसा होतीहै (जिनराजकी मूर्त्तिकी, फोटोकी निंदाकरतेहैं और अपनीफोटोदर्शनकेलिय देतेहैं यही बडा अधर्महै) इस लिये यहभी हिंसाकाकार्य त्याग करनेयोग्यहै। अनुमान २०-२५ ढूंढिये साधु-साध्वियोंके फोटो हमारेपास मौजूदहैं किसीको देखनेकी इच्छाहोतो हमारे पास आकर देख सकतेहैं।

३५. ढूंढियेव तेरहापंथी साधु अपने २ भक्तोंकी चौमासेकी विनंती फागण चैत्र वैशाखमें पहिलेसेही मानलेतेहैं, जिससे वे लोग साधुके ठहरनेके और साधुको वंदना करनेको आने वालोंको ठहरनेके लिये मकानोंको लीपना, झाडना, धोनाइ करवाना वगैरहसे सफाइ करवानेमें त्रस-स्थावर अनंत जीवोंकी हिंसा करतेहैं और साधुको वंदनाके लिये आनेवाले प्राहुणोंकी भोजन भक्तिकीसामग्रीके लिये आटा, शक्कर, लकडी आदि खरीदकर इकट्ठे करलेतेहैं, उनमें वर्षाके दिनोंमें असंख्य जीवोंकी उत्पत्ति व हानि होतीहै. यह अंध श्रद्धाकी गुरुभक्तिका रिवाज सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध और प्रत्यक्ष छ कायके जीवोंकी हि[illegible] वाला

होनेसे साधु और श्रावक दोनोंको संसारमें डुबाने वालाहै इसिलि
भवभीरु आत्मार्थियोंको अवश्य त्याग करने योग्यहै।

३६. ढूंढियोंमें जब कोई दीक्षा लेताहै तब तपस्याके पूरके मों
त्सवकी तरह वंदनाके लिये आनेवाले लोगोंकी भक्तिमें अनेक तरहा
आरंभमें छ कायके अनंत जीवोंकी हिंसाकरतेहैं तथा विशेषतामें बरघो
में मुसल्मान, ढोली आदिको बुलवाकर नगद पैसे देकर खुले मुंह बाजे
बजवातेहैं, हजारों लोग दोडादोडसे त्रस स्थावर जीवोंका नाश करते
लुगाईयें खुले मुह गीत गातीहैं, प्राहुणोंकी भक्तिके लिये मीठाईयोंका
खाना चलताहै यहभी हिंसाका कार्य त्याग करना योग्यहै।

३७. ढूंढिये श्रावक श्राविका मुंह बांधकर स्थानकमें इकट्ठे हो
दया पालतेहैं, उसरोज घरमें बनीहुई ताजी रसोई नहीं खाते और
वाईके वहासे मणोंबंध मीठाई मौल मंगवाकर खातेहैं, बड़े खुशी हो
आज हमने छ कायकी हिंसा टाली, बड़ी दया पाली. ढूंढियोंका यह
र्तव्यभी तत्वदृष्टिसे बड़ी हिंसाका हेतुहै, क्योंकि हलवाईके भट्टीमें
कीडे, मकोडे, रात्रिको पतंगीये वगैरह अनेक त्रस जीवोंकी हिंसा है
अयत्नासे अनछाना वासी जल व बहुत रोजका जीवाकुल मेदा, ख
रस वगैरहमें मक्खी मच्छर आदि हिंसाका पार नहींहै तथा मल
अशुद्धि प्रत्यक्षहीहै. यह सब हिंसा मीठाई मौल मंगवाकर खाने वा
लगतीहै। जिस प्रकार कसाई खाने में जितनी जीव हिंसा होतीहै
जीवोंको खरीदनेके लिये व्याज से रुपया देने वाले, बेचने वाले,
करने वाले, खरीदने वाले, जीव मारने वाले, नौकरी करने वाले
बेचने वाले, पकाने वाले और खाने वाले यह सब लोग हिंसाके
भागी होतेहैं. उसी प्रकार हलवाईकी हिंसाभी मौल मंगवाकर खा
सबको लगतीहै इसलिये सामायिक आदि व्रतवाले श्रावकोंको ह
वहाकी वस्तु मौल मंगवाकर खाना यह अनंत हिंसाका पाप,
की विराधना और मिथ्यात्व बढाने वाला होनेसे सर्वथा अनु
देखो-कई २ व्रतधारी श्रावक-श्राविका १४ नियम धारण
और अन्यभी विवेकवाले बहुतसे श्रावक हल्वाईके वहांकी मी
नेका त्याग करतेहैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै। ढूंढियोंको इस बातका
हीहै, जिससे दया पालनेके रोज व्रतमें रहते हुएभी हलवाई खा
खाके भागी होतेहैं। यह अज्ञान दशाभी हिंसाकी हेतु होनेसे त्य

योग्यहै। यदि सची दया पालन करना होतो दया पालनेके रोज उपवास वगैरह मत करो अथवा घरमेंसे सुके खाजरे दही-छाछ आदिका थोडासा सहारा लेकर रस त्याग व उनोदरी तपका लाभ लो, यह सची दयाका पालन करने नहीं और जलेबी, घेवरवडोंका खादना आदि अनक्ष खाकर भट्टीखानेका पाप ले करकेभी दया समझ बैठेहैं, ढूंढियोंमें दयाके नामसेभी हिंसाका पार नहीं, यही बडी अज्ञानताहै।

---

२८. जब ढूंढियोंके कोई साधु या साध्वी काल कर जातेहैं तब उसके मुर्देको १-२ रोजतक रख छोडतेहैं, आसपासके गांव वालोंको पत्र या तारआदिसे सूचनादेकर मुर्देके दर्शनकेलिये लोगोंको बुलवातेहैं, मांडवी (चकडोल) की बडी सजावट करके नगारे निसान बाजेवाजे व नाईयोंको बुलवा कर दिन दुपहरको दीवी (मसालें) जलाते हुए गीतगान करते हुए भजन मंडलीके साथ अग्निसंस्कारके लिये ले जातेहैं। गये वर्ष पंजाब देशमें रावलपिंडीमें ढूंढियोंके साधुके मुर्देको दो रोज तक सजावट वाले कमरेमें रक्खाथा और बडे आडंबरसे जलानेको ले गयेथे फिर दो रोज बाद उसके फोटोकी खूब धामधुमके साथ स्वारी निकालीथी, यह बात उसी समय ढूंढियोंके वर्तमान पत्रोंमें व जैन, जैन बंधु आदिमेंभी प्रकट हुईथी तथा काठीयावाड़में जेतपुर मोटवाडीमें मृत नागेकचंद ढूंढिया साधुके अग्निसंस्कारकी जगह निर्वाण मंदिर बनवायाहै, दर्शनके लिये फोटो स्थापन कियाहै और वार्षिक तिथिके रोज निर्वाण मंदिरके सामने बडा मंडप बनवातेहैं, ध्वजा-पताकाओंसे बडी शोभा करतेहैं, नोबत नगारे बजवातेहैं, फोटोके दर्शनकर गुरु-गुण गातेहैं, यह बात अमदावादसे संवत् १९८२ पौषमहीनेमें "स्थानक वासी जैन" नामक खास ढूंढियोंके मासिक पत्रके पृष्ठ २१ में प्रकटहुईहै। औरभी लुधीयाना, रायकोट, अंबाला, बर्नाला इत्यादि पंजाब, मारवाड, काठीयावाड आदि देशोंमें ढूंढिये साधुओंकी याद गिरीके लिये छत्रीं, घुमटी, निर्वाणमंदिर बनेहुए मौजुदहैं तथा दर्शनके लिये चरण स्थापना व फोटोकी स्थापना की है। इस प्रकार राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ आदि अनेक दोष वाले आठ कर्म सहित चारगति संसारमें फिरने वाले और जिसकी गतिका ठिकाना नहीं उनकी भक्तिके लिये ऐसे २ हिंसाके कार्य ढूंढिये साधु अपने गुरुकी महिमाके लिये भक्तोंसे करवातेहैं और परम उपकारी अनंतगुण सहित आठकर्म रहित होकर मोक्षमें गये ऐसे

तीर्थंकर परमात्माकी निर्वाण भूमि समेत शिखर, गिरनार, शत्रुंजय,चंपापुरी,पावापुरी आदिमें जानेकी व दर्शन भक्ति करनेकी निंदाकरके त्याग करवातेहैं और दर्शन-भक्ति (जिनराजके अनंत गुणोंका स्मरण ध्यान) आदि आत्महितके शुभकार्यों की अंतराय देते हैं. यही ढूंढियोंका प्रत्यक्ष हठाग्रहका मिथ्यात्वहै।

३९. पन्नवणा सूत्र में लिखाहै कि मनुष्यके मुर्देमें दो घडी बाद अंगुलके असंख्य भाग प्रमाण छोटे शरीर वाले संमूर्च्छिम मनुष्य पंचेंद्रीय असंख्य जीव उत्पन्न होतेहैं। ढूंढियोंके कोई साधु-साध्वी जब कभी दुपहरको २-३ बजे काल कर जातेहैं तब ढूंढिये श्रावक शामतक और रात्रिभर गेस आदिकी रोशनी करके चकडोल बनानेमें लगा देते हैं फिर दूसरे रोज दुपहरको सब लोगोंको इकट्ठे करके जलानेको ले जातेहैं वहां बडे २ लकडोंकी पोलार में सर्प, विच्छु, चुहा, कीडी नगरे आदि अनेक जीवोंका नाश करतेहैं। यह असंख्य पंचेंद्रीय जीवोंकी बडी हिंसा करने का ढूंढिये साधु अपने भक्तोंको त्याग करवाते नहीं और दया भगवतीके नामसे स्नान करनेका त्याग करवातेहैं, जिससे ढूंढिये साधु-साध्वीका मुर्दा जलाकर बहुत ढूंढिये श्रावक स्नान नहीं करते, यह उत्तम हिंदु जातिको व ढूंढिये समाज को अपवाद रूप कैसी बडी भारी अज्ञानताहै। यदि ढूंढिये कहें कि भगवान्के शरीरका अग्निसंस्कारकरके इन्द्रादि देव भी स्नान नहीं करते; यहभी ढूंढियोंका कहना झूठहै, इन्द्रादि देव स्नान नहीं करते ऐसा किसी जैनशास्त्रमें नहीं लिखा, जिसपरभी यदि मान लिया जावे तोभी विचार करने की बातहै कि इन्द्रादि देवोंका शरीर कपूरके ढेरकी तरह दिव्य सुगंधवाला हाड मांसादि रहित वैक्रियहै, इसलिये जिस प्रकार हवाको किसी तरहका सुतक नहीं लगता, उसी प्रकार हवारूप देवताओंके शरीरकोभी किसी प्रकार का सुतक नहीं लग सकता। और मनुष्योंका शरीर हाड मांस आदि अशुचि पुद्गलोंका बना हुआ उदारिकहै, जैनशास्त्र व हिंदुधर्म मुजब जन्म मरण मुर्दाका सुतक अवश्य लगताहै, इसलिये देवताओं की तरह स्नान नहीं करनेका ले बैठना बडी अज्ञानता है। हां इतनी बात जरूर है कि विवेकवाले धर्मी श्रावकोंको नदी, तालाव, बावडी आदिमें अनछाना जलमें स्नान करनेसे नदी आदि सबकी क्रिया लगती है फुआरे आदि त्रसजीवोंकी व नीलण-फुलण वगैरह अनंत

जीवोंकी हानि होतीहै इसलिये ऐसा करना योग्य नहीं परंतु निर्जीव लूखी जगहमें छानेहुए थोडे जलसे या गरम जलसे स्नान करनेका गृहस्थको त्याग नहीं बन सकता।

४०. दूसरी बात यहभीहै कि इन्द्रादि देव भगवान्के शरीरका अग्नि संस्कार खास धर्म बुद्धिसे भगवान्की भक्तिके लिये करते हैं वहां से नंदीश्वरद्वीपमें जाकर वहां के शाश्वत चैत्यों (सिद्धायतनों) में शाश्वत जिन प्रतिमाको वंदन-पूजन भक्तिभावसे जिन गुण गाते हुए अट्टाई महोत्सव करतेहैं। यह अधिकार खास ढूंढियोंके छपवाये जंबूद्वीपपन्नत्तिसूत्रमें आदीश्वर भगवान्के निर्वाण अधिकार में, जीवाभिगमसूत्रमें तथा स्थानांगसूत्रके चौथेठाणेमें नंदीश्वरद्वीपके वर्णन अधिकारमें खुलासा सहित लिखाहै। पाठकगण ढूंढियोंके सूत्र निकालकर यह प्रत्यक्ष प्रमाण देख लें, जब इन्द्रादि देवोंकी तरह गुरुका मुर्दा जलने की बात ढूंढिये मान्य करतेहैं, तब देवोंकी तरह जिनप्रतिमाकी पूजा व अट्टाई महोत्सव आदि जिनभक्तिके कार्य करनेका भी ढूंढियोंको मान्य करना चाहिये, जिसपरभी जिनपूजा-भक्तिकी निंदाकरके मनाई करतेहैं, यह प्रत्यक्षही झूठा हठाग्रहहै। देवता जिन प्रतिमाकी पूजा मोक्षके लिये करतेहैं, इस विषयकी सब शंकाओंका समाधान सहित आगे लिख नेमें आवेगा।

---

४१. यदि ढूंढिये श्रावक कहें कि हमलोग यह सब कार्य संसार खाते करतेहैं, परंतु धर्म बुद्धिसे नहीं. यहभी ढूंढियोंका कथन झूठ है, क्योंकि तपस्याके पूरके महोत्सवमें मंडप बनवाना, ध्वजा पताकायें लगवानी, साधुका फोटो उतरवाना, मुर्दोका महोत्सव करना, छत्री या निर्वाण मंदिर बनवाने, उसमें लोगोंके दर्शनके लिये साधुके चरण पादुका या फोटो स्थापन करना, तथा साधुके उपदेशसे गरीबोंको अन्न-वस्त्रादि देना, मीठाई बनवाकर प्रभावना बांटनी, पशु छोडाने, पाठशाला-अनाथालय स्थापन करवाने, शास्त्र छपवाने, स्थानक बनवाने, चौमासामें साधुको वंदना करनेको जाना, दीक्षा महोत्सव करना, साधुको लेनेको व पहुंचानेको जाना इत्यादि यह सब कार्य विवाह शादी ओसर-मोसरकी तरह किसी तरह संसार संबंधी नहींहै किंतु साधुके तपस्याके पूर आदिके नामसे पत्रिका छपवाकर तार देकर आग्रह पूर्वक लोगोंको बुलाकर किये जातेहैं यह प्रत्यक्ष गुरु भक्ति है। ढूंढिये

अपने गुरुकी महीमा बढानेके लिये ऐसे २ हिंसाके कार्य करतेहैं और अनंत उपकारी श्रीतीर्थंकर परमात्माकी पूजा भक्तिकी निंदाकरते हुए दर्शन करनेको जानेवालोंको मनाई करके अंतराय बांधतेहैं, यही प्रत्यक्ष मिथ्यात्वहै । जिसपरभी संसार खाताका नाम लेकर मायाचारीसे १७ वा मायामृषा पापस्थानक का सेवन करते हुए निर्दोष बनना चाहतेहैं सो कभी नहीं होसकते, आत्मार्थी सच्चे जैनीको ऐसे मिथ्यात्वका त्याग करनाही हितकारी है।

---

४२. यदि ढूंढिये साधु कहें कि तपस्याके पूर का महोत्सव आदि ऐसे हिंसाके कार्य करनेका हम नहीं कहते, यहभी मायाचारी सहित प्रत्यक्ष झूठहै. जिस प्रकार जिनमंदिर जाने वालोंको ढूंढिये साधु मनाई करदेतेहैं, सोगन दिलवा देतेहैं, उसी प्रकार यदि तपस्याकापूर-पुरी महोत्सव आदि ऐसी हिंसाके कार्य करनेकी ढूंढिये साधु मनाई करदें, सोगन दिलवादें तो कभी न होने पावें, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै कि तपस्याके पूरका दिन अपने भक्तोंको महीना १५ रोज पहिलेसेही बतला दिया जाताहै उसीसेही पत्रिका छपतीहैं, तार छुटतेहैं, मोटर घोड़ागाडी आदि स्वारीकी दोड धूम मच जातीहै, बहुत लोगोंको आये देखकर बड़ेखुसीहोतेहैं, आनेवालोंकी घं भोजनभक्ति वगैरह सारसंभालकरने वालोंकी 'तुमतो बड़े भक्तहो' इत्यादि प्रसंशा करतेहैं इसीसे चौमासे आदिमें ऐसे हिंसाके कार्य होतेहैं इसलिये ऐसी हिंसा करवाने वाले मूल कारणभूत खास ढुंढिये व तेरहापंथी साधु ही हैं।

---

४३. औरभी तीन रोजका दहीमें, बहुत रोजके बाजारके चूर्णमें तथा थाटा, मेदा, मसाले, कचीखाड, मेवा, घृत आदि अनेक वस्तुओंमें ऋतुभेदसे कालमान उपर उन्होंमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, ढुंढियें को ऐसी अनेक बातोंका पूरा २ ज्ञान नहींहै, जिससे ढूंढिये साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकाएँ ऐसी वस्तु खाकर पापके भागी होतेहैं और ढूंढियोंके पुस्तकोंमें ऐसी वस्तुओंकी काल मर्यादाका विधानभी नहींहै, इसीसे ढूंढियोंकी अज्ञान दशासे ढुंढियोंके अनेक कर्तव्य प्रत्यक्षही सर्वज्ञ शासन विरुद्ध हैं । जिसपरभी सच्चे जैनी होनेका दावा करतेहैं और अनादि मर्यादा मुजब मोक्ष के हेतु जिन प्रतिमाकी पूजा आदि सच्चे जैनियोंके बातोंकी निंदा करके लोगोंको बहकातेहैं, यही प्रत्यक्ष मिथ्यात्वका मूल

ढोंगहै. मोक्षकी इच्छावालेको ऐसा झूठाढोंग त्याग करनाही हितकारीहै।

---

४४. भगवती, ज्ञाताजी, उपासकदशा, अंतगडदशा, अनुत्तरोववाई, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन, ओघनिर्युक्ति, प्रवचनसारोद्धार आदि बहुत शास्त्रोंमें साधुको गौचरी जाने के समय अपने पात्रोंको ढकनेके लिये झोलीके ऊपर वस्त्रके पडले रखनेका कहाहै, उससे अनेक लाभ होतेहैं, इसलिये संवेगी साधु रखतेहैं. परन्तु ढूंढिये साधु नहीं रखते जिससे अनेक नुकसान होतेहैं, सो बतलातेहैं। जब ढूंढिये साधु बाजारमें या गलियोंमें लंबी नीचे लटकती हुई खुली झोली में आहार-पानी लेकर जाते हैं तब कभी उसमें हवासे सचित्त रज गिर जातीहै १, अकस्मात वर्षाके जलकी बिंदुभी गिरजातीहैं २, कभी अधिक हवाके जोरसे अंबली, लींब, वड आदिके पत्र, पुष्प, फल वगैराभी गिरजातेहैं ३, कभी गृहस्थलोग बर्तनोंका झूठा मैला जल अपने मकानके ऊपरसे गलीमें फैंकते होवें उससमय ढूंढिया साधु उस रास्ते होकर जाता होवे तो उसमेंसे जलके छांटे कभी आहार-पानी आदि पर गिरजातेहैं ४, कभी लोग मुर्देको ले जाते होवें तो उसकी छाया आहारादि पर गिरजातीहै ५. आकाश में चिल्ल कौवा आदि यदि उडतेहुए विष्टा करदें तो उसके छांटेभी आहारपर गिरजातेहैं ६, मणीयारे वैपारियोंकी तरह ढूंढिये साधुभी मीठाई, रोटी, शाक, दूध दही, घृत, गुड, शक्कर आदि आहारके सब पात्रे गृहस्थोंके घर २ में अलग २ रखदेतेहैं, उनको देखकर बालक खानेके लिये रोने लगतेहैं, न देनेपर दुःखी होतेहैं, कभी मांगनेवाले रांक देखकर लोभातहैं न मिलनेसे अंतराय बंधताहै ८, कभी कुत्ता बिल्ली आदि खानेके लोभसे झपाटा मारदेतेहैं ९, कभी दाल, कढी, क्षीर, घृत वगैरह झोलीमें ढुलजावें, झोली बिगड जावे तो रास्तामें लोग देखकर हंसी करतेहैं, उस से जैन शासनकी हिलना होतीहै १०, गरीष्ट पुष्टिकारक आहार देखकर देखो कैसा माल उडातेहैं इत्यादि निंदा होतीहै ११. निरस आहार देखकर देखो कैसा खराब आहार साधुको दिया है ऐसी देने वालोंकी निंदा होतीहै १२. वर्षा के बिंदु आदि आहार पानीमें गिर गये होवें वैसा आहार साधुको खाना कल्पता नहींहै उसको परठवना पडे उसमें अनेक तरह की जीवोंकी विराधना होतीहै १३, इत्यादि अनेक नुकसान होतेहैं इसलिये यहभी जिनाज्ञा विरुद्ध और छकायकी हिंसा

का हेतुरूप अज्ञान रिवाज ढूंढियोंको त्याग करना योग्यहै और साधुओंकी तरह सूत्रोंकी आज्ञा मुजब झोलीके उपर पडले ढकनेक अंगीकार करनेसे गृहस्थोंके घरोंमें सब पात्रे नीचे रखनेकी जरूरत नहीं पडती उससे ऊपरके दोषोंकाभी बचाव होताहै, इसलिये झूठेक की अज्ञान रूढिको छोडकर सत्य बात ग्रहण करनेमेंही आत्म हितहै।

४५. रात्रिमें व शाम सवेर सूर्यकी गरमीके अभावमें सूक्ष्म सचित्त जलकी वर्षा हमेशा होतीहै ऐसा भगवती सूत्रके प्रथम शतकके छ उद्देशमें कहाहै इसलिये उसकी दयाके लिये साधुको तथा पौषध आदि व्रतवाले श्रावकोंको रात्रिमें व सवेर ऋतु भेदसे वर्षा कालमें ६ घडी तक, शीत कालमें ४ घडीतक, उष्ण कालमें दो घडीतक दिनचढे तब तक और शामको उतना दिन बाकी रहे तबसे साधुको खुले अं मकानसे बाहिर जाना योग्य नहीं है, कभी कारण वश जाना पडे कंबल ओढकर जाना चाहिये. इसी कारणसे भगवतीजी, आचारांगजी प्रश्नव्याकरण आदि सूत्रोंमें जगह २ साधु को कंबल रखनेका अधि कार आयाहै। ढूंढियों को इस बातका पूरा २ ज्ञान नहींहै इसलिये रात्रिमें व शाम सवेर ओढनेकेलिये कंबल नहींरखते, यहभी अपकाय हिंसाकाहेतु, त्यागकर संवेगी साधुओंकी तरह कंबल रखना योग्य है

४६. यह कंबल रखनेका नियम सर्व तीर्थंकर महाराजोंके शासनमें सब क्षेत्रोंमें हमेशा कायम रहनेके लियेही तीर्थंकर भगवान की दीक्षा समय इन्द्र महाराज बहु मूल्य रत्न कंबल भगवान् के डाबे खंधेपर रखतेहैं यहबात जैनशास्त्रों में प्रसिद्धहीहै, इसलिये ढूंढियोंको यदि सच्चे जैनी बननेकी इच्छा हो तो अपना अज्ञान रिवाजको त्याग कर डाबे खंधेपर कंबल रखने वगैरहकी सत्य बातें अंगीकार करने योग्यहैं। दूसरी बात यहभीहै कि साधुके खंधेपर कंबली हो तो आहार आदिके लिये साधु गया होवे वहांपर रास्तामें अकस्मात जोर से हवा चलनेलगे, वर्षाहोने लगे तो शरीरको, वस्त्रको व आहार-पानी आदि के ढकनेके काममें आतीहै तथा मुंहके आगे आडी डालनेसे गौचरी वहो रते समय या छींक आदि करते समय नाक मुंह दोनों की यत्ना होती है और बैठनेके लिये आसनके काममेंभी आतीहै अन्यभी बहुत फायदे होतेहैं इसलिये खंधेपर कंबल नहीं रखनेवाले अनादि कालकी शासन मर्यादाका उल्लंघन करनेके दोषी ठहरतेहैं।

॥ ॐ ॥

॥ णमो जिणाणं ॥

जाहिर उद्घोषणा नंबर ३.

(शरीरकी शुचिकेलिये रात्रिमें जल रखनेका निर्णय)

४७. ढूंढिये कहतेहैं कि सूत्रोंमें चार प्रकारका आहार साधुको रात्रिमें रखना मना कियाहै इसलिये हम लोग शरीरकी शुचिके लिये भी रात्रिको जल नहीं रखते, संवेगी साधु रखतेहैं सो सूत्र विरुद्धहै, यहभी ढूंढियोंका कथन अन समझका है, क्योंकि सूत्रोंमें अन्न-जल आदि चार प्रकारका आहार साधुको खानेके लिये संग्रह करके रात्रिको रखने की मनाई है परंतु विष्ठा-पेशाबकी अशुचि से शरीर को शुचि करने के लिये जल रखनेकी मनाई किसी सूत्रमें नहींहै परंतु खास ढूंढियोंके छपवाये "निशीथ" सूत्रके चौथे उद्देशके पृष्ठ १४७-१४८ में ऐसा पाठहै:—

"जे भिक्खू उच्चार पासवणं परिठ्ठवित्ता णायमई, णायमंतं वा साइज्जई ॥ १६३ ॥ जे भिक्खू उच्चार पासवणं परिठ्ठवित्ता तत्थेव आय मंति, आयमंतं वा साइज्जई ॥ १६४ ॥ जे भिक्खू उच्चार पासवणं परि-ठ्ठवित्ता अइदूरे आयमइ, अइदूरे आयमंतं वा साइज्जई ॥ १६५ ॥"

अर्थः— "जो साधु-साध्वी बडीनीत लघुनीत परिठावे बाद शुचि नहीं करे, शुची नहीं करतेको अच्छा जाने (अशुचि रहनेसे असज्झाई होवे तथा प्रवचनकी हीलना होवे आदि दोषोत्पन्न होवे) ॥१६३॥ जो साधु साध्वी जिस स्थान लघुनीत बडीनीत परिठाई होवे उस स्थान शुचि करे आचमन लेवे लेते को अच्छा जाने (अर्थात् उस ऊपर उपर [illegible] शुचि करनेसे सन्मूर्च्छिम [illegible] वृद्धि नही होवे तथा हाथ [illegible] नहीं ॥१६४॥ जो साधु-साध्वी बडीनीत लघुनीत परिठाकर बहुत दूर जाकर शुचि करे [illegible] करते को अच्छा जाने ॥१६५॥ [illegible]

[illegible]

जगहसे बहुत दूर जाकर शुचि करनेसे गुदाके उपर विष्टा लेपकी तरह फैल जावे, जिससे बहुत जलकी जरूरत पडे अथवा लोगोंको शंका पडजावे कि यह साधु-साध्वी जंगल जाकर शुचि नहीं करते अशुचि रहतेहैं इत्यादि दोष आतेहैं जिससे उस जगहसे उठकर दूर जाकर शुचि करनेकीभी मनाहै की, व थोडासा हटकर शुचिकरनेका बतलाया, इस लिये शरीर की शुचिके लिये दिनमेंभी जल रखना पडता है। अब विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि जब दिनके लियेभी ऐसी मर्यादाहै तब यदि रात्रिमेंभी शरीरकी शुचिके लिये जल न रखे तो जंगल जाने पर शुचि नहीं कर सकते और शुचि न करें, अशुचि रहें तो सूत्रमें उसका दोष बतलाया है तथा प्रत्यक्ष व्यवहार विरुद्धहै इसलिये ऊपरके मूल सूत्रपाठकी आज्ञा मुजब शरीर शुचिके लिये रात्रिमें जल रखनेमें कोई दोष नहींहै।

४९. यदि ढूंढिये कहें कि पहिलेके साधु शरीर शुचिके लिये रात्रिमें जल नहीं रखतेथे इसलिये अबभी रखना उचित नहींहै, यहभी अ समझकी बातहै क्योंकि पहिलेके साधु जंगलमें रहनेवाले निर्मम, निर्ममत्वी, तपस्वी, ध्यानी होतेथे, २-४ रोजमें या महीना पन्द्रह रोजमें या जब तपस्याका पारणा होता तब तीसरे प्रहर सिर्फ एकवार गाममें आहारके लिये आतेथे और धर्म साधनका हेतुभूत शरीरको थोडासा भाडा देने कर अल्प आहार लेकर पीछे वन-पर्वत आदि जंगलमें चले जाते, तप और ध्यानसे उनकी जठराग्नि बहुत तीव्र होने से आहारके पुद्गल जल्दी पाचन होकर उसका बहुतसा भाग रोम व श्वासोश्वास द्वारा हवा होजाताथा, और आसन व योग क्रियासे उनके शरीरका वायु शुद्ध रहता उससे ऊंट बकरीकी मींगणी (लींडी)की तरह या बन्दुककी गोलीकी तरह उन महात्माओंका निर्लेप निहार कभी २ बहुत दिनोंसे होताथा, सोभी प्रथम प्रहरमें स्वाध्याय करते, दूसरे प्रहरमें ध्यान करते और जब तीसरे प्रहरमें आहार-पानी करते तब जंगल व पेशाबके का- रणसे भी निपटकर शुचि होकरके पीछे फिरभी स्वाध्याय ध्यानादि धर्मकार्योंमें, कायोत्सर्गमें लग जाते, जिससे रात्रिमें जंगल पेशाबका कभी काम नहीं पडता, जिससे उन तपस्वी साधुओंको रात्रिको जल रखनेकी जरूरत नहींथी। इसी तरहसे यदि ढूंढिये साधुभी जंगलमें रहने वाले वैसेही तपस्वी, निडर, निर्ममत्वी, आसन व ध्यान करने वाले, सदा

आहारमें संतोष रखने वाले और जंगलमें हमेशा रहने वाले होवें तो ढूंढिये साधुओंकोभी रात्रिमें जल रखनेकी कोई जरूरत नहीं परन्तु शहरमें गृहस्थोंके घरोंमें मनइच्छित सरस स्वादके लोभसे दिन भरमें २-३ बार लड्डु २ पकवान और दूध-दही-घृत-शीरा-बड़े-पकौड़ी-रायता आदि गरिष्ट पदार्थ अधिक खाकर १०-१ बार खूब गहरा जल पीके दुष्ट शरीरको पुष्ट करतेहैं उससे मंदाग्नि होकर घुड़ी भैंसकी तरह गुदा द्वार सब भरजावे वैसे ढेर वाली पतली दस्त होतीहै और कभी अकस्मात रात्रिकोभी दस्त लगजातीहै तथा शीतकालमें ५—७ बार रात्रिमें पेशाब करना पड़ताहै, ऐसी दशामें ढूंढिये साधु अपने शरीरकी शुचिकेलिये रात्रिको जल नहींरखते. फिर पहिलेके तपस्वी साधुओंका दृष्टान्त बतलाकर अपनी अनुचित बातको पुष्ट करके निर्दोष बनतेहैं, यह कैसी भारी अज्ञानताहै। जब पहिलेके साधुओंकी तरह चलनेका दृष्टान्त बतलातेहैं तब तो उसी मुजब आचरणभी अंगीकार करने चाहियें। जिस प्रकार रंक आदमी अपने पूर्वजोंके राजऋद्धिका अभिमान करे तो उससे उसका पेट नहीं भर सकता. उसी प्रकार पहिलेके तपस्वी साधुओंका दृष्टान्त बतलाकर अभी रोजीना २—३ बार खाने वाले उन महात्माओंकी बराबरी कभी नहीं कर सकते, इसलिये पहिलेके साधुओंकी तरह रात्रिको जल न रखनेका मानलेना, हठ करना बडी भारी भूलहै।

५०. ढूंढिये कहतेहैं कि रात्रिमें जल रखनेसे कभी गर्मीके दिनोंमें तृषा लगनेपर साधु पी लेवे, इसलिये रखना योग्य नहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि देखो जिसप्रकार गर्मीके दिनोंमें विहार करके दूसरे गाम जाने वाले साधुओंको बहुत तृषा लगी होवे रास्तामें नदी तलाब आदिमें जल देखनेमें आवे तोभी साधु अपना व्रत भंग करके कच्चा जल कभी नहीं पीता उसी तरह निर्दोष आहार व प्रतिक्रमण आदि क्रिया करके भावसे शुद्ध चारित्र पालन करनेवाला साधु प्राण जावें तोभी अपना व्रत रखनेके लिये रात्रिको जल कभी नहीं पीता। दूसरी बात यहभी है कि रात्रिके जलमें चूना डालकर छाछकी आछकी तरह जलको सफेद कर दिया जाताहै, जिससे जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती और चूनेके खारापनसे पीनेमें जबान कट कण्ठ फट जाताहै इसलिये ऐसा जल कोईभी नहीं पी सकता

५१. ढूंढिये कहतेहैं कि किसी साधुको रात्रिमें कभी उल्टी (वमन) होजावे तो जलसे मुंहकी शुद्धिकर लेवे, इसलिये रात्रिको जल र-

इसलिये रात्रिमें जलसे भी शुचि नहीं करते, जिसपरभी ठाणांगसूत्र नामसे शुचि करनेका ठहराना यहतो प्रत्यक्षही भोले जीवोंको बहका अपनी भूलका बचाव करनेकी प्रपंच बाजीहै।

५९. ढूंढिये कहते हैं कि बृहत्कल्प सूत्र में और व्यवहार सू मूत्र लेनेका लिखाहै, इसलिये हमभी कभी काम पडजावे तो उस अपना काम कर लेतेहैं यहभी बडी भूलहै, क्योंकि देखो जिस किसी एक ब्राह्मण—बनियेको मरणांत कष्टवाले बडेभारी रोगके म कारण विज्ञानसे किसी तर्क बुद्धिवाले अनुभवी वैद्यने किसी तर कोई अपवित्र वस्तुकी दवाई देकर उस समय उसका जीव बचादि तो उसकी देखादेखी निरोग अवस्थामें वह ब्राह्मण, बनीया या उस सर्व जातवाले उस अपवित्र वस्तुको हमेशाके लिये अपने काममें न नहीं लासकते तथा यह बातभी अभी प्रसिद्धहीहै कि कई डाक्टर काटने वगैरहके जहर उतारनेके लिये रोगीको दवाई रूपमें मूत्र दी लेतेहैं परन्तु उसकी तरह सर्व मनुष्य मूत्र पीनेवाले नहीं बन सकते उसमें मूत्रको पवित्रभी कभी नहीं मान सकते। इसी तरहसे आदिके काटने के जहर वगैरह मरणांत कष्टवाले महान् कारण सि से साधुका जीव बचानेके लिये वैद्यकी सलाहसे दवाई रूपमें मूत्र का काम पड़े तो ले सकतेहैं इसलिये बृहत्कल्प सूत्रमें ऐसे गाढे का में लिखाहै जिसपर भी कितनेही ढूंढिये व तेरहापंथी लोग इस का भावार्थ समझे बिना निरोग अवस्थामें रात्रिको शरीर शुचिके जल न रखकर मूत्रको शुद्ध समझकर दस्त लगनेपर मूत्रसे स्पर करतेहैं यही इनकी बडी मनसमझकी निर्विवेकताहै।

६० यदि कोई कहे कि हमारे भी कभी रात्रिमें अकस्मात दस्त का महान् कारण होजावे तो मूत्रका उपयोग करलें तो उसमें दोष नहींहै, यहभी बडी भूलहै क्योंकि दिनभरमें दो तीन बार मूत्र करके रोटी दाल और मीठाइ वगैरह खान पानका रात्रिमें दस्त तो वह महान्कारण नहीं किंतु खानपान रोज नियमकी बातहै इसलिये [illegible] वास्ते दूसरा लाहशनी [illegible] रात्रिमें शरीर [illegible] जलरखनेकी खास आवश्यकताहै। [illegible] ज्ञान पूर्व [illegible] नहीं और [illegible] रात्रिमें दस्त होनेका महान्कारण मान मूत्रका व्यवहार करतेहैं यह [illegible] विरुद्ध, जैनशास्त्र वि

और जगतके व्यवहारकेभी प्रत्यक्ष विरुद्धहै. जैनशास्त्रों में मूत्रको किसी जगह पवित्र नहीं लिखा और शरीरकी शुचिके लिये लेनेकी आज्ञाभी नहीं लिखी इसलिये बृहत्कल्प आदि जैन शास्त्रोंके नामसे ऐसा अनुचित व निंदनीय व्यवहार किसीभी समझदार को करना योग्य नहींहै।

६१. इसीतरहसे ढूंढिये व तेरहापंथी श्रावक-श्राविकाभी रात्रि के पौषध व्रतमें या दया पालन करने के रोज मीठाइयें खाकरके अपने गुरुओंकी तरह संवरमें रात्रिको जल नहीं रखते और कभी किसीके दस्तका कारण बनजावे तो अनुचित व्यवहार करलेतेहैं, यह धर्म नहीं है किंतु मलीन बुद्धिकी बडी अज्ञानतासे समाजकी निन्दारूप महान् अधर्म करतेहैं। ऐसे अधर्मको त्याग करनाही हितकारीहै।

६२. आगरे वाले ढूंढियोंकी 'साधुमार्गी जैन उद्योनिती सभा' ने "साधु गुण परीक्षा" नामक छोटीसी किताबमें ढूंढिये साधुओंको रात्रिमें जल न रखनेकी पुष्टिके लिये पृष्ट १९-२० में एक दृष्टांत लिखा है, यहभी पाठक गणको यहां बतलातेहैं:—

"एक ब्राह्मण एक जंगलमें जा रहाहै उसके पास इस समय शास्त्र मूर्त्ति और भोजनकी सामग्रीहै साथमें परिवारि जन नहींहैं उस को उसी समय शौचकी इच्छा हुई, परंतु जलका अभाव और आगेको नहीं चल सकता ऐसे समयमें उसका क्या कर्त्तव्य हो सकताहै? केवल यही कि वह इस जंगलमें बैठ शौच निवृत्ति करले, शौच होकर, बताइये वह मूर्त्ति शास्त्र और भोजन सामग्रीको साथ ले जायगा या नहीं!, नहीं२ वह अपने मूर्त्ति और शास्त्रको नहीं छोड सकताहै। बस हमारे साधुओंकोभी यह रात्रि उस जंगल तादृशहीहै। वे यदि ऐसे समय घस या रेत अथवा किसी अन्य प्रकार शुद्धि कर लें तो उसमें कोई निन्दास्पद बात नहींहै" यह ढूंढियों का लिखना कितना भारी अनुचितहै।

६३. देखो उपर मुजब कभी किसी ब्राह्मणको वैसा कारण बन जावे तो गांवमें गये बाद शुचि होकर पूजा प्रतिष्ठा दान जप आदि करके उसका प्रायश्चित्त करले. इसी तरह ढुंढियोंको रात्रिमें दस्त लगने पर कोईभी ढूंढिया उसका प्रायश्चित्त नहीं लेता और उस प्रायश्चित्तकी विधिभी ढूंढियोंके शास्त्रोंमें नहींहै। तथा एक ब्राह्मणको ऐसा कारण

कभी बन जावे तो उसकी तरह सब ब्राह्मण समाज हमेशाही शौच करनेका कभी स्वीकार नहीं कर सकता और भटवी, दुष्काल वगैरह आफत कालमें किसीने अपने प्राण बचाने मरेहुए मनुष्यका मांस खाकर व खून पीकर अपना जी बचालिया व किसीने कुत्ते, कौवे आदिको खा लिये तो उनकी तरह सब लोग मनुष्योंको खानेवाले नहीं बन सकते, इसलिये ऐसा कल्पित एक ब्राह्मण का दृष्टान्त बतला कर ढूंढिये सामाजके सर्व साधुओंको निगुरा बना कर रात्रिमें जल रखने का हमेशाके लिये निषेध करना बड़ीभूलहै।

६५. फिरभी देखिये उपर के दृष्टांत में बतलाये मुजब ब्राह्मणों कभी एकबार ऐसा अनुचित काम पड़जाये तो फिर जन्मभर ऐसे जंगलके रास्ते अपने साथमें जललिये विना कभी न जावे परंतु ऐसे ढूंढिये साधु साध्वियों को रात्रिमें दस्त होनेका हजारों बार काम पड़ता है व पड़ताभी है जिसपरभी ऐसा दृष्टांत बतला कर रात्रिमें जल रखनेका निषेध करना यही बड़ी अनसमझहै और ऊपरके दृष्टांत मुजब ढूंढिये विना जल दस्तहोने पर अपना काम चलानेका मान्य करते जिसमें उस ब्राह्मणकी तरह जंगल जाकर कपडे से पूंछकर या बाम्हन की तरह रेतीमें गांड घिसनी करके जलसे शुचिकिये विनाही धर्मशास्त्रोंको हाथमें लेनेका ऊपरके दृष्टांत मुजब ढूंढिये मान्य करते इसी तरहसे कितनेक विहार करके दूसरे गांव आते समय रास्ते दस्तलग जावें तो वहांही जंगल जाकर जलसे शुचि किये विना पुस्तक आदिको हाथ लगालेतेहैं फिर गांवमें जाकर सब लोगों धर्मका उपदेश देने लगतेहैं और घर २ में आहार-पानीके लिये फि हैं परंतु दस्तकी अशुचिको जलसे शुचि करतेनहीं, यह कितनी अ अनुचित प्रवृत्तिहै. ऐसे अनुचित व्यवहारका त्याग करनाही श्रेयकारी

(रात्रिमें जल न रखनेमें [illegible] दोषोंकी प्राप्ति)

६०. [illegible] रात्रिमें जल न [illegible] अशुचि [illegible]
है ? कभी कोई अनुचित [illegible] [illegible] तो [illegible]
[illegible]
[illegible] पड़ताहै ३. [illegible]
[illegible] नहीं जल लेकर [illegible]
[illegible] रात्रिमें [illegible] पड़जाय ४. [illegible]

देखकर कभी कोई साधुका उड्डाह करे उससे लोगोंके कर्म बंधे ५ दूसरे
साधुओं परभी अप्रीति होवे ६, सूर्यका उदयहोनेके समय गृहस्थोंके
घरोंमें चटु, दन, घंटी आदि लोते पडे होवे उस समय साधुको गृहस्थों
के घरोंमें जानेकी मनाई है, तोभी दस्तकी हाजतसे जलके लिये लाचारी
से ऐसे समय गृहस्थोंके घरोंमें फिरना पडताहै, ७, सूर्योदयके समय
बहुत श्रावक-श्राविका सामायिक-प्रतिक्रमण आदि अपने २ नित्य
कर्तव्यमें बैठे होवें, उस समय साधु घरमें आकर खाली जावे तो उन
गृहस्थोंको देखो 'आज हमारे घरमें साधुजी आये परंतु जल मिला
नहीं, खाली पीछे चलेगये' इत्यादि पश्चाताप करना पडताहै ८, सूर्यो-
दय होतेही लोगोंने झाडु बुहारा भी निकाला न होवे, शुचि कर्ममें लगे
होवें, गृहकार्य को हाथही लगाया नहीं होवे उस समय गृहस्थोंके घरों
में जानेसे निर्दोष शुद्ध जल साधुको मिलना बडा मुश्किल होता
है ९, चुल्हेपर रात्रिको रखाहुवा जल लेनेसे वह जल प्रायः कच्चा
सचित्त जल होताहै उसका खुलासा पहिले लिख आयाहूं इसलिये
रात्रिवासी चुल्हेपरका कच्चा जल लेनेका दोष आताहै १०, कोई भक्त
श्राविका आदि सूर्यउदय होने पहिले जल्दी से अंधेरेमें धोवण वगैरह
करके रख छोडे वह जल लेनेसे साधुको आधाकर्मी और स्थापना
दोष लगताहै ११, जोरसे दस्तकी हाजत होनेपर फजर में प्रतिक्रमण,
प्रतिलेखनादि कार्य चित्तकी अशांतिसे शुद्ध नहींहोसकते १२, कभीपहर
भर या थोडीसी रात्रि जानेपर दस्त लगजावे तो संपूर्ण रात्रितक विष्टा
लिप्त शरीर रहताहै, वस्त्र खराब होतेहैं बडी विडंबना होतीहै १३, कभी
वर्षा चौमासेमें सूर्यउदय होनेही वर्षा शुरू होजावे तब गृहस्थोंके घरमें
जलके लिये जाना बने नहीं उधर दस्तकी जोरसे हाजत होवे तो बडी
तकलीफ भोगनी पडतीहै १४, कभी वर्षाकालमें रात्रिको दस्तलग
जावे सूर्योदय होतेही वर्षा वर्षने लगे, या १-२ रोजकी झरी लगजावे
उस समय फजरमें गृहस्थोंके घर जाकर जल लाकर शुचि कर सकते
नहीं और अशुचि रहनेसे प्रतिक्रमण-स्वाध्याय करना सूत्र के पानोंको
छूना, हाथमें लेने, व्याख्यान बांचना, गृहस्थोंको व्रतपच्चक्खान करवाने
वगैरहमें शास्त्रपाठका उच्चारण करना बने नहीं १५ जिसपरभी यदि
अशुचि शरीर होनेपरभी सूत्र वाक्य उच्चारण करे तो ज्ञानावर्णीय कर्म
बांधे १६. और 'पन्नवणा' सूत्रके प्रथमपदके पाठके अनुसार तथा १७

स्थानककी ऊपरमें बतलायी हुई सज्झायकी गाथाओंके अनुसार यदि कोई रात्रिमें आलस्य, भय या दस्तकी शुचिके लिये मात्राको इकट्ठा करके रक्खे तो उससे असंख्य संमूर्च्छिम पंचेंद्रीय मनुष्योंकी घात होनेका दोष लगे ॥१७॥

यदि कोई कहेगा कि रात्रिमें दस्त लगनेपर पत्थरके टुकडेसे या कपडेके टुकडेसे पूंछकर साफ कर लेवे तो अशुचि न रहेगी, यहभी अनुचितहै क्योंकि पत्थरके टुकडेसे कृमी आदिजीवोंकी हानिहोवे, कभी अंधेरेमें हाथ भरजावे, गुदाभी पूरी २ साफ नहींहोती, विष्टालगी रहती है तथा पत्थरका टुकडा, काष्ठका टुकडा, वांसकी शलाका आदि रात्रिके समय अंधेरेमें लेनेसे त्रस-स्थावर जीवोंकी हानिहोवे और कभी सर्प, बिच्छु वगैरह जहरी जीव काट खावें तो संयम विराधना व आत्म विराधना होजावे इत्यादि अनेक दोष आतेहैं इसलिये पत्थर काष्ठादिसे पूंछ कर साफ करना सर्वथा सूत्र विरुद्ध और लोक विरुद्ध भी है ॥१८॥

यदि कोई कहेगा कि हमलोग अल्प आहार करेंगे और शाम सवेर दोनों वार जंगल जाया करेंगे, उससे हमको रात्रिमें जंगल जानेकी व जल रखनेकी जरूरत नहीं पडेगी, यहभी अनसमजकी बातहै, क्योंकि हमेशा अल्प आहार करके संतोष रखने वाले सैकडे १-२ साधु साध्वी निकलेंगे किंतु सब अल्प आहार करनेवाले नहींहैं, खूब गहरा पेट भरने वाले बहुतहैं। तथा शामको जंगल जानेकी आदत रखने वालोंको प्रतिलेखना करनेमें, गौचरी जानेमें, आहार करनेमे, पढने-गुणनेमें, स्वाध्याय-ध्यानादि धर्मकार्य करनेमें बाधा आतीहै, अंतराय पडताहै, जिससे यह रीतिभी सर्वथा अनुचितहै। और वर्षा काल में शाम सवर दोनों वार नियम पूर्वक जंगल जानेका नहीं बन सकता, कभी वर्षाके कारणसे शामको जंगल नहीं जासके तो उसको रात्रिमें जगल जानेकी बाधा अवश्य होगी, इसलिये हमेशाके लिये सर्व साधु-साध्वियोंको रात्रिमें जल रखनेका निषेध करना व नहीं रखनेका हठ करना यह प्रत्यक्षही बडीभूल है ॥ १९ ॥

रात्रिमें सब साधु-साध्वियोंको बहुत वार पेशाब करना पडताहै, निशीथसूत्रके ऊपरमें बतलाये हुए पाठमें जंगल व पेशाब दोनोंकी शुचि करनेका लिखाहै, रात्रिमें जल नहीं रखनेवाले पेशाबकी शुचि नहीं करसकते, जान बुझकर हमेशा पेशाबकी अशुचि रखतेहै और पहीरनेके

वगैरहमें पैशावके छांटे लगकर वस्त्र गीला रहने परभी 'मूत्र' पढतेहैं यह सब कार्य सूत्र विरुद्ध होनेसे प्रत्यक्ष दोष लगताहै और मानावर्णीय बहेभारी कर्म बंधनहोतेहैं ॥ २० ॥

यदि कोई कहेगा कि पैशावसे गुदा धोकर शुचि कर लेंगे तो फिर अशुचि न रहेगी, यहभी सर्वथा अनुचितहै क्योंकि विष्टाकी तरह पैशावभी अशुचिहै जिससे निशीथ सूत्रमें जलसे पैशावकी शुचि करनेका लिखाहै इसलिये पैशावसे गुदाकी शुचि करने वाले या शुचि करनेका मानने वाले सब दोषके भागी हो कर प्रत्यक्ष अशुचि रहतेहैं और समाजकी अवज्ञा करवाने रूप जिनाज्ञाकी विराधना करते हुए लोगोंके व निजके मिथ्यात्वका हेतु भूत दुर्लभ बोधिका कारण बनतेहैं ॥ २१ ॥ इत्यादि अनेक दोषोंसे छुटनेका सरल उपाय तो यहीहै कि खूब तपस्या करो और तपस्याके पारणेमें भी सिर्फ दिनभरमें एकवार लूखा सूखा थोडा आहार व थोडा जल पीकर संतोष रखलो, उससे जठरा अग्नि बहुत तीव्र रहेगी, मंदाग्निका कोई रोग न होगा, तथा शामतक १-२ वार पैशावभी हो जावेगा, दिनमेंही जंगल जाकर सब निपटलो और रात्रिमें ध्यानमें खडे रहो. उससे रात्रिभर जंगल व पैशाव कुछभी न आवेगा, जिससे रात्रिम जल रखनेकी भी जरुरत न रहेगी, परंतु स्वादके लिये, पुष्टिके लिये दिनभरमें २-३ वार माल मसाले मीठाई आदि खावोगे; ५-१० वार खूब जल पीवोगे फिर रात्रिमें जल रखनेका, इनकार करोगे यह कभी नहीं बन सकता. इस बातको विशेष तत्त्वज्ञ पाठक गण आपही विचार सकतेहैं ।

(झूठे हठको छोडो व्यर्थ निंदा मत करावो)

६८. प्रिय पाठकगण ढूंढिये व तेरहापंथी साधु रात्रिमें जल नहीं रखते फजरमें सूर्यका उदय होतेही जंगलके लिये जातेहैं तव यद्यपि कभी जल लेकर जाते होवें तोभी लोगोंमें शंकास्पद ऐसी बात फैली हुईहै कि सायद पैशाव लेकर जाते होंगे या लोक दिखाउ खाली पात्र को ढककर ले जाते होंगे और वहांपर कदाचित पैशावसे शुचिकरते होंगे ऐसी अफवाह फैली हुई होनेसे मुसल्मान वगैरह कभी कोई ढूंढिया या तेरहापंथी साधु जंगल बैठा हो वहा पत्थर फैंकतेहैं. कोई गुप्तपने पहिलेसेही दूरसे झाडपर चढकर चेष्टा देखते रहतेहै फिर पिछाडीसे निंदा करतेहैं और पंजाब मारवाड. मेवाड दक्षिण. वराड देशमें अमरावती

वगैरह बहुतजगह रात्रिजल न रखने व पैशावसे व्यवहारकरने बाबत विवाद चल चुकाहै, निंदास्पद लज्जनीय झगडा भी होचुकाहै, हेंडबिलें, विज्ञापनें, तथा कितावेंभी छपीहैं, विरोधभाव कलेशसे हजारों रुपिये भी खर्च होचुके व होतेभीहैं, इत्यादि व्यर्थ निंदा झगडा होकर लोगोंके कर्मबंधन होतेहैं, ढूंढिये व तेरहपंथी समाजकी हिलना, अवज्ञा व धिक्कारका आरोप वगैरह अनेक अनर्थ हुएहैं व होतेभीहैं इसलिये ढूंढिये व तेरहपंथी सबे साधु-साध्वियोंको मेरा खास आग्रह पूर्वक यही कहनाहै कि रात्रिमें साधुको जल पीनेके लिये रखनेकी मनाईहै परंतु शरीरकी शुचिके लिये रखनेकी मनाई किसी सूत्रमें नहींहै इसलिये झूठे हठका त्याग करके रात्रिमें जल रखनेका गुरुकरके उपर मुजब अनेक अनर्थों की जडकोही उखाड डालना उचितहै।

६७. ढूंढिये लोग ऊपर मुजब अपने अनेक दोषोंको छुपानेके लिये प्रतिक्रमण सूत्रके नामसे संवेगियोंपर मूत पीनेका आरोप रखते हैं, यहभी प्रत्यक्ष झूठहै क्योंकि देखो प्रतिक्रमण' सूत्रमें पच्चक्खाण भाष्यकी इस प्रकार की गाथाहैं:—

"असणे मुग्गोयण सत्तु, मंड पय खज्ज रब्ब कंदाइ ॥ पाणे कंजिय जव कयर, ककडोदग सुराइ जलं ॥१४॥ खाइमे भत्तोस फलाइ, साइमे सुंठि जीर अजमाई ॥ महु गुड तंबोलाइ, अणाहारे मोय निंबाई ॥१५ द्वार ॥ ३ ॥"

६८. इन दो गाथाओंमें असनं, पानं, खाइमं, साइमं व अनाहार वस्तुओंका स्वरूप बतलायाहै, उसमें सर्व प्रकार के अनाज (धान्य) मीठाई, दूध, दही, घृत, तेल, मक्खण व 'कंदाइ' कहनेसे आलू, कांदे सुरणकंद, गाजर, मूले, शकरकंद, इत्यादि इन से पेट भरताहै, क्षुधा शांत होती है, जिस से यह सब असनमें गिनेहैं। नदी, तलाव, समुद्र व कांजीका जल, छाछकी आछ, वच-केर द्राक्ष आदिका धोवण तथा मदिरा, ताडी वगैरह पीनेके काममें आतेहैं, जिससे पानी में गिनेहैं। आंब, केले, सीताफल आदि फल व द्राक्षादि मेवा, खाड, शक्कर, खजूर वगैरह अनाजसे थोडी क्षुधाशांत करनेवाले होनेसे खादिममें गिनेहैं। सुंठ, जीरा ... पीपर, काली मीरच, पीपरामूल, इलायची, लौंग आदि ... दिममें गिनीहैं। यह चार प्रकारकी सब वस्तु आहार ... और अनाहार में गौमूत्रादि पैशाब

नींबके, पत्ते-छाली व आदि जड़से [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] गिलोय, धमासा, [illegible], [illegible], त्रिफला, [illegible], चंदन, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि सब तरह के जहर, अफीम ([illegible]) [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], थोयर, आक, [illegible] इत्यादि यह सब अनाहार वस्तुओंके नाम बतलायेहैं।

१९. इसी प्रकार प्रवचनसारोद्धार, श्राद्धविधि, प्रकरणमाला आदि में आहार व अनाहार की वस्तुओं के बहुत भेद बतलायेहैं। आहार की वस्तु लोगों के खाने पीने में आती है और स्वाद रहित अनाहार की वस्तु कभी रोगादिमें काम आतीहै। आहार करनेका त्याग करने वालों को कभी रोगादि कारण से अनाहार वस्तु लेनी पड़ेतो आहार त्याग रूप व्रत भंगका दोष नहीं आता। अब विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि उपरकी सब वस्तु साधु श्रावकके-खाने-पीनेके काममें कभी नहीं आती किन्तु जो वस्तु जिसके योग्य होवे वोही वस्तु ग्रहण कर सकेगा परंतु सब नहीं। जैसे जलके भेदोंमें समुद्रका जल व शराब (दारू) ताडी आदि का नाम बतलायाहै और साधु-श्रावक जलको सब कोई पीतेहैं, परन्तु समुद्रका खारा जल व दारू और ताडी कोईभी साधु-श्रावक कभी नहीं पीसकता, जिसपरभी कोई अनसमझ उपर के लेख में दारू व ताडी का नाम देखकर सब साधु श्रावकों को दारू पीने वाले मान ले तो उनकी बडी भारी अज्ञान दशाकी द्वेष बुद्धि व कुटिलता समझनी चाहिये। वैसेही अनाहार वस्तुमें राख, आक, पेशाब, थोयर, सब तरहके विष आदिके नाम बतलायेहैं, यहसब किसी भी साधु-श्रावकके रात्रिमें व दिनमें खाने पीने के काममें कभीनहीं आते यह प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध जग जाहिर बातहै। जिसपरभी ढूंढिये लोग प्रत्यक्ष द्वेष बुद्धिसे संवेगी साधुओंको पेशाब पीनेका झूठा कलंक लगातेहैं यह कितना भारी अधर्म है। देखो-जिसप्रकार राजा, बादशाह के राज्याभिषेक व विवाहशादी वगैरहके महोत्सवमें राजा बादशाहने मांस, मदिरा, मिठाई वगैरह सब तरहकी भोजनकी सामग्री तैयार करवाकर सब शहरके ब्राह्मण, वणिक, क्षत्रीय, मुसल्मान आदि सब जातिवालोंको जीमनेका आमन्त्रण देकर जिमाया, ऐसा किसी जगह का सामान्य लेख देखकर वणिक ब्राह्मण आदि सब जातिवालोंको मांस-मदिरा

खाने-पीनेवाले कभी नहीं ठहरा सकते, किंतु जैसा जिसके योग्य होवे वो वैसा भोजन करे, इसी तरह से अनाहार की वस्तुओंके सामान्य नाम देखकर 'जैसी जिसके लेने योग्य होवे वो वैसी वस्तु ले सकता' ऐसे स्पष्ट भावार्थको समझे बिना द्वेषबुद्धिसे संवेगी साधुओं पेशाब पीनेका प्रत्यक्ष झूठा कलंक लगाना यही बड़ा भारी पाप है।

(ढूंढियोंका कपट और द्वेषबुद्धिका प्रत्यक्ष नमूना देखो)

७०. प्रिय ! पाठक गण देखो ऊपर मुजब आहार पानी आगे पीछेके संबंध वाली सब बातोंको प्रत्यक्ष कपट से छोड़कर पेशाब की अधूरी बातका उल्टा भावार्थ लाकर भोले लोगोंको कैसे भ्रममें डालेहैं। आज तक किसीभी संवेगी साधुने रात में व दिनमें कभी पेशाब पीया नहीं और पीनेका किसी ग्रंथमें लिखा भी नहीं परंतु ढूंढिये लोग गुदका मुर्दा उठाकर स्नान करते नहीं तथा हमेशा गरीष्ट वस्तु खाने वाले साधु साध्वी और दयापालन करने के रोज माल उड़ाने वाले श्रावक-श्राविका अपने शरीरकी शुचिके लिये रात्रिमें जल रखने नहीं रखसकते, और सूतक की पूरी मर्यादा भी पालते नहीं इत्यादि अनेक लोक विरुद्ध अनुचित कार्य करके ढूंढिये अपने सामाजकी बड़ी निंदा करवातेहैं, लोगोंके कर्म बंधनका हेतु करतेहैं जिससे संवेगी [illegible] ढूंढियों को समझाते हैं कि ऐसे अनुचित कार्य मत करो उसपर ढूंढिये लोग अपनी भूलोंका सुधारा नहीं और अपने दोषोंको छुपानेके लिये संवेगी साधुओंके ऊपर प्रत्यक्ष झूठा पेशाब पीनेका कलंक लगाकर जैन समाज का द्रोह करतेहैं, बड़ी निंदा करवातेहैं राग द्वेष के झगड़े फैलातेहैं, यह कितना बड़ा झूठ व अन्याय है [illegible] इस बातका विचार [illegible] पाठक गण स्वयं कर सकते हैं।

७१. [illegible] एक ब्राह्मणने अपने बनाये वैद्यक [illegible] किसी शास्त्रमें मूत्र पानका लिख दिया है [illegible] मूत्र पीनेवाले [illegible] दोष लगाने [illegible] इसी प्रकार [illegible] अनाहार में लिख दिया है इस [illegible] पेशाब पीने वाले [illegible] ढूंढिये [illegible] मुजब अपने दोष [illegible]

के लिये द्वेष बुद्धि से संवेगी साधुओंको वैराग पीनेका दोष लगातेहैं यह प्रत्यक्ष झूंठ बोलकर महान् पापके भागीहोतेहैं और सरकारी फोज-दारीके कायदे मुजबभी ऐसा झूठा दोष लगाकर बदनामी करके मान हानि करने वाले सब ढूंढिये दंडके भागी ठहरतेहैं इसलिये किसीभी ढूंढियाको ऐसा झूठा आरोप लगाकर अनर्थ के भागी होना योग्य नहींहै।

[रजस्वला और खूनका खुलासा]

७२. ढूंढिये व तेरहापंथियोंकी श्राविकाएँ रजस्वला (ऋतुप्राप्ति) के ३ दिनोंमें अपने कुटुंबके लिये रसोई बनातीहै, दलना, पीसना, बरतनमांजना, गउदोना वगैरह बहुत प्रकारके गृह कार्य करती हैं तथा उनकी साध्वियेंभी रजस्वला धर्ममें धर्मशास्त्रोंको हाथ लगाना, श्राविकाओंका संसर्ग करना, घर २ में गोचरी को फिरना, व्रत पच्चक्खाण व मंगलिक का शास्त्र पाठ उच्चारण करना इत्यादि किसी तरहका पर-हेज नहीं रखती यह सब प्रत्यक्ष अनुचित व्यवहारहै। [इसलिये रजस्व-लामें पूरे ३ रोज (२४ प्रहर) तक ऊपर मुजब कार्य करने योग्य नहीं है]। उससे उत्तम कुलकी व उत्तम धर्मकी पुण्याई में हानि, बुद्धि-मतिकी मलीनता, भ्रष्टाचारका आरोप व लोगों में निंदा इत्यादि धार्मिक शास्त्रोंकी दृष्टिसे, व्यवहारिक दृष्टिसे, उत्तम कुलकी मर्यादाकी दृष्टिसे व शारीरिक दृष्टिसेभी अनेक तरहके नुकसान होते हैं इसलिये इस बातकी तीन रोजतक पूरी २ मर्यादा का पालन करना उचितहै।

७३. कितनेही कहतेहैं कि शरीर में किसी जगह गुंमड होकर खून निकलने लगे तो उसका परहेज नहीं रखा जाता उसी तरह स्त्रीके रजस्वला में भी गुमडकी तरह खून निकलताहै, उसका भी परहेज रखना नहीं चाहिये यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि गुमडातो बाल वृद्ध सब मनुष्योंके होनेकाहै बहुत लोगोंके कभीभी नहीं होता इस का कोई नियम नहीं है और रजस्वलातो उमर पाये स्त्रियोंके महीने २ अवश्य होताहै तथा गुमड व ढेलका छिलका किसी मनुष्यपर छाया पडतो कुछभी नुकसान नहीं होता परन्तु रजस्वला स्त्रीकी छाया यदि बडी-पापड आदि पर गिरजावे तो लाचप लगकर खराब हो जातेहै और शीतला, नारूहरा या आंखकी बीमारी वाले रोगी पर गिरजावे तो बडी हानि होतीहै दक्षिण वगैरह बहुत जगह रजस्वलाकी छायासे आंखों चलीगई, बिचारे जन्मभर दुःखी हुए यह हमने [illegible] देखाहै

इसलिये ऐसे रोगोंमें गृहस्थलोग ढूंढियोंकी रजस्वला साध्वी आदि मलीन स्त्रियोंका परहेज रखनेके लिये अपने घरोंके दरवाजे ... हैं यह प्रसिद्ध ही है। और गूंथडेवाली अपनी स्त्री के साथ गृहस्थों काम-भोगका परहेज नहीं होता परंतु रजस्वला स्त्रीके साथ ... तक काम भोगका सर्वथा परहेज होता है, जिसपर भी यदि ... अज्ञान वश रजस्वलाके साथ काम-भोग करे तो उससे धर्म कर्म कुलमर्यादा, लक्ष्मी व संप शांति आदिकी हानि करने वाली दुष्ट संतान पैदा होती है। रजस्वला अशुद्ध स्त्रीके कर्तव्यों में अंगचेष्टामें व मनके विचार वगैरह में भी अनेक तरहका अंतर रहताहै। रजस्वलाके पालन करने योग्य नियम और शुद्धिकी मर्यादा का विधान धर्मशास्त्रोंमें वैद्यक शास्त्रोंमें, तथा सर्व उत्तम जातिवाले पढेलिखे समझदार लोगोंमें प्रसिद्धहीहै इसलिये गूंथडेकी तरह रजस्वलाकी अशुद्धिका परहेज नहीं रखनेवाले ढूंढिये और तेरहापंथियोंकी बडीभूलहै।

७४. जिसप्रकार किसी स्त्रीको प्रतिक्रमण, स्तोत्रआदिका स्मरण करनेका हमेशा नियम होवे तो वह रजस्वलाके समय मनमें अपना नित्य कर्तव्य करे परंतु सूत्र का पाठ उच्चारण न करे जिसपरभी यदि कोई अनसमझ नवकार आदिका सूत्रपाठ उच्चारण करे तो ज्ञानावर्णीय कर्म बंधे। इसीतरह रजस्वलास्त्री अपने हाथसे साधुको आहार आदि भी न दे किंतु दूसरे किसीको बुलवाकर उनको उनके हाथसे दिलावे आप भावना भावे। यदि ऐसी दशामें कोई भूलसेभी अपने हाथोंसे साधुको आहार आदि देवे तो उससे शुद्ध धर्म कार्यों में विघ्नभूत साधुकी बुद्धि खराब होने वगैरह अनेक अनर्थ होतेहैं, इसलिये ऐसा करना योग्य नहींहै।

७५ यदि कोई शंका करेगा कि पेटमें खून भरा हुआ है वही रजस्वलावस्थामें बाहर निकलताहै उसमें कोई दोषनहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि पेटमें विष्टा-पेशाब-हाड-मांस आदि भरे हुएहैं परंतु तेजस-कारमण शरीरके संयोगसे शरीरके अंदर होनेसे विकार भाव वाले नहींहोते उससे उनको अशुद्धि नहीं मानी गई और शरीरके बाहर निकलनेपर हवाके स्पर्शसे विकार भाववाले हो... जिससे उनकी अशुद्धि मानी गईहै। उससे हाड मांस, विष्टा, खून वगैरह जिस जगह पर गिरे हो उस जगह सूत्र पढना, स्वाध्याय करना

यहांपर सूत्रकी स्वाध्याय नहीं करते थे, इसीतरह से ढुंढिये-तेरहापंथियोंकोभी अशुद्ध जगहमें, शरीर की व वस्त्रकी अशुद्धिमें और रजस्वला तथा सूतकमें नित्य नियमके कार्यमें सूत्रपाठका उच्चारण करना नहीं चाहिये किंतु होट, जबान, दांत न हिलाते हुए मनमें मौनदशामें कार्य करने चाहियें।

७८. फिरभी देखिये- अशुद्ध कर्तव्य वाला, मलीन परिणाम वाला, अशुचि शरीर वाला मनुष्य अपने हाथोंसे खाने पीने की वस्तु दूसरे को देगा तो उसको खाने-पीनेवालेके ऊपर उसकी मलीनता का प्रभाव अवश्य पडताहै, यह तत्त्व दृष्टिकी सूक्ष्म बातहै इसलिये समझदार लोग म्लेच्छ व दुष्ट मनुष्यके हाथकी वस्तु नहीं खाते। इसी तरहसे रजस्वलाके हाथसे बनाई हुई रसोई या हाथोंसे दी हुई भोजनकी वस्तु उनके कुटुंब वालोंको और साधु- साध्वी आदि धर्मी जनोंको लेना व खाना पीना योग्य नहींहै। ऐसेही जन्म-मरण आदिके सूतककाभी परहेज रखना उचितहै। ढुंढिये व तेरहापंथी साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंको इन बातोंका पूरा २ ज्ञान नहींहै इसलिये रजस्वलाके व जन्म-मरण वगैरहके अशुद्धि सूतककी पूरी २ मर्यादाका पालन नहीं करते तथा इनके शास्त्रोंमें इनबातोंकी मर्यादाका विधि विधान का लेशभी नहींहै। तोभी मंदिरमार्गी श्रावक-श्राविकाओंकी देखा देखी लोक लज्जासे कोई २ थोडासा कुछ पालन करतेभीहैं परंतु पूरा तत्त्व नहीं समझते और पूरी २ मर्यादाका पालनभी नहीं करसकते इसलिये इनोंके समाजमें इन बातों की सर्वत्र प्रवृत्ति नहीं है इसीसे महेश्वरी, अग्रवाल, ब्राह्मण, श्रावगी आदि उत्तम जातिवाले लोग इनलोगोंकी मलीनता सम्बन्धी बडी निंदा करतेहुए विचारे बहुत कर्म बंधन करतेहैं। अपने पिंडेको इनको हाथ लगाने छुने नहींदेते, यदि कोई भूलसे हाथ लगा दे तो कई लोग अपने पिंडे(मटके)को फोड डालतेहैं बडा झगडा होताहै, यहभी हमने कलकत्ता, अमरावती वगैरहमें प्रत्यक्ष देखाहै। और ये लोग ढुंढिये, तेरहापंथी साधुओंको अपने चौकेके पासभी नहीं आने देते, बडी अप्रीति करतेहैं, इसलिये ढुंढिये और तेरहापंथी साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंको खास उचितहै कि तात्कालिक रजस्वला, सूतक वगैरह अपने समाजकी निन्दाके कारणोंको अपने २ समाजमें सब जगहसे जल्दीसे दूर करके स्वदर्शनकी शुद्धिमें समाजके ऊपर मलीनता के प्रभावके लगेहुए कलंक को उत्तम शुद्ध स्वदर्शनकी छाप जगतमें बैठावें और लोगोंके दुर्

बंधनके झगडे व विरोध भावके कारणोंको मिटावें, यही मेरा हित बुद्धि का कथनहै।

७९. यदि कोई ऐसा समझेगा कि लोग निंदा करें तो हमारा क्या लेवें, उनके कर्म बंधेंगे हमारे तो कर्म टूटेंगे, यहभी, बडी अनसमझ की बातहै, क्योंकि देखो जिसप्रकार कोई उत्तम साधु नाम धराकर मांस आदि अभक्ष वस्तु खाने लगे अथवा किसी अकेली स्त्रीके साथ एकांतमें गुप्त रीतिसे परिचय करे जिससे लोग उसकी निंदा करें उससे उसके कर्म टूटते नहीं किंतु निंदा करानेके निमित्त कारण होनेसे विशेष बंधतेहैं। उसी प्रकार अज्ञान दशासे अनुचित निंदनीय व्यवहार करने पर लोक निंदाकरें उससे कर्म टूटते नहीं किंतु लोक विरुद्ध निंदनीय कर्तव्य करने से समाजकी, धर्मकी, साधु-श्रावक पदकी हिलना अवज्ञा करवानेके हेतु बननेसे दुर्लभ बोधिके महान् कर्मोका बंध होकर उससे अनंत संसार बढताहै। जिससे तप-जप आदि द्रव्य क्रिया सब धूलमें मिलकर बडा अनर्थ होताहै, इसलिये 'लोक निंदा करें तो हमारा क्या लेवें' इत्यादि मिथ्यात्वका झूठा भ्रम दूर करके समाजकी शोभा बढे वैसा शुद्ध व्यवहार वाले बननाही परम हितकारीहै।

---

८०. ढूंढिये कहतेहैं कि "ढूंढत ढूंढत ढूंढलिया सब, वेद पुराण कुराणमें जोई। ज्यों दही मांहीसु मक्खण ढूंढत, त्यों हम ढूंढियोंका मत होई॥ १॥" इस प्रकार हमने वेद, पुराण, कुराणमेंसे ढूंढकर हमारा दया धर्म निकाला है. इसलिये हमारा ढूंढिया नाम पडाहै ढूंढियोंकी यहभी अनसमझकी बात है, क्योंकि पढनेवाला विद्यार्थी कहलाताहै परंतु पढेबाद विद्यार्थी नहीं कहा जाता और अटवीमें रास्ता भूलनेवाला रास्ता ढूंढताहै जिससे ढूंढनेवाला ढूढक कहलाताहै, परंतु सरल रास्ते चलने वाला कभी ढूंढक कहा नहीं जाता वैसेही ढूढियो को सर्वज्ञ भगवानका सच्चा धर्म रूप सम्यग्दर्शनका रास्ता अभीतक नहीं मिला जिस से अभीतक भ्रममें पडेहुए अटवीमें रास्ता भूलने वालोंकी तरह ढूंढरहे हैं उससे ढूंढिये कहलातेहैं और दूसरी बात यहभीहै कि तीर्थकर भगवान् को केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न होनेसे जगतमें लोकालोकके सब भाव प्रत्यक्ष देखकर जानलेतेहैं फिर उपदेश देतेहैं ऐसे सर्वज्ञ भगवान्के शास्त्रोंमें सब तरह से संपूर्ण दयाका स्वरूप व उपदेश मौजूदहै इसलिये सर्वज्ञ भगवानकी आज्ञा मुजब चलने वाले सब जैनियोंको दयाके

स्वरूपके लिये वेद, पुराण, कुराण ढूंढनेकी कुछभी जरूरत नहीं।
जिसपर भी सर्वज्ञ शास्त्ररूप अमृतके समुद्रमेंसे ढूंढियोंको दयाका पूर्ण
२ स्वरूप न मिला उससे अज्ञानियोंके बनाये वेद, पुराण, कुराण आदि
मिथ्यात्वरूप जहर के समुद्रमेंसे दया ढूंढने वालों की विवेक बुद्धि
कैसी समझनी चाहिये। तत्वदृष्टिसे विचार किया जाये तो वेद, पुराण
कुराण ढूंढ (देख) कर मत चलानेवाले जैनी कहलानेके योग्य ही नहीं
हो सकते। जैसे 'मिथ्यात्वीकी विपरीत बुद्धि होती है'
ढूंढियोंकीभी विपरीत बुद्धि होगईहै जिससे सर्वज्ञ शास्त्र मुजब
और माय दयाका पूरा २ स्वरूप ढूंढिये समझ सके नहीं
सर्वज्ञ शास्त्र छोड़कर वेद, पुराणके नामसे । ५५।
चलाया फिर सर्वज्ञ शासनके नामसे फैलाया यह भोले जीवोंको
में डालनेकी कैसी मायाचारीहै। वेद, पुराणमें यज्ञ होममें पशु बा
व कुरानमें बकरीइदकी रौद्र हिंसाको धर्म मान लियाहै, वैसेही ढूंढि
येभी बासी, विदल, सहत, आचार, कदमूल, मक्खण, जलेबी, आदि
खानेमें और जिन प्रतिमा की व पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी निंदा करने
तथा जैन समाज में संपशान्ति का उच्छेद करके घर २ में भेद डाल
क्लेश फैलानेमें व अशुद्ध व्यवहार करके समाजकी निंदा करवानेमें
धर्म मानलियाहै, इन बातोंका विशेष विचार पाठक स्वयं कर सकें

८१. ढूंढिये अपनेको २२ टोलोंके नामसे प्रसिद्ध करतेहैं, इस
मतको फैलाने वाले २२ पुरुष हुएहैं, इसलिये २२ टोले कहलाते
इसपर लोग हंसी उडाने लगे कि टोले पशुओंके होतेहैं. जैन साधु
के समुदायका नाम गच्छ, कुल, शाखा आदिहैं परंतु टोले नहीं। इस
ढूंढियोंको टोलोंके नाममें शर्म आने लगी जिससे टोले कहना छोड़
स्थानक वासी, साधुमार्गी नाम कहने लगेहैं, तोभी जो २२ टोले
नामकी अनादि छाप पडगईहै वह सब नहीं मिट सकती।

८२. ढूंढिये अपनेको स्थानक वासी कहलाते [illegible]
है, यहभी अज्ञान दशाहै, देखो- मठमें रहने वाले उस मठके मठ
[illegible] कहलाते हैं और सर्वज्ञ शास्त्र
[illegible]
[illegible] कहलातेहैं जिससे साधु जैनियोंका स्थानक [illegible]
[illegible] जिसका निषेधहै

८३. ढूंढिये अपनेको साधुमार्गी कहतेहैं, यहभी सर्वथा अनुचितहै. जैनशासनमें सर्वज्ञ भगवान् तीर्थनायक जिनेश्वर महाराजके नामसे सर्वज्ञ शासन, जैनमार्ग, अर्हत् प्रवचन आदि नाम प्रसिद्धहैं। जिनेश्वर भगवान्रूप महाराजाके आचार्य-उपाध्यायरूप मंत्री (दीवान) कोटवालके हाथके नीचे साधुपद तो एक छोटे सीपाई समान है। जिसतरह राजा महाराजाके नामकी मर्यादा उठाकर अपने नामकी मर्यादा चलाने वाला सीपाई गुन्हगार होताहै। उसी तरह जिनेश्वर भगवान्के सर्वज्ञमार्ग-अर्हत्मार्ग आदि नामोंके बदले ढूंढियेलोग साधुमार्गी नाम चलातेहैं, इस से साधुमार्गी नाम चलाने वाले सब ढूंढिये जिनेश्वर भगवान्की आज्ञा उत्थापन करनेके गुन्हगार बनतेहैं।

८४. फिरभी देखिये आवश्यक, उववाई आदि आगमोंमें "निर्ग्रंथ प्रवचन" नाम आयाहै यहभी तीर्थंकर भगवान्के उपदेश दियेहुये और गणधर महाराजोंके रचेहुए द्वादशांगीका नामहै, उससे निर्ग्रंथ प्रवचन यहनाम तीर्थंकर-गणधरोंका कहाजाताहै. जिससे जैनसमाजमें जितने साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाएं होतेहैं यहसब जिनेश्वर भगवान् के उपदेश दियेहुए मार्गके अनुसार चलने वाले होनेसे जैनी कहलातेहैं इसलिये तीर्थंकर-गणधर महाराजोंके नाम चलानेके बदले ढूंढिये लोग अपना नाम बढानेके लिये साधुमार्गी नाम चलातेहैं इससे तीर्थंकर भगवान्की आशातना करनेके दोषी बनतेहैं।

---

८५. ढूंढिये अपनामूलनाम लुंकागच्छ कहतेहैं यहभी जिनाज्ञाविरुद्धहै. जैनशासनमें गणधर पूर्वधरादि प्रभावकआचार्यके नामसे गच्छ (साधुओंके समुदायका नाम) कहा जाताहै परंतु गृहस्थके नामका गच्छ नही कहा जाता. लुंका आचार्य-उपाध्याय या साधु नहींथा किंतु गृहस्थथा. जब यतिलोगोंके पासमें लुंका अशुद्ध पुस्तक लिखने लगा तब यतियोंने लुंकासे पुस्तक लिखवाने बंद करदिये. उससे लुंकाकी आजीविका रोजी। मारी गई जिससे लुंका यतियोंके ऊपर नाराज होकर निंदा करताहुआ यतियोंकी प्रतिष्ठा व आजीविकाका उच्छेद करनेके लिये जिनप्रतिमाकी उत्थापना करनेका संवत् [illegible] मे लुंकाने अपना नया मत चलाया लुंकाको जैनशास्त्रोंका तत्त्वज्ञान नहीथा उससे अनेक बातें जैनशासनकी मर्यादाके विरुद्ध चलाईहैं. वेही अबरूढि-की शास्त्रविरुद्ध बातें आजतक ढूंढियोंमें चलरहीहैं उन्हीका उल्लेख

इसग्रंथमें किया गयाहै इसलिये गुरुदयका चलाया हुआ मतको मान करना, उसीमें रहना, उसकी आज्ञा मुजब चलना यही सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै।

८५ यदि ढूंढिये कहेंगे कि उससमय श्वेताम्बर वाले सब यती हिंसाकरने वाले भ्रष्टाचारी होगयेथे, सच्चा उपदेश देनेवाला कोईभी रहाथा इसलिये लुंकाजीने सच्चा दयाधर्मका उपदेश देनेके लिये नया मत चलायाहै, यह कथनभी सर्वथा झुठहै क्योंकि महावीर भगवान ने भगवती सूत्रके २०वें शतकके ८वें उद्देशेमें फरमायाहै कि मेरा शासन २१००० हजार वर्षतक चलता रहेगा. इसीसे साबित होताहै कि प्रथम आरेके अंततक वीर भगवानके शासनमें शुद्धसाधु अवश्य होते रहेंगे परंतु किसी समय शुद्ध साधुओंका अभाव नहीं होता, किंतु सर्व इससमय (कभी बहुत, कभी कम) संयमीसाधु मौजूद रहतेहैं उसी जिस समय लुंकाजीने अपना नयामत चलाया उससमय शुद्ध संयमी सच्चा उपदेश देनेवाले बहुत साधु विद्यमान विचरतेथे जिससे ढूंढियोंका सब श्वेताम्बर वाले साधुओं को हिंसाकरने वाले भ्रष्टाचारी ठहरातेहैं सो सर्वथा प्रकारसे वीरप्रभुकी आज्ञा भंग करके मिथ्या उत्सूत्र प्ररूपणासे अपना संसार बढातेहैं और शुद्ध साधुओंको भ्रष्टाचारी असाधु ठहरानेका मिथ्यात्वकी प्ररूपणासे भोले जीवोंकोभी उन्मार्ग में डालनेके दोषी बनतेहैं।

८६ ढूंढिये कहतेहैं कि भस्मग्रह उतरा और लुंकाजीका दयाधर्म प्रगट हुआ' यानें श्रीवीरभगवान मोक्षपधारे तब भगवानके जन्म नक्षत्र ऊपर दो हजार वर्षकी स्थितिवाला भस्मग्रह बैठा था उससे भगवानके शासनमें पूजा होनेवाला हिंसाधर्म बढ गयाथा जिससे भस्मग्रह उतरा तब लुंकाजीने दया धर्मका प्रचार किया ढूंढियोंका यह कहना सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै क्योंकि देखो श्वेताम्बरोंने यह बात कही है कि- [illegible]

से चलाया. इसकथनसे अच्छीतरहसे साबितहोताहै कि सर्वज्ञशासनमें लोपहुए धर्ममार्गको तीर्थंकर भगवान्‌के सिवाय कोईभी गृहस्थ कभी नहीं चला सकता परंतु धर्मके नामसे पाखंड अवश्य फैला सकताहै। इसी तरहसे वीरप्रभुके शासनमें शुद्धसंयम पालन करनेवाले बहुत आचार्य, उपाध्याय और साधु विद्यमान विचरने वाले मौजूद होनेपरभी, जिसके जाति-कुलका ठिकाना नहीं, जिसका जैनसमाजमें जन्म होनेकाभी कोईप्रमाण नहीं, जिसने स्याद्वाद नयगर्भित अतीव गहन आशय वाले जैनशास्त्रोंको किसी गुरुके पास पढेनहीं, जिसको संस्कृत प्राकृत व शुद्ध भाषाकाभी पूरा २ ज्ञान नहीं, जिसने किसी तरहके श्रावकके व्रतभी लिये नहीं, ऐसा सर्वथा धर्मके अयोग्य, अज्ञानी पुस्तक लिखकर रोजी चलाने वाला लुंका लिखारीको पुस्तक लिखनेकी रोजी बंध होनेसे सर्वसाधुओंको भ्रष्टाचारी; झूठा उपदेशदेने वाले बनाकर भगवान्‌का सच्चा धर्म लोपहुआ ठहराकर फिर आप सच्चा उपदेश देनेवाला भगवान्‌के धर्मका प्रचारक बनगया, यहतो असंयति पूजारूप प्रत्यक्षही झूठा ढोंगहै इसलिये लुंकाजीने भस्मग्रहके उतरनेपर दयाधर्मके नामसे सर्वज्ञशासनमें भोलेजीवोंको भ्रममें डालनेकेलिये मिथ्यात्व फैलायाहै।

८८. फिरभी देखिये जिसको दुष्टग्रह लगे उसको उससमय कष्ट पडताहै और ग्रहउतरनेपर कष्ट मिटकर शांति मिलतीहै, यह बात प्रसिद्धहीहै। इसीतरहसे भस्मग्रहके कारण १२वर्षी कालमें तथा विधर्मी धर्मद्वेषी उपदेशकों व राजाओंके उपद्रवसे हजारों जैन साधुओंकी और लाखों श्रावकोंकी हानि वगैरह अनेक उपद्रव जैन समाजपर हुए परंतु भस्म ग्रहके उतरेबाद वैसे उपद्रव मिटे और फिरसे शांतिपूर्वक जैन समाजकी प्रभावना होने लगीहै। श्रीहीरविजय सूरिजीने तथा श्रीजिनचंद्र सूरिजी वगैरहोंने अकबर आदि बादशाहोंको प्रतिबोधकर अमारी घोषणा के परवाने करवाये उसीके अनुसार आजतक बहुत जगह पर्युषणा आदि जैन पर्वोमें अमारी घोषणा होतीहै, लाखों जीवोंकी दया पलरहीहै। इसलिये कल्पसूत्रमें बतलाये मुजब भस्म ग्रहके कारण जिन साधुओंकी पूजा-मान्यता कम होतीथी। उन्हीकी परंपरा वाले साधुओंकी भस्म ग्रहके उतरे बाद पूजा-मान्यता विशेष होने लगीहै। इस विषय संबंधी नया जिनराजकी मूर्ति पूजा सबंधी ढूंढियोंकी सब शंकाओंके समाधान श्रीविजयानंद सूरि (आत्माराम जी महाराजने सम्यक्त्व शल्यो-

द्धार " नामा ग्रंथम अच्छी तरहसे खुलासा सहित लिखाहै। श्रीआत्मा
नंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडल, रोशन मुहल्ला आगरा से मंगवाकर उस
ग्रंथको पाठक गण अवश्य पढें, बड़ा उपयोगीहै सब बातोंका खुलासा
होजावेगा। और इस पंचमआरेमें २३ उदय होनेवालेहैं, याने-
में २३ बार जैनशासनकी विशेष प्रभावना होनेका लेखहै उसमें प्रथम उ
दयमें श्रीसुधर्मस्वामी, रत्नप्रभ सूरिजी, भद्रबाहुस्वामी व संप्रतिराजाके
प्रतिबोधनेवाले आर्यसुहस्तीसूरि तथा विक्रमादित्यराजाके
सिद्धसेन दिवाकरसूरि और हरिभद्रसूरि आदि प्रभावक आचार्योंने
शासनकी बहुत प्रभावनाकी। और दूसरे उदयमें श्रीजिनेश्वरसूरि
अभयदेवसूरिजी, दादाजी जिनदत्तसूरिजी तथा १८ देशोंमें
णा करनेवाले कुमारपाल महाराजाको प्रतिबोधनेवाले हेमचन्द्राचार्य
महमद तुघलख बादशाहको प्रतिबोध करनेवाले जिनप्रभ सूरिजी आदि
प्रभावक आचार्योंने महेश्वरी, अग्रवाल, ब्राह्मण, क्षत्रीय आदिको उपदेश
देकर लाखों जैनीश्रावक बनाये, अनंत उपकार किये, बडी प्रभावना की
इसलिये पूर्वाचार्योंसेही और उन्हींके वंश परंपराके साधुओंसेही राजा
महाराजा-बादशाह-मंत्री-शेठ आदि बडों बडों के प्रतिबोधसे शासन
प्रभावना पूर्वक जगतके उपकारके और जीवदया वगैरहके बडे २ धर्म
कार्य हुएहैं, होतेहैं व आगे होवेंगे परंतु लुंका व लुंकाकी परंपराके अनु
यायी ढूंढिये-तेरहापंथियोंने अन्य लोगोंको प्रतिबोधकर जैनसमाजकी
वृद्धिकरनेके बदले जैनसमाजमें घर २ में, गाव २ में फुट डालकर द्वेष
करके कलेश-निंदा-विरोधभावसे हानिके सिवाय कुछभी लाभनहीं कि
याहै इसलिये ढूंढिये लोग दयाके नामसे ऐसे परमोपकारी शुद्धसंयमी
शासन प्रभावक पूर्वाचार्योंको भ्रष्टाचारीका झूठा कलंक लगानेका मह
न् पाप बांधकर भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें डालकर बिचारे अपनाम
फैलाते हुए संसार बढाते हैं।

८९. ढूंढिये लोग अपने धर्मकी महिमा बढानेके लिये लुंका
बड़ाधनाढ्य साहुकार व्रतधारी श्रावक मान बैठेहैं परन्तु लुंकाजीके मा
पिता-जन्मभूमिकेगावकानाम, जाति-कुटुम्ब आदि किसी बातका
भी प्रमाण नहींहै परंतु पुस्तक लिखनेवाले लिखारी लहीये ब्राह्मण
तरह लुंकाजीभी लिखारीका धंधा करके अपना रोजी चलाताथा
बात प्रसिद्धहीहै इसलिये किसी बातका प्रमाण बिनाही अपनी कल्

मात्रसे लुंकाजीको धनाढ्य श्रावक मान लेना प्रत्यक्ष झूंठहै।

और लुंकाजीने व लुंकाजीकी परंपरावाले ढूंढियोंने अपनी पूजा मान्यता बढानेके लिये जैनसमाजमें कैसे २ अनर्थ फैलायेहैं इसबातका प्रत्यक्षप्रमाण इसग्रंथ को पूरा २ पढनेवाले पाठक अच्छीतरहसे समझलेंगे।

---

९०. इस प्रकार ढूंढिये, बाईसटोले, स्थानकवासी, साधुमार्गी व लुंकागच्छ यह ढूंढियोंके मतके पांचोंही नाम सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध और श्वेतांबर जैन समाजसेभी अनुचित होनेसे अब ढूंढियोंको अपने मतका कोई सच्चा नया छठा नाम ढूंढकर निकालना चाहिये।

---

९१. कितनेक ढूंढिये अपने स्थानकवासी नामकी तरह मंदिर मार्गियोंको देरा (मंदिर) वासी कहतेहैं और उनकी देखादेखी कितनेक मंदिर मार्गी कच्छदेशादि वाले भोलेलोग अपनेको देरावासी कहतेहैं। स्थानकमें ठहरनेसे स्थानकवासी नामपडाहै परंतु मंदिरमें तो जिनराज के दर्शन भक्तिके सिवाय अधिक ठहरनेमें बड़ा दोष बतलायाहै इसलिये भूलसेभी मंदिर मार्गीयोंका देरावासी नाम कभी नहीं कहना चाहिये।

(ढूंढियोंकी महान् बडी झूंठी गप्पका नमूना देखो)

[दंडा रखनेका निर्णय.]

९२. ढूंढिये कहतेहैं कि बारावर्षी दुष्कालमें रांक भीक्षुक लोग साधुओंकी रोटी खोस कर लेनेलगे तब उसका बचाव करनेके लिये साधुओंने अपने हाथमें दंडा रखना शुरु कियाहै परंतु सूत्रोंमें साधुको दंडा रखनेका नहीं लिखा. यहभी ढूंढियोंका कथन झूंठहै. क्योंकि भगवती, निशीथ. आचारांग, प्रश्नव्याकरण, व्यवहार. दशवैकालिक आदि मूल आगमोंमें जगह २ पर साधुओंको दंडा रखनेका कहाहै।

९३. देखो ढूंढियोंका छपवाया हुआ 'भगवती' सूत्रका आठवां शतकका छट्ठा उद्देश पृष्ठ १०९९—११०० में साधुको आहार. पात्र. गुच्छा. रजोहरण आदि उपकरणोंका दान विधिमें दंडा संबंधी ऐसा पाठहै —

" निग्गंथं च णं गाहावईकुलं जाव केई दोहिं पडिग्गहेहिं उवनिमंतेज्जा. एगं आउसो अप्पणा पडिभुंजाहि एगं थेराणं दलयाहि. सेय संपडिग्गाहेज्जा तहेव जाव तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा नो अण्णेसिं दा-

यप सेसं तंचेव जाव परिट्ठावियव्वे सिया एवं जाव दसहिं पडिग्गहे एवं जहा पडिग्गह वत्तव्वया भणिया, एवं गोच्छग रयहरण चोलपट्टग कंबल लट्ठी संथारग वत्तव्वया भाणियव्वा जाव दसहिं संथारएहिं उवनिमंतेज्जा जाव परिट्ठावियव्वे सिया ॥ ६ ॥"

९४. अर्थः- " गृहस्थके यहां पात्र निमित्त गयेहुये साधुको कोई दो पात्रकी निमंत्रणा करे और कहे कि अहो आयुष्मन्! इसमेंसे एक पात्र तुम रखना और दूसरा पात्र स्थविरको देना फिर उस पात्रको लेकर जहां स्थविर होवे वहां साधुको जाना गवेषणा करते हुए वह स्थविर नहीं मिले तो वो पात्र स्वतः को रखना नहीं, दूसरा मन को देना नहीं, परंतु एकांतमें जाकर परठना. जैसे दो पात्रका कहा वैसेही तीन चार यावत् दश पात्रका जानना और जैसे पात्रका कहा वैसेही गोच्छक, रजोहरण, चोलपट्टक, कंबल, यष्टि, व संथाराकी वक्तव्यता दशतक कहना ॥ ६ ॥"

९५. देखो- ऊपरके मूलपाठ और अर्थपर विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि जिसप्रकार पात्र, गुच्छा, रजोहरण, चोलपट्टक, कंबल आदि उपकरणोंको साधु गृहस्थोंके घरसे यावत् दश दश तक लेवे उनमेंसे एक एक अपनेलिये रक्खे और बाकीके नव २ अन्य साधुओंके वह उपकरण लानेकी रीतिहै। उसी प्रकार यष्टि दंडा व संथारा दश दश तक लेकर दूसरे साधुओंको देनेकी सूत्रकी आज्ञाहै, इसीसे यही तरह सिद्धहोताहै कि सब साधुओंको रजोहरण, कंबल, संथारा आदिकी तरह दंडा भी खास उपयोगी वस्तु होनेसे ऊपरके आगमकी आज्ञा मुजब अवश्यही रखना चाहिये। जिसपरभी ढूंढिये रखने नहीं और संवेगी रखतेहैं उसका निषेध करतेहैं, यहतो प्रत्यक्ष सूत्रकी आज्ञा विरुद्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणासे बड़ा अनर्थ करतेहैं।

९६. ढूंढियोंका छपवाया निशीथ सूत्रका प्रथम उद्देशा में ऐसा पाठ है:—

"जे भिक्खू दंडयं वा, लट्ठियं वा अवलेहणिय वा, वेणुसूइं वा अन्नउत्थिएण वा गारत्थिएण वा, परिघट्टावेयइ वा संठावेइ वा जमावेइ वा अणुजाणइ वा जाव साइज्जइ ॥"

९७ अर्थ- जो साधु दंडा [मनुष्य प्रमाण] लाठी [प्रमाण] कदम कहतां (चौमासा आदिमें कर्दमसे पाव भरावे

नेकी लकडीके वांसके खपाटिये) इनको अन्य तीर्थिक तथा गृहस्थके पास सुधरावे समरावे यावत् सब उक्त प्रमाने कहना यावत् अच्छा जाने " तो प्रायश्चित्त आवे।

९८. फिरभी इसी निशीथ सूत्रके पांचवें उद्देशके पृष्ठ ५८-३९वें में ऐसा पाठहैः— " जे भिक्खू दंडगं जाव वेणुसुयणं वा पलिभिंदियं २ परिट्ठावेई, परिट्ठवंतं वा साइज्जई ॥ ६७ ॥ "

९९. अर्थः- "जो साधु दंडेको यावत् बांसकी खपाटी पूर्ण स्थिर चलने योग्यहै उसको भांग तोड परिठावे परिठातेको अच्छा जाने ॥ ६७ ॥" तो प्रायश्चित्त आवे

१०० फिरभी देखो ढूंढियोंकेही छपवाये प्रश्नव्याकरण सूत्रके पृष्ट १९६ में " पीढफलग, सिज्जा, संथारंग वत्थं, पाय, कंबल, दंडक, रयहरणं, निसेज्जं,चोलपट्टग, मुहपोत्तियं, पायपुंछणादि भायण भंडोवहि उवगरणं "

१०१. अर्थः- " बाजोट, पाटपाटला, शय्या, संथारा, वस्त्र, पात्र, कंबल रजोहरण, चोलपट्टा, मुखवस्त्रिका, पादपुंछन,मात्रकादिकका भाजन भंड तुंबादि उपधि वस्त्रादि होवे "

१०२. देखिये ऊपरके प्रश्नव्याकरण सूत्रके मूलपाठमें "दंडक" पाठ मौजूदहै तोभी ढूंढियोंने अपने बनाये अर्थमें दंडाका अर्थ उडा दिया यही कपट सहित प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणाहै।

१०३. आचारांग सूत्रके सोलहवें अध्ययनके प्रथम उद्देशके दूसरे सूत्रमें सर्वसाधुओंको दंडा रखनेका बतलायाहै तथाहिः-

"से अणुपविसित्ताणं गामं वा जाव रायहाणिं वा णेव सयं अदिन्नं गिण्हेज्जा णेवण्णेणं अदिन्नं गिण्हावेज्जा, णेवण्णेणं अदिन्नं गिण्हंतं समणुजाणेज्जा। जेहिं वि सद्धिं संपव्वइए. तेसिंपि याइं भिक्खू छत्तयं वा मत्तयं वा डंडगं वा चम्मच्छेदणगं वा तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुन्नविय अपडिलेहिय अपमज्जिय णो गिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणुन्नविय पडिलेहिय पमज्जिय गिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा। "

१०४ इसपाठमें साधुको गामादि नगरमें यावत् राजधानीमें अन्यको किसी गृहस्थ का भी वस्तु मालिक के आज्ञा बिन लेना नहीं दूसरोंके पाससे लिवाना नहीं व लेनेवाले उनकी अनुमोदना भी करना नहीं। अच्छा समझना नहीं। और सिवाय क्या कहना जिसके साथमें दीक्षाली

हो, पासमें रहतेहों उन साधुके गर्मीमें या पर्वोंमें मोठनेरूप छत (चर्म) मात्रक, दंडा व फोड़ा फुनसी गडगुंबडादिको साफ करनेके लिये किसी गृहस्थके पाससे लाये हुए चाकू कैंची आदि चर्मछेदक वगैरह वस्तुओंमेंसे कोईभी परतु उन साधुकी आज्ञा लिये बिना और देखकर पूंज प्रमार्जे विना लेना कल्पेनहीं, इसलिये उन साधुकी आज्ञा लेकर उस वस्तुको पूज प्रमार्जकर लेना कल्पे।

१०५ देखो उपरके पाठमें दीक्षा लेने वाले साधुके दंडा आदि वस्तु कहीहै इसीसे सिद्ध होताहै कि जिसप्रकार पेशाब करनेका मात्रक आदि साधुके हमेशा काममें आनेवाली उपयोगी वस्तुहै, उसी प्रकार दंडाभी आहर, विहार निहार आदि कार्योंमें बाहर जानेके लिये हमेशा उपयोगमें आनेवाला होनेसे सबसाधुओंको रखना पड़ताहै उसका निषेध करना बड़ी भूलहै।

१०६. दशवैकालिकसूत्रके चौथे अध्ययनमें दंडा संबंधी नीचे मुजब पाठहै:—

"से भिक्खू वा भिक्खूणी वा संजय-विरय पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिपीलिअं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुछणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जगंसि वा संथारगंसि वा तहप्पगारेउवगरणजाए तओसंजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिअ पमज्जिअ एगंतमवणेज्जा णोण संघायमावज्जेज्जा ॥ ६ ॥"

१०७. उपरके पाठमें संयमवान, तपस्या करनेमें आशक्त व पच्चक्खाणसे पापकर्मको दूर करने वाले ऐसे साधु साध्वी दिनमें व रात्रिमें अकेलेमें या मनुष्योंकी पर्षदामें सोतेहुए या जागृत दशामें कीड़े. पतंगीये, कुंथुये, कीडीयें, आदि त्रसजीव अपने हाथोंमें, पैरोंमें, बाहुमें, साथलमें, पेटमें, मस्तकमें, या वस्त्रमें, पात्रमें ,कम्बलमें, पादपुछन (दंडासन) में, रजोहरणमें, गुच्छामें, जलकेभाजनमें, दंडामें, पाटीयेमें, चौकीमें और संस्थारा आदि अन्यभी साधुसाध्वीके उपयोगी उपकरणोंमें किसी प्रकारके त्रस जीव चढे होवें उन्होंको पूज-प्रमार्जनकर यत्नापूर्वक एकांत जगहमें परिठवें (रखदे) परतु पीडा करें नहीं।

और गृहस्थ दातारको अप्रीति होनेसे सर्वज्ञ शासनकी लघुता मिथ्यात्व बढे इत्यादि अनेक दोष आतेहैं, इसलिये जिसको देनेके जो वस्तु लाये वह उसीको देना उचित है, परंतु ' ... उसको दूंगा' ऐसा सामान्य नियमसे कोईभी वस्तु लाकर हर एक साधुको देनेमें कोई दोषनहीं इसलिये भगवती सूत्रके उपरमें बतलाये पाठ के अनुसार तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित, गुरु, आचार्य, उपाध्याय आदि सबको वस्त्र, पात्र, कंबल, दंडा, संथारा आदि उपकरण लाकर देने चाहियें। इनकी भक्तिसे बडी निर्जरा होती है।

११०. व्यवहार सूत्रके आठवें उद्देशा में भी स्थविर साधुको दंड रखनेका लिखा है वहांभी स्थविरका प्रसंग होनेसे स्थविरका नाम बत लाया है परंतु निशीथ, आचारांग, दशवैकालिक आदि आगम प्रमाणानु सार अन्य सर्व साधुओंको दंडा रखनेका निषेध कभी नहीं हो सकता।

१११ यदि ढूंढिये कहैं कि दंडासे जीवोंकी हिंसा होतीहै जिससे दंडा शस्त्ररूप है, इसलिये रखना योग्य नहीं है, यहभी अनसमझकी बा है क्योंकि देखो हाथ, पैर, वस्त्र, पात्र, रजोहरण व दंडा आदि उपकर णोंसे उपयोग पूर्वक यत्नासे काम लिया जाये तो सब संयम धर्मके आ धार मूल जीव दयाके हेतु हैं और बिना उपयोग अयत्नासे काम लिया जाये तो हाथ, पैर, रजोहरण आदिभी जीव हिंसा करने वाले शस्त्र होते हैं इसलिये सब उपकरणोंमें प्रमाद हिंसाका हेतुहै और यत्ना जीव दयाका हेतु है जिसपरभी दंडाको हिंसा करने वाला शस्त्ररूप ठ हरा निषेध करने वाले ढूंढियोंकी बडी भूल है।

११२. फिरभी देखिये किसी समय प्रमादवश किसीके रजोहरणसे भी जीव हिंसा हो जाये तोभी सर्व साधुओंके संयम धर्मका हेतु होनेसे रजोहरणका निषेध कभी नहीं हो सकता। इसी तरहसे कभी प्रमादवश भूलसे किसी साधु के दंडासेभी कुछ हिंसा होजाये तोभी दंडा सब साधुओंके संयम धर्मकी तथा शरीरकी रक्षा करनेवाला होनेसे दंडा रख का निषेध कभी नहीं होसकता जिसपरभी अज्ञानतासे निषेध कर वाले सब ढूंढिये, तेरहापन्थी उत्सूत्र प्ररूपक बनते हैं।

११३ ढूंढिये कहतेहैं कि दंडा भय करनेवाला क्रोधमूर्तिका है इसलिये रखना योग्य नहींहै यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि बा ढूंढियेही वृद्ध साधु-साध्वियोंको दंडा रखना मान्य करतेहैं। अब विचा

करना चाहिये कि यदि दंडा भय करनेवाला क्रोधमूर्तिका हेतु होवे तो ढूंढियों के वृद्ध साधु-साध्वियोंकोभी कभी नहीं रखना चाहिये परंतु रखते हैं इसलिये ऐसी २ कुयुक्ति करके साधुओंको दंडा रखनेका निषेध करना बड़ी भूल है।

११४ (दंडा हमेशा साथमें रखनेमें १५ गुणोंकी प्राप्ति)

१-भगवती, आचारांग, प्रश्नव्याकरण, निशीथ, दशवैकालिक, ओघ-निर्युक्ति, प्रवचन सारोद्धार आदि अनेक शास्त्रोंमें तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंने साधु-साध्वियोंको दंडा रखनेका बतलाया है इसलिये दंडा रखने वाले मूल आगमोंकी तथा तीर्थंकर गणधरादि महाराजों की आज्ञाके आराधक होते हैं।

२-जिसप्रकार रजोहरण व मुंहपत्ति सर्व साधु-साध्वी हमेशा पासमें रखतेहैं, जिससे जब काम पडे तब पूजन प्रमार्जन आदिका काम लिया जाताहै। उसीप्रकार सब साधु-साध्वियोंको ग्रामांतर व गुरु वंदनादि के लिये बाहर जाते समय या गृहस्थोंके घरोंमें आहार-पानी वगैरहके लिये जाते समय दंडाभी हमेशा साथमें रखना चाहिये, जिससे कभी सर्प आदिके सामने आजानेपर दंडेसे अलग हटाकर संयमरक्षा, तथा शरीर रक्षाका लाभ लेसके और १-२ माल (मजले) चढने उतरने में भी दंडाका सहारा रहताहै। अन्यथा कभी सीढी चढते उतरते पैर चुक जावे तो हाथ, पैर, पात्र आदिका नुकसान होजावे, उस समयभी-दंडा बडा सहारा देकर सबका बचाव करताहै।

३-गृहस्थोंके घरोंमें आहार लेते समय दंडाके सहारेसे आहारके झोली-पात्रे सब अधर रखकर आहार लिया जाताहै, परंतु दंडा नहीं रखने वाले ढूंढिये और तेरहापंथी साधु-साध्वी घर २ में जमीनके उपर झोली-पात्रे रखदेते हैं उससे जमीनपरके कीडी.कुंथुये आदि सूक्ष्म-बादर अनेक जीवोंकी हानि होताहै। तथा अन्यभी जाहिर उद्घोषणा नंबर दूसरे के पृष्ठ ४८ वें में बतलाये मुजब अनेक दोष आतेहैं।

४-रास्तामें चलते समय कभी अकस्मात कांटा या ठोकर लगने पर या खाड आदिमें पैर चुक जानेपर नीचे गिरने लगें उससमय दंडा के आधारसे शरीर, वस्त्र पात्र आदिका बचाव होता है अन्यथा दंडा के अभावसे नीचे गिर जावे तो अनेकजीवोंका नाश होनेसे संयमकी

तथा आत्माकी विराधना होती है ऐसे समयमें भी दंडा संयम-शरीर की रक्षा करताहै।

५-विहार कर दूसरे गांव जाते समय रास्तामें भूखसे या तृषासे साधु या साध्वी चलनेमें अशक्त होगये हों या चक्र आने लगते हों ऐसे समय वहांपर गांवमें पहुँचनेके लिये दंडा बड़ा सहायक होता है।

६-रास्तामें नदी-नाले आदिमें जल होवे और नीचे की भूमि देखनेमें नहीं आती हो तो दंडासे पहिले जलका माप करके पीछे उतरा जाताहै परंतु दंडाके अभावमें थोड़े जलके भरोसे उतरने पर अधिक ऊंडा जल आजावे या कीचड़में पैर फँस जावे या चीकनी मट्टीमें फीसल जावे तो वहां पर बड़ी आफत आतीहै और यदि गिरजावें तो मनुष्यजीवोंकी हानि व पुस्तक आदिका नुकसान होताहै ऐसे समयमेंभी दंडा बड़ी सहायता देकर सबका बचाव करताहै।

७-कभी थोड़ी देरकेलिये बहुत जल वाली नदी उतरते समय नावमें बैठना पड़े तो नावमें चढ़ते और उतरते समय दंडाका सहारा होताहै अन्यथा कभी गिर जावें तो शरीर-संयम की हानि व लोगोंमे हंसीका हेतु बने इसलिये दंडा बड़ा

८-वर्षा चौमासामें आहार-पानी में कीचड़में पैर न फीसलने पावे ... ले

९-रास्तामें चलते समय काटने ले गऊ-भैंस वगैरहसेभी दंडा बचाव ... त्ते आदिको मारते नहीं किंतु लकड़ी रहते हैं साधुके नजदीक नहीं आते भौंकते हुये काटनेको पासमें ... ढूंढिये साधु अपने ओघेको कुत्ते ... कायकी विशेष हिंसा होतीहै तथा खूब भौंकताहै और कभी ओघेको बनताहै ऐसे समय हाथमें ... समय कभी न आवे, वहां भी ...

१०-हाथमें दंडा होनेसे चोर या हिंसक प्राणीसेभी बचाव

११-विहारमें कभी तपस्वी आदि चलनेमें असक्त होतो दंडों से कपडेकी झोली बनाकर उसमें उनको बैठाकर गांव में ले आ सकतेहैं।

१२-बहुत साधुओंके लिये आहार लाते समय दंडाके अभावमें आहारके वझनसे हाथ दुखने लगताहै उस समय गृहस्थोंके घरोंमें या रास्तामें किसी जगह आहारके पात्रे जमीनपर रखना अनुचितहै और दंडा हाथमें होतो दंडाके सहारेसे हाथको तकलीफ नहीं पडती ऐसे समयमेंभी दंडा सहायता देताहै।

१३-छोटीदीक्षा वाले साधुको आहारादि करनेकेलिये बडी दीक्षा वाले साधुओंसे अलग बैठनेकी मांडली करनेके काममेंभी दंडा आताहै।

१४-दंडामें मेरुका आकार तथा दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रयीकी व पंच महाव्रतकी सूचनारूप रेखा होनेसे दंडा हर समय संयम धर्ममें सावधानी रहनेका स्मरण करानेका हेतु है।

१५ दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी आराधना करनेसे मोक्ष प्राप्तिका कारण बनताहै और शरीरकी रक्षा करने वाला दंडा है इसलिये कारण कार्य भावसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा मोक्षका हेतुभी दंडाहीहै।

इत्यादि अनेक गुण दंडा रखनेमें प्रत्यक्षहैं. मूल आगमोंमेंभी दंडा रखने संबंधी उपरमें बतलायेहुवे पाठ मौजूदहैं। इसलिये धारा वर्षाकालमें साधुओं ने अपने हाथमें दंडा रखना शुरू किया है ऐसा कहनेवाले सब ढूंढिये व तेरहापंथी लोगों को प्रत्यक्ष झूठ बोलकर उत्सूत्र प्ररूपणासे भोले जीवोंको व्यर्थ मिथ्यात्वमें डालकर अपने कर्म बंधन करने योग्य नहीं है।

११६ फिरभी देखिये जिसप्रकार मध्यान समय सूर्यके सामने धुल फैंककर अपने मस्तक पर डालने वाले अज्ञानक बालजीव सूर्यकी हंसी करते हुवे बडे खुशी होतेहैं उसीप्रकार [illegible] [illegible] हुवे मूल आगमानुसार दंडा रखनेवाले संवेगी साधुओंके [illegible] [illegible] करकर हंसी करते हुवे बडे खुशी होतेहैं मगर [illegible] [illegible] [illegible] मूल आगमोंकी व पूर्वाचार्योंकी [illegible] [illegible] और सर्व साधुओंकी [illegible] आशातना करनेके दोषी बनकर अपने [illegible] संसारमें [illegible] करते है। इसलिये ऐसे महान् पापसे डरनेवाले ढूंढिये- तेरह पंथियोंको कभीभी किसीभी संवेगी साधुकी [illegible] [illegible] करना योग्य नहीं है और

चौथमलजी आदिकी तरफसे उपरमें बतलाई हुई किताबों में हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेके लिये कुयुक्तियों करके झूठे २ शास्त्रों के नाम लिखकर भोले लोगोंको भ्रममें न डाले जाते और न बांधनेवाले संवेगी साधुओंके उपर बहुत अनुचित आक्षेपोंकी वर्षा न होती तो मेरेको यह ग्रंथ बनानेका कोई कारण नहींथा इसलिये इस ग्रंथके बनानेमें मूल कारण भूत चौथमलजी आदि को ही समझना चाहिये।

१२०. कितनेक ढूंढिये कहतेहैं कि हम वाद् विवादका झगडा नहीं चाहते तुम तुमारी करो हम हमारी करें हमतो संप चाहतेहैं, यह कथन मध्यस्थ भावका नहींहै किन्तु मायाचारीका है, यदि सरल हृदयसे शुद्धभावहो तो हमेशा मुंहपत्ति बांधने वगैरहकी झूठी बातोंका अवश्य त्याग करें, जबतक झूठी बातोंका आग्रह त्याग न करें तबतक संप चाहनेवालोंका मध्यस्थ भाव कभी नहीं होसकता, यहतो भोले जीवोंको बहकाकर भले बननेकी बहाने बाजीहै। इसलिये ऐसी माया प्रपंचकी बातें छोडकर जिसतरह श्रीबुंटेरायजी, आत्मारामजी, मूलचंदजी, वृद्धिचंदजी आदि सैकडों साधु साध्वियोंने और हजारों श्रावक-श्राविकाओंने मुंहपत्ति बांधनेके झूठे मतको त्याग किया है। उसीतरह आत्मार्थी सब ढूंढिये-तेरहापंथियोंकोभी करना उचितहै परंतु लोकलज्जासे खोटी पंथरूढिको चलाना योग्य नहीं है। ॥ इति शुभं ॥

श्रीवीरनिर्वाण २४५२, विक्रमसंवत् १९८३ कार्तिक सुदी ११. हस्ताक्षर श्रीमन्महोपाध्यायजी श्री १००८ श्री सुमति सागरजी महाराजके चरण सेवक पं० मुनि-मणिसागर-जैन धर्मशाला, राजपूताना, कोटा.

आगमानुसार मुंहपत्ति का निर्णय तथा जाहिर उद्घोषणा नम्बर १-२-३ तथा ४-५-६ और श्रीजिनप्रतिमा को वन्दन-पूजन करनेकी अनादि सिद्धि आदि ग्रंथ भेट मिलने के ठिकाने:—

१. श्री महावीर जैन लायब्रेरी, राजपूताना, कोटा.
२. श्रीजिनदत्तसूरिजी ज्ञानभंडार, ठि० गोपीपुरा, नेमुभाईकी वाडी, गुजरात, सूरत.
३. श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी जैन ज्ञान भंडार, ठि० मोरसलीगली, मालवा इन्दौर.
४. श्रीआत्मानन्द जैन पुस्तकप्रचारकमंडल, ठि० रोशनमुहल्ला, यू० पी० आगरा.
५. श्रीआत्मानंद जैन ट्रेक्ट सोसायटी, पंजाब, अंबाला शहर.
६. श्रीआत्मानंद जैन सभा, काठियावाड, भावनगर.
७. श्री जिन चारित्र सूरिजी, बडा उपाश्रय, मारवाड, बीकानेर.

३ जैनशासनमें जिनप्रतिमाको वंदन-पूजन करने की अनादिकी मर्यादा है, उसका बडा फल बतलाया है, यहाँ सम्यक्त्व शुद्धिका खास कर्तव्य है. परंतु जैन आगमोंके अर्थको समझे बिना पुस्तक लिखनेवाले लुंके लहियेने विक्रम संवत् १५३५ में जिन प्रतिमाको वंदन-पूजन नहीं करनेका अमदावादमें नया मत चलाया तोभी उसने मुंहपर मुंहपत्ति नहीं बांधी थी. मगर उसकी परंपरावाले लवजीने दयाके नामसे मुंहपत्ति मुंह पर बांधनेका संवत् १७०९ में सुरत शहर में नवीन पंथ चलाया है. यह इतिहास जैनमें प्रसिद्धही है. परंतु पहिले बांधते थे, पीछे अमुक समय अमुक मुनिने अमुक नगरमें हाथमें रखनेका चलाया ऐसा किसी प्रमाणसे भी कभी साबित नहीं हो सकता.

४ दिनभर मुहपत्ति बंधी रखनेसे दयाकी जगह मुंह बंधा हुआ रहनेसे नाकसे जोरकी हवा निकलकर ज्यादे हिंसा होती है १, थूंकसे मुहपत्ति आली (गीली) होनेसे मुह झूठारहता है २, वर्षाऋतुमें थूंककी आली मुहपत्ति सुकाने परभी नहीं सुकनेसे असंख्यात समुर्छिम जीवोंकी विशेष हिंसा होती है ३, जोर जोरसे बोलने परभी आवाज रुक जाती है उससे धर्मोपदेश सुनने वालों को साफ समझ में नहीं आता है ४, गुंगेके जैसा स्वर भंग होता है ५, दिन भरमें नवी नवी २–३ मुहपत्ति बदलनी पडती हैं नहीं तो बहुत गंधकी होती है ६, कदाचित् नाक का मैल लग जावे तो अनुचित दिखता है ७, धूपके दिनोंमें प्रसेवासे मुहपत्ति बारबार आली होती है उससे आदमी को बडी अमुजन (घबराट) की तकलीफ भोगनी पडती है ८, और जैन शास्त्र विरुद्ध होनेसे जिनाज्ञा भंग होनेका दोष लगता है ९, मुहका रूप बिगडता है, उनमें लोग मूंह बंधे मुंह बंधे कहके हसते हैं, उससे शासनकी हीलना होताहै १०, डोरेसे मुहपत्ति बांधनेसे मुहके चांपका जाता है उससे बोलती वक्त मूछके केस मुहमें जाते हैं थूकसे आले होते हैं ओष्ट को लगजाते हैं बोलने मे बाधा होती है.

ढूंढिये साधु चौथमलजीको विनंती.

दीक्षाकी प्रतिज्ञा;– झूठा छापोंसे क्लेश बढाना बंध करो.

इन दिनोंमें इन्दोर शहरमें मुहपत्तिकी चर्चा जोरसे चल रही है. उसमें आपके पक्षवाले लोग गालागालीकी बातें करते हैं, यह सोब फजूल है, चर्चाका विषय छोडकर विषयांतरसे दूसरी दूसरी बातें करके निंदा करनेसे क्लेश बढता है, लोग हसते हैं, आपके ही पक्षकी हीनता होती है. और सब लोगोंके दिलमें आपका पक्ष प्रत्यक्ष झूठा मालूम होता है. इस लिये आपको विनती करता हूं कि —निंदा-ईर्षाकी तरह फजूल विषयांतरकी बातें करना या छपवाना छोडकर यदि आठ रोजमें न्यायसे राज्य अधिकारियोंके सामने ४ पंडितोंके समक्ष "जैनमुनिको रोज डालकर दिनभर मुहपत्ति बंधी हुई रखना" यह बात आप जैन आगमोंके प्रमाणोंसे साबित करके बतलादेवें तो मैं उसी वक्त आपका शिष्य होनेकी प्रतिज्ञा करता हूं. नहीं तो आप अपना झूठापक्ष छोडकर मुहपत्ति हाथमें रखनेका सच्चा जैनमार्ग अंगीकार करोगे, विशेष क्या विनती करूं.

विशेष सूचना:—साधुके नामसे छापे छपवाने की आपकी इच्छा न हो तो भी आप लेख लिख सक्ते हैं, आपके शिष्यकी लिखीहुई पुस्तक छपकर प्रकट हुई है यह प्रत्यक्ष प्रमाण है, इसलिए इस विषयका लेख आप लिख सक्ते हैं. अगर छापे छपवाने की इच्छा न हो तो आपने **पं० श्रीमणिसागरजी** महाराजसे पत्रव्यवहार करके अथवा दो साक्षियोंके सामने मिलकर शास्त्रार्थ के नियम मंजूर करके शास्त्रार्थ से निर्णय कर-लेना योग्य है, परंतु कपटतासे झूठा बचाव करके किसी अन्य दूसरे के नामसे लेख छपवाओगे तो आपकी बात अच्छी नहीं लगेगी

दूसरे पक्ष तरफसे कोई भी अयोग्य शब्द लिखने में या सुननेमें नहीं आया और आपके पक्ष तरफसे ऐसा हो रहा है यह बहुत अनुचित है.

ो सनके बिना इन्हीं महाराजके दृष्टांतसे हमेशा दिनभर डोरा डालकर मुहपत्ति बंधी हुई रखनेका साबित करना कितनी बड़ी साहसीकता है.

६ **आचारांगसूत्र, विपाकसूत्र, महानिशीथसूत्र, आवश्यकसूत्र** वगैरह बहुत प्राचीन जैन आगमानुसार जैनमुनिको मुंहपत्ति हाथमें रखना साबित होता परंतु हमेशा हरदम दिनभर डोरा गेरकर बंधी हुई रखना किसी जैन आगममें नहीं लिखा. इस बातका शास्त्रार्थ करने की चौथमलजी की हीम्मत नहीं है, इसलिये जैन आगमोंके अज्ञात १०-२० वर्ष के एक अंग्रेज लेखक का प्रमाण देकर अपना पक्षका बचाव करते हैं यह कैसी विद्वत्ता ! पाठकगण आपही विचार सकते हैं.

७ आपके भक्तोने नये उपाश्रयमें आकर शास्त्रार्थ करनेका संघको पूछे बिनाही पहिले मेरेको आमंत्रण दिया है. तथा आपके शिष्यनेभी संघकी आज्ञा बिना पुस्तक लिखकर प्रकट करदी है और आपकी पत्रिकानें संघकी आज्ञाबिना अपने पक्षको पुष्ट किया है. इस लिये मेरेको अब संघकी आज्ञा लेनेकी कोई जरूरत नहीं है. पहिले बिना विचारे कार्य शुरू करदेना और पीछे उसको साबित करनेकी शक्ति न होनेसे संघका बहाना बीचमें लाना यह प्रत्यक्ष अन्याय है. इस लिये झूठी अपेक्षा रखना छोड़कर शास्त्रार्थसे पीछे हटना मत सोचो है, नहीं तो जल्दीसे शास्त्रार्थ करना मंजूर करो. मिति [illegible] वदी २ सं. १९७२

हस्ताक्षर —पं० मुनि मणिसागर.

इधर मुख्य मुद्देके विज्ञापन का चौथमलजीने व उनके भक्तोंने कुछभी जवाब न दिया, शास्त्रार्थ करनाभी मंजूर न किया और बहाने फिर करने लगे. तब हमने उनको शास्त्रार्थ करनेका मंजूर करनेके लिये एक. एक [illegible]

[illegible]

[illegible].

विज्ञापन नं० ३.

स्थानकवासी मुंहपत्ति बांधनेवाले ढूंढियों की सूचना.

इन्दौर शहर में जैन मुनि की मुहपत्ति [illegible] डोरा [illegible] बंधी हुई रखना या नहीं? इस विषय की और से [illegible] उससे [illegible] वासी जैन मित्र मण्डल के नाम से एक हेंडबिल प्रगट हुआ था उसमें [illegible]चंदजी कोठारी के मना करने से चौथमलजी शास्त्रार्थ करना नहीं [illegible] इत्यादि कई झूठी झूठी बातें लिख कर अपना प्रचार करने लगे. उन का प्रति उत्तर लिखने की तैयारी की उतने में कई स्थानकवासी लोगों ने हीराचंदजी कोठारी के पास जाकर बहुत आजीजी कर के माफी मांगी, उससे उसका प्रति उत्तर लिखना बंद रखना [illegible] दूसरे के नाम को आगे कर के शास्त्रार्थ से पीछे हटना और [illegible] [illegible] से अपना पक्ष सत्य करने की बहादुरी करना यह [illegible] है.

आज रोज चौथमलजी को शास्त्रार्थ के लिए पत्र भेजा था उसकी नकल नीचे मुजब है.

चौथमलजी को सूचना.

मुंहपत्ति की चर्चा का विवाद शास्त्रार्थ से निर्णय करने के लिए आपके भक्तोंने मेरेको आमंत्रण किया था, इसलिये मैंने आपको सूचना दी थी. साधुओं साधुओं के शास्त्रीय विषय में गृहस्थी लोगोंने बीच में पडकर क्लेश बढाने का रस्ता लिया यह उचित नहीं. अस्तु ! ! !

अब आपको सूचना देता हू कि अगर दिनभर मुंहपत्ति डोरा डालकर हमेशा बंधी हुई रखना आपके माने हुए आगमों से आप साबित कर सके हो तो ६ घंटे में शास्त्रार्थ करना मंजूर करें शान्ति पूर्वक [illegible] करने की मेरी इच्छा है अगर [illegible] [illegible] [illegible] का झूटा आग्रह साबित होगा

अगर आप यहांपर ज्यादे न ठहर सक्ते हो तो दूसरे शहरमेंभी मैं तयार हूं. संवत् १९७९ माघ वदी पंचमी, ११ बजे. मुनि **मणिसागर.**

इस प्रकार पत्र भेजने परभी शास्त्रार्थ करना मंजूर नहीं करते और यहां से चले जाते हैं. इससे साबित होता है कि ढूंढियों के पास कोई भी आगम प्रमाण नहीं है, केवल हठवाद से मुंहपत्ति बांधने का आग्रह पकड लिया है अब खोलकर हाथ में रखते लज्जा आती है इसलिये यहांसे चुपचाप चले जाते हैं.

अब मैं मुंहपत्ति बांधने वाले स्थानक वासी सर्व ढूंढियों को सूचना देता हूं कि आप लोग मुंहपत्ति दिनभर बंधी रखने का अपना प्रत्यक्ष झूठा आग्रह छोडकर उपयोग से बोलने के लिये हाथ में रखने का सच्चा जैन मार्ग स्वीकार करो. इससे आपका कल्याण हो. अगर इतने परभी आपके दिलमें अपने पक्षकी सच्चाई समझते हो तो **दो मास** के अन्दर आपके पक्षका कोईभी साधूको बुलवाकर मेरे साथ शास्त्रार्थ करावो परन्तु राज्य-अधिकारियोंके सामने ४ विद्वानोंके समक्ष सत्यनिर्णयठहरे वो उसी समय सबको अंगीकार करना पडेगा, ऐसा प्रतिज्ञापत्र तीन रोज में प्रकट करो.

विषेश सूचनाः—दिनभर मुंहपत्ति बंधीहुई रखना १, टंबा ओघा रखना २, गोचरीकी लटकती हुई लंबी झोली रखना ३, गाली मारना ४, यह जैन शास्त्रानुसार जैन मुनियोंका वेश नहीं है. किन्तु नवीन मतका नमूना है. इसलिये शास्त्रार्थ करते नहीं और हम सच्चे हैं ऐसा झूठाही लोगोंको कहते हैं, आजतक बहुत से शास्त्रार्थ [illegible] आज-तक किसी [illegible] नहीं. ऐसेही [illegible] हैं, [illegible] इसलिये [illegible] के उनके कल्पित मतके [illegible] नहीं है [illegible] संवत् १९७९ [illegible]

[illegible] मुनि—मणिसागर.

☞ उक्त फैसलेको पढकर हमारे ढूंढकपन्थी भाइयोंको जिन्होंने कि व्यर्थ मिथ्याशोर मचा रक्खाया कि पुजेरे हारगये, पश्चाताप करना चाहिये और वतलानाचाहिये, अबकोनहारे? जवाब—ढूंढिये? ढूंढिये??

उपर का लेख "ढूंढक मत पराजय" पुस्तक की चौथी आवृत्तिसे उद्धृत किया है. उक्त पुस्तक में- रात्रिको पाणी न रखना, रजस्वला न मानना, मैला पाणी लेना, ओघादि उपकरण कैसे रखने, ४ वर्ष का आहार व चेला करना, सूतक न मानने (मृतक गुरु जलाकर स्नान व करना) इत्यादि प्रश्न छपे हैं परन्तु आज तक ढूंढिये जवाब न दे सके. ऐसेही समाना, टांडा, जेजो, थंगिया, अमृतशहर, धूलिया, अहमदनगर, अमरावती, उदयपुर, अमदावाद, जावद, निंबाहेडा, और जीरन वगैरह वहुत जगह ढूंढिये चर्चा में झूठे होनेसे भग गये हैं। तथा शिवपुराण के नाम से भी मुंहपत्ति हमेशा बांधने का व्यर्थ ही कहते हैं और मुखवस्त्रिका निर्णय में भी बहुत शास्त्रों के नाम से हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का प्रत्यक्ष ही झूठ लिखा है उन शास्त्रों में हाथ में रखने का लिखा है, यह सर्व शास्त्र यहां पर श्री मणिसागर जी महाराज के पास मौजूद हैं, पाठक गण आकर देख सकते हैं।

विशेष सूचनाः— इस परभी दिल की उमंग पूरी न हो तो सभ्यता पूर्वक विद्वत्ता के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये कटिबद्ध होये पीछे पैर न धरियेगा संवत् १९८०, चैत्र शुदी ३, सूरजमल नाहटा, इन्दौर

॥ श्री गुरु गौतमस्वामिने नमः ॥

इन्दौर शहर में ढूंढियो की हार (शास्त्रार्थ से भाग नाश)

१ आजतक ढूंढियेलोग किसीजगह संवेगीयोंके साथ न्यायपूर्वक आगम प्रमाणानुसार सभा में शास्त्रार्थ करसके नहीं, कभी शास्त्रार्थ करने का मोका आवे तब चुप लगा देते हैं या क्रोधसे निंदा-ईर्षा करते हुए शास्त्रार्थ का विषय छोडकर निष्प्रयोजन आडी टेढी दूसरी दूसरी बातों का विषय बीच में लाकर विषयांतर करके झगडा मचा कर वहां से भग जाते हैं. वैसे ही इन्दौर शहर में भी ढूंढियों ने किया है यह बात इन्दौर शहर में मुंहपत्ति की चर्चा के उपर के विज्ञापनों के लेखों से पाठकगण अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

२ ढूंढिये कहते हैं कि हम बत्तीस (३२) सूत्र मूल मानते हैं.

जाये, इस बातका समाधान इतनाहीहै कि—किसीभी विषयकी चर्चा खडी करके शास्त्रार्थ करनेके समय झगडा फैलाकर यहांसे भग जावे तो उससे सभा हुए बिनाभी उसकी हार समझी जातीहै, वैसेही इसीं रौमभी ढूंढियोंने चर्चा खडी की व शास्त्रार्थ करनेका चेलेंज निकाला, उसपर हमने चौथे विज्ञापन मूजिब नियमानुसार शास्त्रार्थ करना मंजूर किया, तब ढूंढियोंने चुप लगादी, शास्त्रार्थ करने से भग गये, शास्त्रार्थ करनेके लिये किसीभी ढूंढिये की सभामें सामने आनेकी हिम्मत न हुई, उससे चौथे विज्ञापनके नियम मुजब ढूंढियोंकी हार हो ही चुकी और सबने स्वीकारभी कर ली नहींतो आजतक कोई तय्यार होते

६ ढूंढियोंने मुखवस्त्रिका निर्णय, वगैरह जो जो अपनी पुस्तकों में आज तक सिर्फ शास्त्रोंके नाममात्र लिखकर कुयुक्तियां लगाकरके अथवा कहीं २ शास्त्रोंके नामसे अधूरे २ पाठ लिखकर खोटे २ अर्थ करके हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहराया है, उन्हीं सबशास्त्रों के पूरे २ पाठोंके साथ और सब तरह की शंकाओंका व कुयुक्तियोंका समाधान सहित मैंने इस ग्रंथमें अच्छी तरह से खुलासाकरके हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखना सर्वथा जिन आज्ञा विरुद्ध दिखलादिया है और हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेमें अनेक दोष आतेहैं व हाथमें रखकर हवाके नाक मुंह दोनोंकी यत्ना करके उपयोगसे बोलनेमें अनेक लाभ होते यहभी बतलादियाहै और भगवती, आचारांग, विपाक निशीथ, महानिशीथ, दशवैकालिक, आवश्यकादि अनेक आगम तथा प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंके पाठ बतलाकर अनादि काल से जैन मुनि मुंहपत्ति हाथमें रखकर मुंहकी यत्ना करके बोलतेथे, ऐसा अच्छी तरहसे साबित करके दिखलायाहै. इसलिये जो २ ढूंढिये जिनाज्ञा अनुसार वर्ताव करके अपनी आत्माका कल्याण करना चाहते होवें तो इस ग्रंथ को पूरे २ बांचकर, विचारकर, और सत्य बातको समझकर अपनी संघ बांधी मुंहपत्ति परंपराको व कदाग्रहको छोडकर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का अवश्य त्याग करें, इति शुभम्।

विक्रम संवत् १९६७ चैत्र शुदि १, श्वेताम्बर परम पूज्य परमगुरु श्रीमन्महोपाध्यायजी श्रीसुमतिसागरजी महाराजके चरणकमलोंका दास [illegible]

आगमपाठानुसार मुंहपत्तिके विवादका निर्णय यहां बतलाता हूं. उसमें मैं मेरी तरफ से शास्त्रोंके प्रमाणोंको बतलाता तो ढूंढियें लोग अमुक अमुक शास्त्र प्रमाण हम नहीं मानते; ऐसा कह देते, परन्तु खास ढूंढिये साधुओंनेही अपनी बनाई, '**मुखवस्त्रिका निर्णय**' में और '**मिथ्यात्वनिकंदन भास्कर**' पुस्तक में जिस जिस शास्त्रके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराया है उन्हीं शास्त्रपाठोंको बतलाकर मैं सर्व जैनसाधुओंको उपयोगसे बोलने के लिये मुंहपत्ति हाथमें रखनेका साबित करके दिखाता हूं, इसलिये उन शास्त्र प्रमाणोंको नहीं माननेका बहाना अब ढूंढिये कभी नहीं ले सकते. अपने मतकी पुष्टिके लिये अपनी बनाई किताबोंमें बतलाये हुए शास्त्रोंके प्रमाणोंको अवश्य ही मान्य करने पडेंगे और जो जो आत्मार्थी भव्यजीव होंगे वो भी झूठे पक्षको छोडकर जिनाज्ञानुसार शास्त्र प्रमाणमुजब सत्यबातको अवश्यही ग्रहणकरके आत्मकल्याणमें लगेंगे.

मुखवस्त्रिका निर्णय, मिथ्यात्व निकंदन भास्कर, गुरु गुण महिमा वगैरह ढूंढियोंके पुस्तकोंके व्यक्तिगत लेखोंकी अलग अलग समीक्षा लिखनेमें पुनरुक्ति जैसा होवे, ग्रंथभी बहुत बढजावे और इन सबमें ढूंढियोंने भाषाभी अशुद्ध, छपवानाभी अशुद्ध, शास्त्रोंके पाठभी अशुद्ध लिखने, उनके अर्थभी खोटे खोटे करने इत्यादि बातें लिखनेमेंभी घृणा (कंटाला) होती है, इसलिये उन लोगोंके लेखोंको अलग अलग न लिखते हुए उसका सार लेकर मुंहपत्ति बांधनेवाले सर्व ढूंढियोंकी सब शंकाओंका समाधान ढूंढियोंके सामान्य नामसे इस ग्रंथमें लिखते हैं.

प्रथम भगवतीसूत्र के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराते हैं सो प्रत्यक्ष झूठ है, क्योंकि श्री भगवतीसूत्र के १६ वें शतक के २ उद्देश में छपे हुए मुखवस्त्रिका पृष्ठ ७०१ में देखिये ऐसे पाठ है —

" सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासति अणवज्जं भासं भासति ? गोयमा ! सावज्जंपि भासं भासति अण-

वज्जंपि भासं भासति. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चई सावज्जंपि भासं भासति, अणवज्जंपि भासं भासति ?. गोयमा ! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं भासं भासति, ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासति. जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं णिज्जूहित्ताणं भासं भासति, ताहे णं सक्के देविंदे देवराया अणवज्जं भासं भासति "

२ श्रीअभयदेवसूरिजीकी रचीहुई वृत्ति का पाठः -'सक्के णं' मित्यादि, 'सावज्जं' ति सहावद्येन–गर्हितकर्मणेति सावद्या तां 'जाहे णं' ति यदा 'सुहुमकायं' ति सूक्ष्मकायं हस्तादिकं वस्तु इति वृद्धाः, अन्ये तु आहुः– 'सुहुमकायं' ति वस्त्रम् 'अनिज्जूहित्त' ति 'अपोह्य' अदत्त्वा, हस्ताद्यावृतमुखस्य हि भाषमाणस्य जीवसंरक्षणतो अनवद्या भाषा भवति, अन्यथा तु सावद्येति "

३ प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणि ग्रंथ के पृष्ठ २४२ वे में ऊपर के सूत्र वृत्तिके पाठ का ऐसा भावार्थ लिखा है " प्रश्न :—श्रावक खुले मुंहसे बोले सो उचित है ? उत्तरः—श्रावकों को अवश्य मुखपर कपडा या हाथ या मुंहपत्ति रखकर बोलना परंतु खुले मुंहसे न बोलना चाहिये, इस संबंधी भगवतीजी सूत्र मे गौतमस्वामीजी ने प्रश्न पूछा है कि इन्द्र सावद्यभाषा बोलता है या निरवद्यभाषा बोलता है ? उसका उत्तर भगवंतजी ने दिया है कि इन्द्र जिस वक्त मुहपर कपडा या हाथ रखकर बोलता है उस वक्त निरवद्यभाषा बोलता है और खुले मुंहसे बोले उसवक्त सावद्य भाषा बोलता है, इस तरह भगवती सूत्र के पत्र १३०२ में अधिकार है " (यह सूत्रपाठ की पृष्ठ संख्या सूत्र वृत्ति और भाषासहित पहिले छपी हुई भगवतीजी की समझना.)

४ देखो श्रीभगवती सूत्रके ऊपरके मूलपाठ में बोलनेके समय मुहपर हाथ अथवा वस्त्र रखकर बोलने का कहा है इससे प्रत्यक्ष—पता

उत्पन्न करनेवालेकी और मधुर भाषण करनेवालेकी निश्चय करके निरा भाषा कहनेमें आवेगी. देखिये- तीर्थंकर भगवान् मुंहपत्ति नहीं रखते हैं तो भी परोपकारके लिये धर्मोपदेश देनेसे सर्वज्ञ भगवान्की भाषाको परंतु निरवद्य भाषा कहनेमें आती है, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधनेमें ही एकांत निरवद्य भाषा बोलने का ठहराना बडीभूल है. सर्वज्ञ भगवान्की आज्ञानुसार साधुको मुंहआगे मुंहपत्ति रखकर उपयोगसे हितकारी वचन बोलनेमें ही निरवद्य भाषा कही जाती है परंतु शास्त्रविरुद्ध होकरके हमेशा मुंहबंधा रखनेमें निरवद्य भाषा कभी नहीं हो सकती।

१३. ढुंढियोंकी विवेक बुद्धिका नमूना देखिये—भगवती सूत्र ऊपरके पाठ पर से हमेशा मुहपत्ति बंधी रखने का अर्थ ढुंढिये करते हैं इसपाठ को ही मुंहपत्ति बंधी रखने में दृढ प्रमाण समझ ते हैं परन्तु विवेक बुद्धि से इतना विचार नहीं करते हैं कि 'इन्द्र अपने मुंह आगे वस्त्र या हाथ रखकर बोले तो निरवद्य भाषा बोले ' ऐसा अधिकार खास इन्द्र महाराज के लिये ही भगवतीसूत्रमें है एकइन्द्र के जैसाही अधिकार अतीत, अनागत और वर्तमानके सर्व (अनंते) इन्द्रोंका अधिकार समझा जाता है, इसलिये यदि इस अधिकार से मुहपर मुहपत्ति बंधी रखनेका अर्थ लिया जावे तो सर्व इन्द्र महाराजों को भी अपने मुहपर मुहपत्ति बंधी रखने का ठहर जावेगा और गये काल में अनंत तीर्थंकर होगये, आगेके कालमें अनंत तीर्थंकर होवेगें तथा वर्तमानकाल में अभी २० विद्यमान तीर्थंकर विद्यमान हैं उन्होंको वंदनादि करने के लिये, प्रश्नादि पूछकर शंका समाधान करने के लिये, सेवा भक्ति-पूजा करने के लिये अनंते इन्द्र आगये, आगे अनंते इन्द्र आवेगें और अभी अनेक इन्द्र महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर महाराजों की सेवा में आते हैं प्रश्नादि पुछते हैं. वार्तालाप करते हैं, धर्म देशना सुनते हैं परन्तु किसी भी इन्द्रने किसी भी तीर्थंकर महराज के सामने कभीभी अपना मुह बांधा नहीं बांधेगे नहीं और बांधते भी नहीं इसलिये इन्द्र महाराज संबंधी ऊपर के पाठ पर से मुहपर हमेशा मुहपत्ति बंधी रखने का ले बेठना सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध है अगर ढुंढियों को जिनाज्ञा विरुद्ध कार्य करने से संसार परिभ्रमण का भय लगता होवे तो उपर के पाठपर से हमेशा मुहपत्ति बंधी रखने का अपना झूंठा मत पक्षका कल्पित नये रिवाज को छोड देना ही उचित है।

(मुंहपत्ति शब्दसे मुंहपर बांधना नहीं किन्तु हाथमें रखना साबित होता है और मुंहपर बांधे सो मुंहपत्ति: हाथमें रक्खे सो हाथपत्ति. ऐसी ऐसी ढूंढियोंकी सब शंकाओंका समाधान आगे लिखने में आवेगा. यहां तो आगमोंके नामसे भोले लोगों को भ्रम में डाले हैं. उसका खुलासा लिखते हैं)

---

१४. 'सिद्धान्त निर्णय भास्कर' पुस्तक में भगवती सूत्रके नाम से जमालिके दीक्षा अधिकार याने पाठसे आठपडवाली मुंहपत्ति जैनी साधुओंको हमेशा बांधी रखनेका ठहराया है. सो भी प्रत्यक्ष झूठ है. क्योंकि भगवती सूत्र श.९ वें शतक के ३३ वें उद्देश में जमालिके दीक्षा अधिकार बाबत सवृत्ति सहित छपे हुए पृष्ठ ४७२ वे में ऐसा पाठ है—

"जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया सं कासवगं एवं वयासी तुमं देवाणुप्पिया ! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे निक्खमणपयोगे अग्गकेसे पडिकप्पेहि. तएणं से कासवे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ तुट्ठे करयल जाव एवं सामी तहत्ताणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुहंबंधई. मुहंबंधित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे निक्खमणपयोगे अग्गकेसे कप्पइ"

१५. देखो-ऊपरके पाठ में जमालिके पिता ने नाईको बुलवा कर कहा कि तुम जमालिक्षत्रियकुमारके दीक्षा समय लोच करने के लिये चार अंगुल केश रखकर बाकी के सब केश काट डालो. ऐसी जमालिके पिता की आज्ञानुसार नाईने सुगन्धि जलसे अपने हाथ पैर साफ करके शुद्ध आठ पडवाले 'पोत्तीए' याने—अपने धोती दुपट्टे जैसे वस्त्र से अपना मुंह: याने-नाक मुंह दोनों बांधकर जमालिके सिरके केश काटे.

१६. इस पाठपर ढूंढिये कहते हैं कि—यदि नाईके हाथ में मुंहपत्ति होती तो एक हाथ से मुंहपत्ति को मुखपर रखकर एक हाथ से जमालिके सिरके केश कैसे काट सकता. इसलिये नाईके मुंहपत्ति बंधी हुई थी इसलिये जैनी साधुओंको भी इसी नाई की तरह हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखना चाहिये ऐसा ढूंढियों का कहना और 'सिद्धान्त निर्णय भास्कर' आदि अपने पुस्तकों में लिखना सर्वथा अज्ञानता उनका प्रत्यक्ष

झूंठ है, क्योंकि केश काटे थे तब नाईने साधुपना नहीं लिया था, वह कुटम्बवाला गृहस्थी था और उसने जीव दया के लिये धर्मबुद्धि से अपना मुंह नहीं बांधा था किन्तु प्राचीन काल में राजा महाराजाओं की हजा मत करने के समय धोती, दुपट्टा, रुमाल जैसे वस्त्रसे नाईलोग अपना मुं बांधते थे, उस रिवाज मुजब जमालिके शिरके केश काटनेके समय श्वा लोम से व राज्य कुलकी मर्यादा का विनय करनेके लिये सिर्फ केश काटे थे तब तक मुंह बांधा रक्खा था. मगर हमेशा बंधा नहीं रक्खा था, इस बातका भावार्थ समझे बिना नाईके मुख बांधनेको जीवदया के लिये ध र्मबुद्धि का हेतु ठहराना और नाईका दृष्टांत बतला कर हमेशा जैनी सा धुओं को भी मुह बांधनेका ले बैठना, यही ढूंढियों की बड़ी अज्ञानता है

१७. श्री ज्ञाताजी सूत्रके नामसे हरदम मुहपत्ति बंधी रखने क कहते हैं सो भी प्रत्यक्ष झूठ है, क्योंकि देखो-ज्ञाताजी सूत्र के प्रथ अध्ययन में (छपे हुए मूलवृत्ति के) पृष्ठ ५३ में मेघकुमार के दीक्षा मह त्सव संबंधी ऐसा पाठ है —

" सेणिएराया कासवयं एवं वयासी गच्छाहिणं तुमं देवाणुप्पिया! सुरभिणा गंधोदएणं णिक्के हत्थपाए पक्खालेह, सेयाए चउप्फालाए पो त्तीए मुहंबंधेत्ता मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्ग केसे कप्पेहि, तते णं से कासवए सेणिएणं रन्ना एवंवुत्ते समाणे हट्ठ जा हियए जाव पडिसुणेति २ त्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेति २ त्ता सुद्धवत्थेणं मुहं बंधेति २ त्ता परेणं जत्तेणं मेहस्स कुमारस्स चउरंगु लवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पति "

१८. ऊपर के सूत्र पाठमें श्रेणिक राजा ने नाईको कहा कि सु सुगंधि जल से अपने हाथपैर साफ करके चार पडवाले वस्त्रसे अप मुंह बांधकर मेघकुमारके दीक्षा के समय लोच करनेके लिये चार अंगु केश रखकर बाकी के सिर पर के सब केश काट डालना ऐसा श्रेणिक राजाका हुकम सुनकर नाईने सुगंधी जलसे हाथ पैर साफ करके अ शुद्ध वस्त्रसे अपना मुंह अर्थात-नाक मुंह दोनो बांधकर मेघकुमार दीक्षा समय लोच करने योग्य ४ अंगुल केश रखकर बाकीके सब केश काटे

१९. 'प्रिय पाठकगण ! देखो ऊपरके पाठमें राजाकी आज्ञा से न ने सिर्फ उस प्रयोजन के लिये मेघकुमार को अपने नाकको दुर्गंधी

नाई अपना नाक-मुंह बांधकर राजकुमारोंके शिरके केश काटते थे ऐसा अधिकार भगवती आदि आगमों में आया है परन्तु दीक्षा लेकर किसी भी राजकुमारादि मुनिने अपना मुंह मुहपत्ति से बांधा ऐसा अधिकार किसी भी आगममें किसी जगह भी नहीं आया. इससे भी साबित होता है कि ढूंढियों की तरह जैन मुनियोंको हमेशा मुंह बन्धा रखना जैनागमों में नहीं लिखा. जिस पर भी ढूंढिये लोग नाईके मुख बांधने का पाठ बतलाकर उसका आशयसमझे बिना साधुपने में हमेशा मुंह बन्धा रखते हैं यह कैसी भारी लज्जा कारक निर्विवेकता है, नाईने केश काटने (हजामत बनाने) के लिये धनके लोभसे अपना मुंह बांधा था.केश काटे बाद खुला कर दिया था, परन्तु हमेशा बन्धा नहीं रक्खा था, यह बात प्रसिद्ध है, तो भी ढूंढिये लोग हमेशा अपना मुंह बन्धा रखते हैं, सो किस के केशकाटने के लिये बांधते हैं ? साधु कहलाकर उलटा गृहस्थी के जैसा आचरण करते हैं इससे इन लोगों में वीतराग भगवान्का शुद्ध संयम धर्म नहीं है।

२२. ढूंढियों की दया का नमूना देखो—ढूंढिये कहते हैं कि देखो दीक्षा लेने के समय जमालि कुमार ने और मेघकुमारने कैसी दया पाली, नाईको भी खुल्ले मुंह बोलने न दिया, नाई को मुंह बंधवाकर बालोंके केश काटने का कार्य करवाया था. ऐसेही हम लोग भी नाई की तरह दयाके लिये ही मुंह बांधते हैं. यह भी ढूंढियों का कथन ये समझ का ही है, क्यों कि केश काटने (हजामत करने) के समय तो प्रायः करके नाई मौन ही करके ही हजामत करता है वहां बातें करने का अवसर नहीं है, इसलिये हजामत करने के समय मुंह बांधने का कोई भी कुछ भी प्रयोजन नहीं है किन्तु उस समय तो सिर्फ नाक से ही दुर्गंधी आती है उसका ही बचाव करने का प्रयोजन होने से मुंह बांधा जाता है. उसके साथ नाकभी बांधने में आता है, इसलिये नाईने नाक की दुर्गंधी का बचाव करने के लिये मुंह बांधा था किन्तु यत्ना पूर्वक बोलने के लिये नहीं और इतने पर भी नाईके मुखबांधनेको ढूंढिये लोग यत्ना समझते होवे तो ढूंढियों की दीक्षा समय धमाकर्म नहीं करवाते दीक्षाके वरघोड़े में हाथी, घोड़े, बग्गी रथ वगेरे करवाते हैं व हिन्दू-मुसलमानोंको बुलवाकर अनेक तरहके बाजित्र क्यों बजवाते हैं स्त्रियें भी खुल्ले मुंह गीत गाती हुई रास्ता में चलती हैं और

हजारों लोग दीक्षा की प्रशंसा करते हुए खुल्ले मुंह बोलते हैं परन्तु उस समय नाई को नगर कोई भी मुंह बांधकर नहीं बोलता. अगर ढूंढियों के दिल में सच्ची दया की श्रद्धा होवे तबतो दीक्षा के वरघोडे में हाथी घोडे वगैरह न लाने चाहिये. वाजित्र बजाने वालों को खुल्ले मुंह से वाजित्र न बजाने देने चाहिये, अपनी भक्त स्त्रियों को भी मुंह बंधवाकर गीत गवाने चाहिये. और सब भक्तों को मुंह बन्धवा कर वरघोडे में दीक्षार्में बुलवाने चाहिये. उस समय नाई को भी मुंह बंधवा कर हजामत करवाने को बुलवाना चाहिये और परदेशी भक्त उस प्रसंग पर आवें उन्हों की भोजन भक्तिके लिये भट्टी न चलाते हुए सबको उपवास करवाने चाहिये. तबतो नाई के मुंह बांधने की दया का दृष्टांत देना ढूंढियों का वाजवी हो सके और सच्ची दयाको दया समझी जावे परन्तु उपर मुजब सबके मुंह बांधने का कार्य करते व करवाते नहीं, इसलिये मायाचारी से व्यर्थ ही भोले लोगोंको भ्रममें डाल कर हमेशा मुंह बांधने का झुठाही ढोंग ले बैठे हैं.

---

२३. आचारांग सूत्रके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ढूंढिये कहते हैं सो भी झूठ है. क्योंकि देखो आचारांग सूत्रके ११ वें अध्ययनके ३ उद्देशा में मूलसूत्र गुजराती भाषांतर सहित छपेहुए पृष्ठ २४७ वें में ऐसा पाठ है.

"से भिक्खु वा भिक्खुणी वा ऊसासमाणे वा णीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायणिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपिहित्ताततो संजयामेव ऊससेज्ज वा जाव वायणिसग्गं वा करेज्जा"

२४. देखो—इस पाठ में साधु साध्वीको उच्छ्वास, निश्वास लेते, खांसी, छींक, उबासी, डकार वातोत्सर्ग करते पहिले मुंह व अधोभाग हाथ से ढांककर पीछे यतनापूर्वक करने का कहा है. इससे साबित होता है कि साधु साध्वियोंके मुंह हमेशा खुल्ले रहते हैं परन्तु बंधे हुए नहीं यदि बंधेहुए होवे तो उच्छ्वासादि लेते हाथसे मुंह ढांकने का सूत्रकार कभी न कहते और यहां तो खास मूलपाठ में मुंह आगे हाथ रखनेका खुलासा कहा है इस लिये मुंहपत्ति हाथ में रखना निश्चय होता है यहांपर सूत्रकार महाराज का खास अभिप्राय यही है कि उच्छ्वा [illegible] क वगैरह करते हाथ से मुंह ढांकना. याने–भगवती सूत्रके [illegible] नुसार हा-

थसे वा मुंहपत्ति आदिवस्त्र से नाक-मुंह दोनों ढकने चाहिये, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधने हैं सो सूत्र विरुद्ध है।

२५. यहां पर ढूंढिये कहते हैं कि मुंहपत्ति बंधी हुई होने पर भी उश्वासादि लेते मुहके उपर चली जाती है इसलिये हाथ से कहा है. ढूंढियोंका ऐसा कहना भी झूंठ है, क्योंकि मुहपत्ति लंबी होने से यदि बंधी हुई होवे तो भी उश्वास डकार लेते मुंहपरसे नहीं होसकती यह प्रत्यक्ष प्रमाण है. और मुहपत्ति का उपयोग ही खास करके मुंहके लिये है याने-छींक उवासी वगैरह आवे तब नाक मुंह दोनों से मुंहपत्ति द्वारा जीव रक्षा करने के लिये मुहपत्तिका उपयोग होता है. यदि मुंहपत्ति केवल मुहपर हमेशा बंधी हुई होवे तो जब २ छींक आवे तब २ नाकपर मुंहपत्तिका उपयोग नहीं होसकता उससे तो मुंहपत्ति का रखना ही निष्फल हो जावेगा, और सूत्रकार महाराज ने नाक मुंह दोनोंका उपयोग करनेका कहा है इसलिये हमेशा मुह पर बंधीहुई रखना सूत्र विरुद्ध है. देखो-विचार करो जब कभी छींक आवे तब नाक आड़ा हाथ रख कर जीवरक्षा करनेका मान लेओगे तो छींककी तरह भाषण करने के समय भी मुहके आगे केवल अकेला हाथ रखकर जीवरक्षा करने का मान लेना पड़ेगा और मुंहपत्ति रखने का हेतुही उड़ जावेगा. तथा मुहपर मुंहपत्ति व नाक पर हाथ ऐसी दो बातें अलग २ उपयोग में लानेका किसी भी आगम में नहीं लिखा, किन्तु एकही लिखा है इसलिये यहां हाथ का नेसें सूत्रकार महाराजने मुंहपत्ति रखनेका अन्तरंग अपना आशय बतला या है. इसलिये अतीव गंभीर आशय वाले, नयगर्भित व अनंत गम, पर्याय, अर्थयुक्त आगमार्थका और स्थविरकल्पि साधुसाध्वी व जिनकल्पि आदि सामुदायिक इस सामान्य पाठका यथायोग्य भवार्थको गुरु गम्यता से धारण किये विना अपनी कल्पना मुजब अर्थका अनर्थ करके उत्सूत्र प्ररूपणासे हमेशा मुहपत्ति बंधी रखने का खोटी प्ररूपणा करना किसी भी आत्मार्थी ढूंढिये का योग्य नहीं है।

२६ ऊपर के पाठ पर फिर भी ढूंढिये ऐसा कहते हैं कि- रात्रि में साधु साध्वी सो जावे उसके बाद मुहपत्ति को मुहपरसे खोलकर अलग रखती होंवे और जब छींक उवासी डकार आदि आवे तब मुह आगे हाथ रखने का कहा है परंतु दिन में तो मुहपत्ति मुह पर बंधी हुई हो

से वक छींक उवासी वगैरह आवें तब मुह आगे हाथ रखने की कोई भी जरूरत नहीं है, इसलिये आचारांग सूत्र का ऊपरका पाठ रात्रि संबंधी है परन्तु दिन संबंधी नहीं है. ऐसा ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूंठ है, क्यों- कि ऊपर के पाठको रात्रि संबंधी समझकर दिन में हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखने का ढूंढियों ने मान लिया है सो भी नहीं बन सका. देखिये- ऊपर के पाठमें छींक आवे तब मुंह आगे हाथ रखनेका कहा है सो छींक दिन में भी आती है और रात्रि में भी आती है, इसलिये ऊपर का पाठ रात्रि- दिन (अहोरात्रि) हमेशाके लियेही है और छींक की तरह उवासी, डकार, उश्वास, निश्वास आवे तब भी मुंह आगे हाथ रखने का कहा है यह सब बातें रात्रि में और दिन में हमेशाही होती हैं, इसलिये रात्रि की तरह दिन में भी साधु साध्वियों के मुंह हमेशा खुल्लेही रहते हैं. जब मुंह खुल्ले होवें और डकार, उवासी, उश्वास, निश्वास आवे तब मुंह द्वारा निकलती हुई जोर की गरम श्वास (बाफ) से किसी जीव को तकलीफ़ न होने पावे इसलिये मुंह आगे हाथ (मुंहपत्ति) रखने का कहा है, अगर मुंह बंधे हुए होवें तो मुंह आगे हाथ रखनेका सूत्रकार महाराज कभी न कहते, यह बात अल्प बुद्धि वाला भी अच्छी तरह से समझ सका है. इसलिये ऊपर के पाठ से दिनमें हमेशा मुंह बन्धा रखने का ठहराना प्रत्यक्ष ही झूंठ है।

---

२७. फिरभी देखिये खास ढूंढियोंकाही छपवाया हुआ आवश्यक सूत्र के चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में साधु प्रतिक्रमण सूत्रके अधिकार में छपे हुए पृष्ठ १५ वें में "कुइए ककराइए छीए जंभाइए" इस मूल पाठ के अर्थ में "उघाडे मुख बोलाया हो या छींक उवासीली हो" ऐसा लिखा है. तथा छट्ठे पचक्खाण आवश्यक के अधिकार में छपे हुए पृष्ठ ४० वें में न- वकारसी पोरसी आदि पच्चक्खाणके "अणत्थणाभोगेणं सहसागारेणं" इस पाठके अर्थ में नवकारसी पोरसी एकासणा आदि पचक्खाण किये होवें उसमें पचक्खाण का समय पूरा हुए बिनाही भूलसे अनायास खानेमें आजावे और सहसात्कार यकायक में या दुग्ध दही [illegible] अनायास- उछलकर छांटा मुखमें पड़ जावे" तो [illegible] ऐसा लिखा है. और दूसरा चौविसत्था आवश्यक के [illegible] काउस्सग करने सं- बंधी "अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं [illegible] जंभाइएणं" इन पाठ के अर्थ में काउसग्ग में "[illegible], नीचा [illegible]

खांसीका छींकका उवासीका डकार आदिका आगार है" यानेकाउसग्ग में खांसी छींक उवासी आदि आवें तब उसकी यत्ना करनी पड़े तो काउसग्ग भंग न होवे॥ ऊपरके लेखोंपर विवेकबुद्धि पूर्वक दीर्घदृष्टिसे विचार किया जावे तो साधु-साध्वियों के मुंह हमेशा बंधे हुए नहीं किन्तु खुले रखनेका ही ठहरता है, मुंह खुल्ले होवें तभी बिना उपयोगसे अकस्मात उघाड़े मुख बोला होवे, छींक उवासी ली होवे तो शामको प्रतिक्रमण में उसका मिच्छामि दुक्कडं देनेमें आता है. अगर हमेशा दिनभर मुंह बंधा हुआ होवे तो खुल्ले मुख बोलने का, छींक, उवासी लेनेका संभवही नहीं परन्तु खुल्ले मुख होवें तभी उघाड़े मुख बोलनेका छींक उवासी लेनेका बन सकता है। और नवकारसी पौरषी आदि पच्चख्खाण में भी दिनमें हमेशा साधु-साध्वियों के मुख खुल्ले होवें तभी अनायास से भूलकरके कोई वस्तु मुखमें डालने में आजावे या हवा आदि के संयोग से वर्षा के जलका बिंदु अकस्मात उच्छल कर मुखमें गिरजावे अथवा दूध-दही-छाछ-दाल-कढी क्षीर वगैरह कोई वस्तु पात्र में लेते समय या एक पात्रमें से दूसरे पात्रमें परिवर्तन करते समय छींटा उच्छलकर अकस्मात मुखमें गिर जावे तो पौरषी एकासणा आयंबिल उपवास वगैरह के पच्चख्खाण भंग न होवें. यह बात जब साधु-साध्वियों के हमेशा मुख खुल्ले होवें तभी अकस्मात बन सकती हैं परन्तु हमेशा मुख बंधे होवें तो कभी नहीं बनसकती. इसी तरह से आहार-पाणी-लघुनीत-(पैशाब) बडीनीत (जंगल) और देव-गुरु को वंदनादि करने को जाने आने (गमनागमन) संबंधी या शाम-सबेरे (देवसी राई) प्रतिक्रमण करने संबंधी काउसग्ग करने पड़ते हैं उनमें भी साधु साध्वियों के मुख खुल्ले होवें तभी काउसग्ग में छींक-उवासी डकार आदि के आगार रक्खे जाते हैं, अन्यथा नहीं क्योंकि काउसग्ग में छींकादि आवे तब नाक द्वारा जोरसे गरम श्वास बाहिर निकलने से बाहर के जीवोंको तकलीफ होती है और छींकादिककी यत्नाके लिये पहिले से ही नाकको बांधकर कोई भी काउसग्ग नहीं करता. इसलिये काउसग्ग में छींक आवे तब मुख की तरह नाककी भी अवश्यही यत्ना करनी पड़ती है यानें-छींक वगैरह के समय जीव रक्षाके लिये मुंहपत्तिको नाक और मुख दोनों के आगे रखने का काम पड़े तब हाथ उंचा करने में काउसग्ग भंग न होवे. इसलिये आवश्यक सूत्रके ऊपर के पाठोंके प्रमाणों से और ब

ढूंढियों के ही छपवाये हुए अर्थ के प्रमाण से भी साधु साध्वियों के दिन में भी हमेशा मुख खुल्ले रखने का अच्छी तरह से साबित होता है. जिस पर भी दिन में मुख बंधा रखने का पक्ष करते हैं. मानते हैं, आग्रह करते हैं. सो प्रत्यक्ष ही झूंठ है। देखिये के समय जैसे मुख से जोरकी गरम हवा निकलती है, वैसेही नाकसे भी जोर की गरम हवा निकलती है. यह बात अनुभव मान्य और सर्व दर्शन सम्मतही है. इसको ढूंढिये भी इनकार नहीं कर सकते. इससे छींक वगैरह आवें तब मुखकी तरह नाक कीभी यत्ना करना (ढकना) प्रत्यक्षही सिद्ध है. इसलिये अगर ढूंढिये सच्चे दयालु कहलाना चाहते होवें तो मुख की तरह नाक भी हमेशा बांधा हुआ रखें या नाक की तरह मुखभी हमेशा खुला रखना स्वीकार करें, नहीं तो झूठे हठाग्रह से आत्म कल्याण कभी नहीं हो सकेगा.

२८. ढूंढियोंकी न्यायबुद्धिका नमूना देखिये– रात्रि और दिनमें हमेशा मुंहपत्ति से मुख बन्धा रखनेका ढूंढियोंका मंतव्य है. इसलिये दिन में मुख बन्धा रखना और रात्रि को खुला कर देना, यहभी भोले लोगोंको अपने मतमें लानेका मायाप्रपंच ही है. अगर ढूंढिये कहें कि रात्रिको बोलनेका काम नहीं पड़ता इसलिये सोनेके समय मुंहपत्ति खोल डालते हैं. यह भी ढूंढियों का कहना उचित नहीं है. क्योंकि देखो–अगर रात्रि को बोलने का काम न पडने से मुंहपत्ति मुखपरसे खोल डालने का ढूंढियों को मान्य होवे तब तो रात्रिकी तरह दिन में भी जब बोलनेका काम न पडे तब मुंहपत्ति को खोलकर अलग रखने का ढूंढियों को मान्य करना ही पडेगा और बिना बोलने के समय जब मुंह खुला रखने का मान्य करेंगे तो दो चार घंटे या एक दो पहर अथवा २, ४, ८, दिन मौनव्रत लेनेवाले या ध्यान में मौन रखने वालों को मुख खुला रखने का ढूंढियोंको मान्य करना ही पड़ेगा और जब मौन रखने के समय मुख खुला रखने का मान्य हुआ तो हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ढूंढियों का मंतव्य ढूंढियों के कथनसे ही (ढूंढियो के न्याय से ही) झूंठा ठहर जाता है और बिना बोले मौनस्थ ध्यानमें भी मुंहपत्ति बधी हुई रखनेका ढूंढिये मान्य रक्खेंगे तो रात्रिको भी हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका मान्य करनाही पडेगा जब बिना बोलने के समय भी रात्रि-दिन हमेशा मुंहपत्ति बधी रखनेका मान्य करेंगे तो बिना प्रयोजन हमेशा मुंह बधा रखने रूप अज्ञानियों की तरह निष्फल

क्रिया की प्राप्तिरूप दोष आवेगा, इसलिये आचारांग सूत्र के ऊपरके प्र पर दिन में मुंह बंधा रखने का और रात्रि को मुख खुला रखनेका मानना ढुंढियोंका कभी नहीं बन सका, इस बातको विवेकी पाठक गण अच्छी तरह से समझ सकते हैं

---

२९. ढूंढियेलोग विपाक सूत्र के नाम से हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका कहते हैं सो भी बडी भूल है, क्योंकि देखो पूर्वभव में उपार्ज किये हुए अशुभ कर्मोंके उदयसे मृगापुत्र जन्मसें अन्धा व रोगी और दु त दुर्गंधी शरीरवाला होनेसे मृगाराणीने उसको भूमिघर (भोंयरा) गुप्त रक्खा था तथा खास आपही उसको भोजनादि ले जाकर पहुंचा थी. एक समय गौतमस्वामी श्री वीरभगवान् की आज्ञा लेकर जन्मांध गी मृगापुत्र को देखनेके लिये मृगारानीके पास गये थे, तब वहां पर उस प्रसंगसे सूत्रकार महाराज ने 'विपाक' सूत्रके प्रथम अध्ययन में छपेहुए प्रतिके पृष्ठ ३७ में ऐसा पाठ कहा हैः—

" मियादेवी भगवं गोयमं एवं वयासी-एहणं तुम्भे भंते ! मम अ गच्छह जहाणं अहं तुम्भं मियापुत्तं दारगं उवदंसेमि, तनेणं से भगवं गोय मियादेविं पिट्ठओ समणुगच्छति, ततेणं सा मियादेवी तं कट्ठसगडियं अणुकढ्ढमाणी, अणुकढ्ढमाणी जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छति, उवा च्छित्ता चउप्पुडेणं वत्थेणं मुंह बंधेति, मुहबंध माणी भगवं गोयमं एवं वयासी-तुम्भे वि णं भंते ! मुहपोत्तियाए मुहबंधह.ततेणं से भगवं गोय मियादेवीए एवं वुत्तेसमाणे मुहपोत्तियाए मुहबंधति, ततेणं सा मियादेवी परम्मुही भूमिघरस्स दुवारं विहाडेति. तते णं गंधे निगच्छति से जह नामए अहिमडेति "

३०. देखो—इस सूत्र पाठ में मृगाराणीने गौतमस्वामीको कह कि हे भगवन् ! आप मेरे पीछे २ आओ मेरा पुत्र आपको बतलाऊं, ऐसा कह कर मृगाराणी मृगापुत्रके लिये आहारादि भोजन की हाथ गाडी खींच ती हुई आगे चली गौतमस्वामी उसके पीछे २ चले जहां भूमिघर (भोंयरा) का दरवाजा था, वहाँ आये. वहां आकर चार पड वाले वस्त्र मृगापुत्रके शरीर की दुर्गन्धीका बचाव करने के लिये मृगारानी ने उससे अपना मुंह याने-नाक मुंह दोनों बांधलिये फिर गौतमस्वामी को भी कह कि हे भगवन् आपभी अपनी मुहपत्ति से अपना मुंह बांधो, अर्थात् ना

तोगृहीतो गोच्छकोयेन सोऽयमंगुलिलातगोच्छकः, 'वस्त्राणि' पटल रूपाणि 'प्रतिलेखयेत्' प्रस्तावात् प्रमार्जयेदित्यर्थः। इत्थं तथाऽवस्थिता-न्येव पटलानि गोच्छकेन प्रमृज्य" इत्यादि

३७. देखो ऊपर के मूल सूत्र पाठ में और टीकाके पाठ में साधु के दिन चर्य्या के अधिकार में प्रातःकाल में कर्मों को नाश करनेवाली स्वाध्याय करके गुरु महाराज को वंदना किये बाद आहार पाणीके लिये वस्त्र पात्रादिकी पडिलेहणाके संबंध में सूत्रकार व टीकाकार महाराज ने कहा है कि, साधु पहिले मुंहपत्ति की पडिलेहणा करे, मुंहपत्तिको पडिलेहन किये पीछे पात्रों के उपर बांधने के वस्त्रकी और उनके गुच्छे की पडिलेहणाकरके गुच्छे को अंगुलियों में ग्रहण करके पडलों को, याने-गौचरी जावे तब पात्रोंके उपर रखनेके लिये तीन या पांच या सात पडके पडला नामक संज्ञा वाले वस्त्रोंकी पडिलेहणा करे. पीछे पात्र आदिकी पडिलेहन करके अवसर आवे तब विधि सहित उपयोग पूर्वक गौचरी जावें. ऐसा खुलासा अधिकार सूत्र पाठ मे और टीका के पाठ मे विस्तार से लिखा है परन्तु हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखने का किसी जगह नहीं लिखा. इसलिये उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वें अध्ययन के नाम से और इसीसूत्र की टीकाके नाम से हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेवाले प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपण करते हैं. आत्मार्थी भव्यजीवोंको हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका झूठा रिवाज छोड देनाही उचित है।

---

३८. उपासक दशा, अनुत्तरोववाई तथा अन्तगड दशासूत्रके नाम से हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूठ है, क्यों कि देखो छपेहुए सूत्रवृत्ति सहित 'उपासक दशांग' सूत्रके प्रथम अध्ययन पृष्ठ १७ वें में ऐसा पाठ है " भगवं गोयमे छट्ठक्खमण पारणगंसी पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बिईयाए पोरिसीए झाणं झायई तईयाए पोरिसीए अतुरियं, अचवलं, असंभंते मुहपत्तिं पडिलेहेई, मुहपत्तिं पडिलेहित्ता भायण वत्थाइं पडिलेहेइ" इत्यादि

३९. श्री अनुत्तरोववाई सूत्र वृत्तिके छपे हुए पृष्ठ ३ मे धन्नाजी अनगार के अधिकार में धन्नाजी अणगार छट्ठ छट्ठ तपका पारणा करते हुए तप संयम में आत्माको भावते हुए विचरने लगे यहां पर ऐसा पाठ है- "से धण्णेअणगारे पढम [illegible]

करेंति. तए णं गोयम सामी तहेव आपुच्छति जाव जेणेव कायंदीनगरी तेणेव उवागच्छति " इत्यादि।

४०. श्री अन्तगड़ दशा सूत्र वृत्ति सहित छपे हुए सूत्र के पृष्ठ पाँचवे में श्री कृष्णवासुदेवके (६) भाई अणगार मुनियों के अधिकारमें ऐसे पाठ है " छ अणगारा अन्नया कयाई छट्ठक्खमणपारणयंसी पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति. जह गोयमो "

४१. भगवान् राजगृह नगरीमें गुण शीलक चैत्यमें समोसरे थे तब भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पाँचवें उद्देश में छपे हुए सूत्र वृत्ति के पृष्ठ १३९. पे में गौतम स्वामी सम्बंधी ऐसे पाठ बतलाया है:—

" भगवं गोयमे छट्ठक्खमण पारणगंसी पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, मुहपोत्तियं पडिलेहित्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ. भायणाइं वत्थाइं पडिलेहित्ता, भायणाइं पमज्जइ, पमज्जइत्ता भायणाइं उग्गहेइ: उग्गहित्ता जेणेव समने भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ"

४२. देखिये प्राचीन कालके जैन साधू हमेशा प्रातःकालमें प्रथम प्रहरमें स्वाध्याय करने, दूसरे प्रहरमें मौनपने ध्यान करते और तीसरे प्रहरमें गौचरीजाते, इसलिये उपासक दशामें, अन्तगडदशामें. अणुत्तरोववाईमें और भगवतीजीमें गौतमस्वामी. धन्नाजी अणगार वगैरह मुनियोंके अधिकार आते हैं. उसमें छट्ठतपकेपारणे पहिले प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया और तीसरे प्रहर में उतावल रहित, चपलता रहित, संभ्रमरहित, स्वस्थपने. शांत चित्तसे प्रथम मुंहपत्ति की पडिलेहणा करें, मुंहपत्ति की पडिलेहणा करके भाजनों की (पात्रों की) और वस्त्रों की (पात्रों के उपर ढकने के पडलों की) पडिलेहणा करके झोली में पात्रोंको लेकर पात्रों के उपर पडले ढांककर भगवान्के पास आकर भगवान्को वंदना नमस्कार करके भगवान् की आज्ञा लेकर नगरीमें गौचरी गये. ऐसे अधिकार मूलसूत्र पाठों में खुलासा पूर्वक आये हैं. ऐसेही गौतम स्वामी की तरह भगवान्के सर्व मुनियोंका अधिकार समझ लेना.

४३ ऊपरके आगम पाठोंमें तीसरे प्रहरमें गौचरी जानेके लिये मुंहपत्ति की पडिलेहणा करके पात्रोंको और पडलों की पडिलेहणा करनेका और गौचरी जानेका अधिकार आया है परन्तु किसी भी सूत्रपाठमें जैन

मुनियों को हमेशा अपने मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई रखनेका देखने में … आता, तोभी ढूंढिये लोग उपासकदशा, अन्तगडदशा और अनुत्तरोववाइ सूत्रके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहराते हैं. सो प्रत्यक्षहीइ पाठों के विरुद्ध होने से उत्सूत्र प्ररूपणा है. और आगमों में जहाँ २ मुहप पडिलेहणा का लिखा हैं वहां २ हमेशा मुंह पर बंधी रखने का अ तरफ से ठहराकर भोले जीवोंको आगमके नामसे अपने मतमें फंसा ले यह तो प्रत्यक्ष ही माया मृषा की ठग बाजी है. इसलिये आत्मार्थी मीरुओं को ऐसे झूठे पक्षका त्याग करनाही हितकारी है।

४४. प्रश्न व्याकरण सूत्र के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखने ढूंढिये ठहराते हैं सो भी प्रत्यक्ष झूठ है. क्योंकि देखो-श्री प्रश्नव्याक सूत्रके पंचम धर्म द्वार में सूत्र वृत्ति सहित छपे हुए पृष्ठ १४८ वेमें दे पाठ हैः— "समणस्स सुविहियस्स तु पडिग्गह धारिस्स भां भायणभंडोवहिउवकरणं, पडिग्गहो १, पादबंधणं २, पादकेसरिया ३ पादठवणं ४ च, पडलाइं तिन्नेव ५, रयत्ताणं च ६, गोच्छओ ७, तिन्नि य पच्छाका १०, रयोहरणं ११, चोलपट्टकं १२, मुहणंतकमादीयं १३ ए पिय संजमस्स उववूहणट्ठाए" व्याख्या—श्रमणस्य-सुविहितस्य, तुशब्दो भाषामात्रे पतद् प्रहधारिणः सपात्रस्य भवति; भाजनं च पात्रम्, भांडं च मृन्मयं, सदेव, उपधिश्च- औधिकः, उपकरणं च औपग्रहिकं, अथवा भाजनं च भांडं चोपधिश्च रेवरूपमुपकरणं, भाजन—भाण्डोपध्युपकरणम् तदे याह- पतद्ग्रहः- पात्रम्, पात्रबंधनं- पात्रबन्धः, पात्रकेसरिका- पात्रप्र र्जनपोतिका, पात्रस्थानं- यत्र कंबलखण्डे पात्रं निधीयते, पटलानि-मि क्षावसरे पात्रप्रच्छादकानि वस्त्रखण्डानि, 'तिन्नेव' त्ति तानि च यदि स्तोकानि तदा त्रीणि भवन्ति, अन्यथा पञ्च सप्त चेति, रजस्त्राणं च पात्रे एनचीवरम्, गौच्छकः पात्रवस्त्रप्रमार्जनहेतुः कम्बलशकलरूपः, त्रय एव प्रच्छादाः द्वौ सौत्रिकौ तृतीय और्णिकः, रजोहरणं प्रतीतम्, चोलपट्टक- परिधानवस्त्रम् मुखानंतकं- मुखवस्त्रिका, एषां द्वन्द्वः, तत एतान्यादि रय तत् तथा, एतदपि संयमस्योपबृंहणार्थम्—उपष्टम्भार्थम् न परि हत्संज्ञा, इत्यादि पृष्ठ १५६ वृत्तिः।

४५. देखो उपरके पाठ में सुविहित- संयमी साधुको संयम धर्म रक्षा करने के लिये उपकरण रखने का कहा है सो पात्र, व पात्रा को बांधने

कपड़े की झोली. पात्रों को प्रमार्जन करने के लिये उनके कपड़ेका टुकडा या पूंजनी को पात्र केशरिका कहते हैं. कंबल के खंडपर पात्रे रक्खे उसको पात्र स्थापन कहते हैं. गौचरी जावें तव झोली व पात्रोंके उपर आच्छादन करने के लिये कमसे कम तीन पट वाले वस्त्र को पडले कहते हैं. ऋतु भेद से पांच या सात पडवाले पडले रखने में आते हैं. उससे सचित्त रज या जलादि वस्तु आहार पर गिरने न पावे इसलिये गौचरी जावें तव पडलों से पात्रों को अवश्य आच्छादित करें. गौचरी लाकर पात्रे रक्खें तव उपरसे ढकने के वस्त्र को रजस्त्राण कहते हैं, अथवा पात्रों को बांधने के बीच में वस्त्र लपेटा जावे उसको रजस्त्राण कहते हैं. गौचरी के बादमें पात्रे बांधकर उपरसे उनका वस्त्र खंड बांधने में आता हैं. उसको गोच्छा कहते हैं. वह गोच्छा झोली पड़ले वगैरह पात्रों के उपकरणों को प्रमार्जन करने के काम में भी आता है, तथा दो सूत की व एक ऊन की कम्बल ऐसी तीन चद्दर रखने में आती हैं, और रजोहरण. चोलपट्टा, मुंहपत्ति आदि यह उपकरण संयम के आधार भूत होने से परिग्रह रुप नहीं हैं.

४६. देखिये ऊपर के पाठ में साधू को रजोहरण और मुंहपत्ति रखने को कहा है. परन्तु मुंह पर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का नहीं कहा तो भी ढूंढिये लोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका कहते हैं सो प्रत्यक्ष झूठ है, और गौचरी जावें तव पात्रों को आच्छादित करने के लिये पड़ले रखनेका सूत्रमें कहाहै. सो ढूंढियेसाधू रखते नहीं हैं और बाजारमें गलियों में लम्बी झोली लटकाते हुए खुला आहार लेकर चलते हैं उसको देख कर कभी २ लोग हंसी करते हैं १, गरीब भिखारियों का दिल लोभ से-ललायमान होता है उनको न देने पर अन्तराय कर्म बंधता है २, हवासे सचित्त (धूल) रज ३, व वर्षा के दिनों में सचित्त जल आदि भी आहार पानी पर गिर जाते हैं ४. आकाश में उड़ते हुए चिल्लादि पक्षियों की विष्टा भी कभी आहार पर गिर जाती है ५. गरिष्ट आहार देख कर लोक साधु को देखो कैसा माल उड़ाते हैं इत्यादि निंदा करते हैं ६ और नीरस आहार देख कर दातारको देखो कैसा खराब आहार साधुको दीयाहै इत्यादि निंदा करने लगते हैं ७. इत्यादि पात्रोंके उपर पड़ले न रखने से बहुत दोष आते हैं. ऐसा आहार करना साधुको योग्य नहीं है तोभी ढूंढिये साधू वैसा आहार करते हैं और मूल पाठ में कहे अनुसार पड़ले गुच्छे आदि उपकर-

ण रखते नहीं. इसलिये जिनाज्ञानुसार इन लोगोंको शुद्ध जैन साधु नहीं कह सकते; किन्तु बिना प्रयोजन हमेशा मुंह बंधा रखकर मलीन वेष [illegible] मे चाले जैनाभास कहने चाहिये- *

५७. यहां पर ढूंढिये शंका करते हैं कि जैसे चोलपट्ट बांधने का नहीं लिखा तो भी बांधने में आता है. वैसेही मुंहपत्ति बांधने का नहीं लिखा तो भी बांधने का समझ लेना चाहिये. ऐसा ढूंढियोंका कहना है समझ कादी है, क्योंकि देखो चोलपट्ट तो गुदा और लिंग लज्जनीय गुप्त स्थान ढकने के लिये बांधने में आता है परन्तु मुंह तो गुदा व लिंग जैसा

* ढूंढिये साधुओं को आगमशास्त्रका पूरा पूरा सच्चा अर्थ समझने में आता नहीं। इसलिये अर्थ का अनर्थ करदेते हैं, देखिये- ढूंढियों का छपवाया हुआ प्रश्नव्याकरण सूत्र के [illegible] ३१० में "पडिग्गहो, पायबंधणं, पायकेसरिया, पायठवणं च, पडलाइं तिन्निय, रयत्ताणं च गोच्छओ, तिन्निय पच्छागा, रयहरणं चोलपट्टग मुहणंतकमादियं, एयंपिय संजमस्स उववूहणट्टाए" इस पाठ का ऐसा अर्थ छपवाया है ' १ पात्र, २ पात्र का बंधन झोली, ३ पात्र की प्रमार्जना करने का गोच्छा, ४ पात्र रखने को पाट पाटला, ५ पात्र लपेटनेका कोठा, ६-८ तीन पात्र, ९-११ तीन पात्रे के ढकन, १२ रजस्त्राण, १३ गोच्छा १४-१६ तीन [illegible] १७ रजोहरण, १८ चोलपट्टा, १९ और २० मुखवस्त्रिका इत्यादि उपकरण संयम निर्वाह के लिये रखे ' इसमें ' पायठवणं ' का अर्थ पाट पाटला किया है, सो अनुचित है, क्योंकि [illegible] को चौमासे बिना हमेशा पाट पाटले वापरने कल्पते नहीं, तथा विहारमें साधु [illegible] साथमें रख सकते भी नहीं और पात्र स्थापन साधु को हमेशा उपयोगमें आता है इसलिये इसके बदलेमें [illegible] पात्र स्थापन कहना युक्तियुक्त है। और ' पडलाइं तिन्नि ' का अर्थ [illegible] पात्र लपेटने का कोठा लिखा है; सो भी झूठ है, क्योंकि ' रयत्ताणं ' (रजस्त्राण) [illegible] लपेटने के काम में आता है, वह मूल पाठ में अलग बतलाया है इस लिये 'पडलाइं तिन्नि' इस पाठ का सच्चा अर्थ साधु गोचरी जावे तब झोली पात्रों के ऊपर तीन पडले [illegible] उन्हीं को पडले कहते हैं. ढूंढिये पडले रखते नहीं इसलिये तीन पडलाके पडलों के [illegible] को उड़ा देते हैं, यही माया [illegible] है और उनके बदलेमें [illegible] के टुकड़े को [illegible] पात्र प्रमार्जन के लिये पात्र केसरिका कहते हैं। और गुच्छा अलग बतलाया है, [illegible] पात्र के ऊपर बांधने में आता है, इस लिये गुच्छे का अर्थ पूंजणी नहीं होसकता, [illegible] का अर्थ पूंजणी मान लेवें तो पात्र केसरिका जो पाठ मूल में है सो निरर्थक हो जाय, [illegible] लिये पात्रकेसरिका पात्रा प्रमार्जन के लिये और गुच्छा पात्रों के ऊपर बांधने के लिये [illegible] अर्थ जो प्राचीन व्याख्याकारों ने किया है, वही शुद्ध है और ' [illegible] [illegible] इसलिये ' पडलाइं तिन्नि ' का अर्थ ' तीनपात्र और तीन [illegible] किया है सो सर्वथा झूठ है। इस प्रकार ढूंढिये लोग आगमपाठ को [illegible] अपना मनमाना [illegible] अर्थ व अनर्थ कर डालते हैं । यहां पर [illegible] है

अपने दांत खदाई कर खड़े करे, रंग लगावे, खटाई देवे, रंगने को अच्छा जाने ॥ ५२ ॥ जो साधु अपने होठों को एक वक्त घसे, घसने को अच्छा जाने ॥ ५३ ॥ ऐसे ही होठ का गमा कहना, २ मैल निकाले, ३ धोवे, ४ खटाई दे, ५ रंग चढावे, धोने, खटाइ, देते, रंग चढाने को अच्छा जाने ॥ ५८ ॥ जो साधु अपने लंबे होठों को काटे, सुधारे, काटने, सुधारने को अच्छा जाने ॥ ५९ ॥ ऐसे ही दीर्घ आखों के पापणोयों को छेदे, समारे, समारने को अच्छा जाने, तो प्रायश्चित्त आवे"

५० फिरभी पांचवे उद्देशा के छपेहुए पृष्ठ ५६ में ऐसे पाठ है —

"जे भिक्खू मुहे वीणियं वायइ, वायंतं वा साइज्जइ ॥ ४८ ॥ जे भिक्खू दंत वीणियं वायइ, वायंतं वा साइज्जइ ॥ ४९ ॥ एवं उट्ठ वीणियं ॥ ५० ॥ एवं णास विणीयं ॥ ५१ ॥"

५१ अर्थ- "जो साधु मुख को वैणा नामक वादित्र जैसा बना कर बजावे, बजाने को अच्छा जाने ॥ ४८ ॥ ऐसे ही- दांतको, होठको नाकको, कांखको, हाथको, नखको, वीना की तरह बजावे, बजाने को अच्छा जाने ४९-५३ ॥"

५२ फिरभी पन्द्रहवें उद्देशके पृष्ठ १६५ में भी ऐसे पाठ है:—

"जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अप्पणो दंताइं आघसीज्ज वा पघसीज्ज वा जाव पघसीयंतं वा साइज्जइ ॥ ५१ ॥ एवं अप्पणो दंताइं सीओदग वीयडेण वा जाव पधोयंतं वा साइज्जइ ॥ ५२ ॥ एवं अप्पणो दंताइं फुमाविज्ज वा जाव मयंतं वा साइज्जइ ॥ ५३ ॥ एवं अप्पणो होट्ठे आमज्जावेज्ज वा"

५३ अर्थ- "जो साधु अन्य तीर्थिक व गृहस्थके पास अपने दांत घसावे, विशेष घसावे, घसाने को अच्छा जाने ॥ ५१ ॥ ऐसे ही जो साधु अपने दांत अन्य तीर्थिक व गृहस्थ के पास अचित्त ठंडे पानीसे तथा गरम पानी से धोलावे धोवने को अच्छा जाने ॥ ५२ ॥ ऐसेही अपने दांतोको खटाइ दिवावे रंग लगवावे खटाई दिवाने को रंग लगवाने को अच्छा जाने ॥ ५३ ॥ ऐसेही अपने होठ [illegible]"

५४ फिर भी पृष्ठ [illegible] में ऐसा पाठ है — "जे भिक्खू विभूसा वडियाए अप्पणोदंते आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा जाव साइज्जइ ॥ १५० ॥ जे भिक्खू विभूसा वडियाए अप्पणोदंते सीओदग वीयडेण वा जाव पधो-

घंतं वा साइज्जइ ॥ १४१ ॥ जे भिक्खू विभूसा वडियाए अप्पणोदंते तेल्लेण वा जाव फुमेज्ज वा जाव साइज्जइ ॥ १४२ ॥"

५५.. अर्थः- " जो साधु विभूषा के लिये अपने दांत को घसे घसते को अच्छा जाने ॥ १४० ॥ जो साधु विभूषा के लिये अपने दांत को अचित ठन्डे पानी से गरम पानी से धोवे, धोते को अच्छा जाने ॥ १४१ ॥ जो साधु विभूषाके लिये अपने दांतको खटाईदे, रंगे, रंगनेको अच्छा जाने ॥१४२॥" तो प्रायश्चित्त आता है.

५६. ऊपरके सब पाठ और सब पाठों के अर्थ- ढूंढियों के छपवाए हुए निशीथ सूत्र के हैं. देखिये नीशिथ सूत्र के उपर के पाठोंमें साधु साध्वी अपने मुखकी विभूषा (शोभा) करनेके लिये दांत घिसकर साफ करें, जलसे धोवे, खटाई लगाकर साफ करें, रंग लगावें, ऐसे ही शोभा के लिये अपने ओष्ठ (होट) को घसे, धोवें, रंगे, काट कर सुन्दर बनावें, यह कार्य आप करें, अन्यदर्शनी या ग्रहस्थी के पास करावें वा ऐसे कार्य करने वाले को अच्छा जाने, और मुंहसे, दांत को होठ को वाजित्र, जैसे बजावे, बजाने वाले को अच्छा जाने तो प्रायश्चित आवे. इस से सावित होता है कि-साधु-साध्वीयों के मुंह मुंहपत्तिसे बंधे हुए नहीं रहते किन्तु खुले रहते हैं, अगर हमेशा मुंहपत्ति से मुंह बंधे हुए होंवे तो शोभा के लिये दाँत होठ दोनों- रंगनेके लिये उपरके कार्य कभी नहीं होसकते और मुंह बंधाहुआ होवे तो दांत होठ को वाजित्र जैसें कभी नहीं बजा सकते, इसलिये ऊपरमें बतलाये हुए कार्य्य तो मुंह खुला होवे तभी हो सकतेहैं. निशीथ सूत्र के ऊपर के पाठों सें साधु-साध्वियोंका मुंह खुला और हाथ में मुंहपत्ति रखना सावित होता है परंतु हमेशा मुंह बन्धा हुआ रखना किसी तरहसे सावित नहीं हो सकता, जिसपर भी निशीथ सूत्रके नामसे ढूंढिये लोग मुंहपत्ति हमेशा बन्धी रखने का ठहराते हैं सो उत्सूत्र प्ररूपणासे प्रत्यक्ष झूठ बोलकर भोले जीवों को उन्मार्ग में डालते हैं और जिनाज्ञा भंगकरके दोषके भागी बनते हैं. आत्मार्थी होगा सो ऐसे झूठे पक्ष को अवश्य ही छोडेगा.

---

५७. दशवैकालिक सूत्रके पाठों पर से भी मुंहपत्ति हाथमें रखने का सावित होता है, तीसरे अध्ययन के " अंजणे दंत वण्णेय, गायाभंग विभूसणे ॥ ९ ॥" इस पाठ में साधु साध्वियों को शोभा के लिये सुरमा

या काजल को आंखमें अंजन करना तथा दांतणकरना व तैलादिक का शरीर पर मर्दन करनेका और आभूषण पहिरनेका निषेध किया है, सो शोभा के लिये दांतण करना मुंह खुला होवे तभी हो सक्ता है परंतु बंधा होवेतो नहीं, इससे भी साधु—साध्वियों के मुख खुल्ले रखनेका ठहरता है तथा चौथे अध्ययन के "जयंचरे जयंचिट्ठे, जयंमासे जयंसए ॥ जयं भुंजंतो भा संतो, पावकम्मं न बंधई ॥ ९ ॥" इस गाथा में यत्ना पूर्वक चले, खड़ा रहे, बैठे, सोये, आहार करे, भाषण करे तो साधु पापकर्म को न बांधे, इसप्रकार यत्नापूर्वक भाषण करने का लिखा है सो हमेशा मुंह बंधा हुआ होवेतो यत्ना करनेकी कुछ भी जरूरत नहीं रहती, किन्तु हमेशा मुंह खुला होवे तभी मुख की यत्ना करके बोलने में आताहै, इसलिये इसपाठ से भी हमेशा मुख बन्धा रखना कभी नहीं ठहर सक्ता और खुला रखना व बोलने का काम पड़े तब यत्ना करके बोलना यही खास जिनाज्ञा है. और पांचवें अध्ययन के प्रथम उद्देश के " अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नम्मि संवुडे ॥ हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजये ॥ ८३ ॥ " इसपाठ में भी साधु गौचरी गया होवे तब कारण सर किसी जगह एकांत में आहार करने का अवसर होवे तो जगह के मालिक की आज्ञा ले करके इरियावही करके 'हत्थगं' हस्तकं, याने-मुखवस्त्रिका (मुंहपत्ति) हाथ में होती है उससे मुखकी प्रमार्जना करके उपयोग सहित आहार करे. इस पाठ में साधु को मुंहपत्ति हाथमें रखने का लिखा है, अगर हमेशा मुंह बंधा हुआ होवे तो मुख की प्रमार्जना करने की कोई भी जरूरत नहीं रहती, किन्तु मुख खुला होवे तभी मुखपर सूक्ष्म सचित्त रज या सूक्ष्म जीव होने का संभव होता है उससे आहार करने के समय मुंहपत्ति से प्रमार्जन किया जाता है, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

५८. अंगचूलिया सूत्र में मुंहपत्ति हाथ में रखने का कहा है, देखिये उसका पाठ ऐसा है- " तओ सूरी दंती दंतुप्पहिं पिट्ठोवरी कुप्परसं ठिएहिं करेहिं रयहरणंठविता वामकरानामिआए मुहपत्तिं लंबंति धरितु सम्मं उवओगपरो सीसं अद्धावणयकायं इकिकवयं नमुक्कारपुव्वं तिन्नि वारे उच्चारावेइ " ऊपरके पाठ में दीक्षा लेने के समय दीक्षा लेने वाला अपने धर्माचार्य महाराज समक्ष अपने दोनों हाथों की कौणियों को अपने पेट पर स्थापन करके, याने-दोनों हाथ जोड़े हुए जीमणे स्कंध को लगता हुआ

रजोहरण रखने और दांये हाथ की अनामिका अंगुली पर मुंहपत्ति को लटकती हुई धारण करने, तदनंतर वंदन लेना नमा हुआ एक एक खमा-समण को नमस्कार करके तीन तीन बार उच्चारण करे। इस पाठ में मुंहपत्ति हाथमें रखने का लिखा है, वहां जब बोलने का काम पड़े तब उपयोग सहि-त मुख की यतना रखे, भाव-मुंहपत्ति से मुख को ढक कर बोले, इसलिये निशीथ दशवैकालिकादि आगमों के ऊपर के पाठों में साधु-साध्वियों के मुख खुले रहने का लिखा है. अतएव हमेशा मुंह बंधा हुआ रखना सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध है।

---

५९. महानिशीथ सूत्र के नाम से हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठ है. देखो श्रीमहानिशीथ सूत्र के ७ वें अध्ययन में आलोयणा के अधिकार में लिखी हुई प्रतिके पृष्ठ ६६ में ऐसा पाठ है " मुहणंतगेण विणा इरियं पडिक्कमिज्जा वंदणं, पडिक्कमणं वा करिज्जा जंभाएज्ज वा सज्झायं वा करिज्जा वायणाई वएज्जा पुरिमड्ढं" तथा पृष्ठ ६८ वें में गोचरी लेकर आवे तब " इरियाए अपडिक्कंताए भत्तपाणाईयं आलोएज्जा पुरिमड्ढं, ससरक्खेहिं पाएहिं अपमज्जिएहिं इरियं पडिक्कमिज्जा पुरिमड्ढं, इरियं पडिक्कमिउ कामो तिन्नि वाराओ चलणगाणं हिट्ठिमं भूमिभागं न पमज्जिज्जा निव्विइयं, कन्नोट्ठियाए वा मुहणंतगेण वा विणा इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं, पुरिमड्ढं च पाहुडियं आलोएत्ता सज्झायं पट्ठावेज्जा निरंतराइं 'धम्मो मंगलाइं' ण कड्ढेज्जा चउत्थं. धम्मो-मंगलं गेहिय अपरियट्टिएहिं चेइयं साहूहिं च अवंदिएहिं पारावेज्जा पुरिमड्ढं" इत्यादि-

६०. ऊपर के पाठ में मुहपत्ति के बिना. अर्थात्-मुंहपत्ति को मुंह के आगे रखे बिना इरियावही करे, गुरु को वंदना करे प्रतिक्रमण करे, उबासी लेवे, स्वाध्याय करे दूसरे साधुओं को सूत्र दिक की वाचना देवे और गोचरी लेकर आवे बाद इरियावही किये बिनाही आहार-पाणी की आलोयणा करे रजादि पग के लगा हो उसका प्रमार्जन किये बिनाही इरियावही करे तो इन सर्व कार्यों में पुरिमड्ढं का प्रायश्चित्त आता है तथा इरियावही का प्रतिक्रमण करने वाले अपने पग के नीचे की भूमभाग को तीन दफे प्रमार्जन न करे तो निवीका प्रायश्चित्त आता है. और इरियावही करने वाले अपनी मुंहपत्ति को प्रमादवश स्थाप देवें अथवा

मुंह के आगे भी न रख कर इरियावही करें तो मिच्छामि दुक्कडं का और पुरिमड्ढं का प्रायश्चित्त आता है तथा गौचरी आलोयेबाद सज्झाय करने के लिये संतोष पूर्वक "धम्मो मंगल" इत्यादि की सज्झाय न करे तो चौथभक्त का प्रायश्चित्त आवे और 'धम्मो मंगल' की सज्झाय करके चैत्य को व साधु को वंदना किये बिना पच्चक्खाण को पार लेवे तो पुरिमड्ढ का प्रायश्चित्त आता है.

६१. देखिये- ऊपरके पाठ में मुंहपत्ति को मुँह के आगे रखे बिना इरियावही करे, गुरुको वंदे, उपासी लेवे, स्वाध्यादि करे और इरियावही करने वाला जैसे गृहस्थी लोग नामा लिखते हुए कभी कभी कलम को कानों पर रख देते हैं. वैसेही साधु भी अपनी मुंहपत्ति को कानों पर रख देवे या मुँहके आगे भी रखे बिनाही इरियावही करे और चैत्य व साधु को वंदना न करे तो प्रायश्चित्त बतलाया है. इसलिए मुंहपत्ति हाथमें रखना प्रत्यक्ष ही सिद्ध है. तो भी ढूंढिये लोग आगमपाठका भावार्थ समझे बिना भोले जीवों को अपने मन में फँसानेके लिये आगेके और पीछेके संबंध वाले सब पाठको छोड़करके बिना संबंध वाला अधूरा थोड़ासा पाठ लिख कर उसका खोटा अर्थ करके हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहराते हैं सो बड़ी भूल है. क्योंकि "कण्णेट्ठियाए वा मुहणंतगेण वा विना" वगैरह प्रमादवश साधु मुंहपत्ति को कानोंपर रख करके व मुंह आगे रखे बिना इरियावही करे तो प्रायश्चित्त आवे, यह सीधा अर्थ है. इसमें कानों पर रखने वालों को प्रायश्चित्त कहा है उसको समझे बिनाही बांधने का ठहराते हैं सो बड़ी अज्ञानता है "मुहणंतगेण विना" यह पाठ मुंहपत्ति हाथ में रखे बिना इरियावही करे तो प्रायश्चित्त बतलाता है परंतु हाथमें मुंह आगे रखकर इरियावही करे तो दोष नहीं बतलाता, इसलिये महानिशीथ सूत्रके पाठसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी हुई कहने वाले अज्ञानी होते हैं प्रत्यक्ष मिथ्यावादी ठहरते हैं।

६२. फिरभी देखिये विचार करिये- श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजने आवश्यक सूत्र की बाहरहजारी बड़ी प्राचीन टीकामें तथा दीक्षा विधि वगैरह अनेक जगह बहुत शास्त्रों में मुहपत्ति हाथ में रखने का ही जगह जगह खुलासा लिखा है और इन्हीं महाराजने महानिशीथ सूत्र का उद्धार किया है, आप खास मुहपत्ति हाथमें रखने वाले थे, इसलिये महानिशीथ सू

के नाम से मुंहपत्ति बंधी हुई रखना कभी सिद्ध नहीं हो सकता. जिस पर भी यदि इसीही सूत्र के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी हुई रखने का ठहरावें तो इन महाराज के वचनों में विसंवाद आवे, जैनाचार्य अविसंवादीहोते हैं, इसलिये इस सूत्र के पाठ से मुंहपत्ति बंधी रखने का कभी नहीं ठहर सकता. यह प्रत्यक्ष ही युक्ति युक्त प्रमाण है तो भी ढूंढिये लोग इससूत्रके नाम से मुंहपत्ति बंधी रखनेका कहते हैं सो प्रत्यक्ष ही झूठ है.

६३. फिरभी देखो- " मुहणंतगेण विना " इस पाठ का मुखानंतकेन विना (मुखवस्त्रिका विना) ऐसा अर्थ होता है, उसका भावार्थ समझे विना ढूंढिये लोग ' तगेण ' शब्द का अर्थ तागा (दोरा-धागा) करते हैं, सो भी प्रत्यक्ष झूंठ है. क्योंकि 'तगेण विना' याने-वस्त्रेण विना ऐसा अर्थ है, इसलिए 'तगेण' शब्द का अर्थ दोरा करने वाले ढूंढियों की बड़ी भूल है, 'तगेण' शब्द का अर्थ दोरा कभी नहीं होसकता. यदि 'तगेण' शब्दका अर्थ दोरा करोगे तो मुखवस्त्रिका का अर्थ कौनसे पाठसे करोगे, क्योंकि वस्त्र के अर्थ वाला अन्यदूसरा कोई पाठ ही नहीं है इस लिये वस्त्र विना ही दोरा का अर्थ करना सो तो बाप के विना ही बेटा पैदा करने जैसा अयुक्त होता है, इसलिये 'मुहणंतगेण' का मुखवस्त्रिका ऐसा सत्य अर्थ को छोड़कर मुख का दोरा ऐसा अयुक्त व असंगत अर्थ करना यह प्रत्यक्ष ही बाल चेष्टा है।

६४ " कन्नेट्ठियाए " इसपाठ से ढूंढिये लोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहराते हैं सो भी बड़ी भूल है, क्योंकि यह पाठ सम्बन्ध रहित अधूरा है आगे पीछे के संबंध वाले सब पाठ को छोड़ कर अधूरे पाठ भोले जीवों को बतलाकर अपनी कल्पना मुजब खोटा अर्थ करके उन्मार्ग को स्थापन करना यही मायाचारी है. हमने पूर्वापर के संबंध वाला पूरा सब पाठ ऊपर में बतलाया है, यह अधिकार गौचरी जाकर आये बाद गौचरी की आलोयणा करने संबंधी इरियावही करने का है. इसलिये ऊपर के पाठ से गौचरी लेकर आये बाद गौचरी की आलोयणा करने के लिये ढूंढिये लोग 'कानो मे मुंहपत्ति को डाले विना इरियावही नहीं करना' ऐसा यदि मानते होवें तो भी ढूंढियो के कहनेसे उसी वक्त कानों में डालने का ठहरता है. इससे गौचरी गये तब कानोमे मुंहपत्ति डाली हुई नहीं थी. ऐसा ढूंढियों के कथन से ही साबित होता है. देखो विचा-

र करो- गौचरी गये तब भी पहिले से ही मुंहपत्ति बंधी हुई होती तो फिर दूसरी दफे बांधने का कभी नहीं कह सकते थे, इससे गौचरी गये तब मुंहपत्ति बंधी हुई नहीं थी. इसप्रकार परसेभी हाथ में मुंहपत्ति रखना ठहरही चुका. इस बात को दीर्घ दृष्टि से विवेक बुद्धि पूर्वक विचारें जावे तो ऊपर के पाठ से हमेशा मुंहपत्ति बांधने का कभी नहीं कह सकते, निर्विवेकी चाहें सो कहें, तोभी यह प्रमाण भूत कभी नहीं हो सकता. और 'कण्णेट्ठियाए' इसपाठ के पहिले के 'मुहणंतगेण विना इरियंपडिक्कमें' इत्यादि पाठमें मुंहपत्ति हाथ में रखना लिखाहै, इसलिए इसपाठ का भी हाथ में रखना ही अर्थ होता है पूर्वापर के सब पाठ को छोड़कर अधूरे पाठ का खोटा अर्थ करके भोले जीवों को बहकाना यही मिथ्यात्व है.

६५. महानिशीथ सूत्र की संस्कृत टीका को किसीभी पूर्वाचार्य महाराज ने नहीं बनाई जिसपर भी ढूंढिये लोग "कण्णेट्ठियाए वा मुहणं तगेण वा विना इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढं च" इस अधूरे पाठकी (कर्णस्थितया मुखपोतिकया इति विशेष्यम् गम्यमम, मुखानन्तकेन वा विना इरियाप्रतिक्रमेन मिथ्यादुष्कृतम् पुरिमार्धं वा प्रायश्चितम्) यह संस्कृत टीका लिखते हैं और लोगों को बतलाते हैं सो बिलकुल अपनी कल्पना से सूत्रकार महाराज के अभिप्राय विरुद्ध होकर नवीन अशुद्ध संस्कृत वाक्य बना लिया है और सूत्र की टीका के नाम से भोले लोगों को अपने फन्दे में फँसाते हैं यह भी ठग बाजी ही है*

* ऊपरके संस्कृत वाक्य को लिखकर ढूंढिये लोग कानों में मुहपत्ति डाले बिना इरियावही करेतो मिच्छामिदुक्कड का या पुरिमड्ढका इन दोनों मे से कोई भी एक प्रायश्चित आवे, ऐसा ठहराते हैं, यही ढूंढियोंकी अज्ञानता है, क्योंकि देखो- "कन्नेट्ठिया" इत्यादि "कर्णस्थितया मुखवस्त्रिकया यदि इर्या प्रतिक्रमेत् तदा तस्य मिथ्यादुष्कृत प्रायश्चित्तं च पुनः मुखानंतकेन विना मुखवस्त्रिका विनैव यदा इर्यां प्रतिक्रमेत् यदा तस्य पुरिमार्धं प्रायश्चित्त" अर्थात् साधु गोचरी लेकर आये बाद उसकी आलोयणा करने सम्बन्धी इरियावही करने के लिये कानो के ऊपर मुंहपत्ति रखकर जो इरियावही करे तो उस साधु को मिच्छामि दुक्कड का प्रायश्चित आवे और मुहके आगे बिलकुल ही मुंहपत्ति रखे बिनाही जो इरियावही करे तो उसको पुरिमड्ढका प्रायश्चित्त आवे एम दोनों बातों के लिये यथा संख्या से अलग २ दोनो प्रकार के प्रायश्चित्त बतलाये हैं, इस प्रकार से उपरके पाठका संस्कृत मे व भाषा मे अर्थ होता है, इसमे कानो पर मुंहपत्ति रखने वालों को मिच्छामिदुक्कड का दोषी बतलाया है तथा उपरके पाठ मे "मुहणंतगेण विना

" तं सेयं खलु इयाणिं कल्लं पादु जाव जलंते यहवे तावसे दि भंडे य पुव्वसंगतिए य परियायसंगतिए अ आपुच्छित्ता आसमसंसियाणि य यहूई सत्तसयाई अणुमाणइत्ता वागलवत्थनियत्थस्स कढिणसंकाइयगी समभंडोवकरणस्स कट्ठमुद्दाए मुहंयंधित्ता उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहस्स महपत्थाणं पत्थावेत्तए एवं संपेहेति २ कल्लं जाव जलंते यहवे तावसे य दिट्ठा भंडे य पुव्वसंगतिते य तं चेव जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति बंधित्ता अयमेतारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हति जत्थेव णं अम्हं जलंसि वा एवं थलंसि वा दुग्गंसि वा निन्नंसि वा पव्वतंसि वा विसमंसि वा गड्डाए वा दरीए वा पक्खलिज्ज वा पवडिज्ज वा नो खलु मे कप्पति पच्चुट्ठित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हति, उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहं पत्थाणं (महपत्थाणं) पत्थिए से सोमिले माहणरिसी पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागते असोगवरपायवस्स अहे कढिणसंकाइयं ठवेति २ वेदिं वड्ढेइ २ उवलेवणसंमज्जणं करेति २ दब्भकलसहत्थगते जेणेव गंगा महानई जहा सिवे जाव गंगाओ महानईओ पच्चुत्तरइ जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ २ दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाए वेदिं रतेति २ सरगं करेति २ अ

दूसरी बात यह भी है कि " मुहणंतगेण विना इरियं पडिक्कमिअ वंदणं पडिक्कमणं वा करिस्सइ जंभाएज्ज वा सज्झायं वा करिस्सइ वायणाई सव्वत्थ पुरिमड्ढं " इत्यादि मुंहपत्ति हाथ में रखना कहा है सो मुंहपत्ति मुंहके आगे रखे विना इरियावही करे तो इसपाठ में पुरिमड्ढ का प्रायश्चित कहा है और " कन्नेट्ठियाए वा मुहणंतगेण विना इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढं च " इसपाठमें मिच्छामिदुक्कडं का वा पुरिमड्ढ इन दोनोंमें से कोई भी एक प्रायश्चित इरिये कराते हैं इसमें प्रायश्चित की रिति है पूर्वापर विरोध आता है इसलिये कानों पर मुंहपत्ति रखने वाले को प्रायः मिच्छामिदुक्कडं का और मुंह आगे बिल्कुल न रखने वाले को प्रायः पुरिमड्ढ का इस प्रकार भिन्न २ कार्यों के प्रमाणों से भिन्न २ प्रायश्चित मानने से [illegible] और प्रायश्चित विरोध किसी तरह का विसंवाद भी नहीं आता [illegible] [illegible]

ालि चहस्सदेवं करेति २ कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति तुसिणीए संचिट्ठति त-
णं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे
अंतियं पाउब्भूते ततेणं से देवे सोमिलं माहणं एवं वयासी- हं भो
सोमिलमाहणा ! पव्वइया दुप्पव्वइतं ते, ततेणं से सोमिले तस्स देव.
स्स दोच्चं पि तच्चं पि एयमट्ठं नो आढाति नो परिजाणइ जाव तु-
सिणीए संचिट्ठति ततेणं से देवे सोमिलेणं माहणरिसिणा अणा-
ढाइज्जमाणे जामेव दिसिं पाउब्भूते तामेव जाव पडिगते ततेणं से
सोमिले कल्लं जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे कढिणसंकाइयं गहिय-
ग्गिहोत्तभंडोवकरणे कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति २ उत्तराभिमुहे संपत्थिते.
ततेणं से सोमिले वितियदिवसम्मि पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव
सत्तिवन्ने अहे कढिणसंकाइयं ठवेति २ वेदिं वट्टेति २ जहा असोगवरपा-
यवे जाव अग्गिं हुणति, कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति, तुसिणीए संचिट्ठति.
ततेणं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं
पाउब्भूए, ततेणं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने जहा असोगवरपायवे जाव
पडिगते. ततेणं से सोमिले कल्लं जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे कढिण-
संकाइयं गेण्हति २ कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति २ उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहे
संपत्थिते. ततेणं से सोमिले ततियदिवसम्मि पुव्वावरण्हकालसमयंसि
जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवा० २ असोगवरपायवस्स अहे कढिणसं-
काइयं ठवेति, वेतिं वड्ढेति जाव गंगं महानइं पच्चुत्तरति २ जेणेव असो-
गवरपायवे तेणेव उवा २ वेतिं रएति २ कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति २ तुसिणी-
ए संचिट्ठति. ततेणं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अं-
तियं पाउ० तं चेव भणति जाव पडिगते. ततेणं से सोमिले जाव जलंते
वागलवत्थनियत्थे कढिण संकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति २ उत्तराए
दिसाए उत्तराए संपत्थिए. ततेणं से सोमिले चउत्थदिवसपुव्वावरण्ह-
कालसमयंसि जेणेव वडपायवे तेणेव उवागते वडपायवस्स अहे कढिणं
संठवेति २ वेइं वड्ढेति उवलेवणसंमज्जणं करेति जाव कट्ठमुद्दाए मुहंबं-
धति, तुसिणीए संचिट्ठति ततेणं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे
देवे अंतियं पाउ० तं चेव भणति जाव पडिगते. ततेणं से सोमिले जाव
जलंते वागलवत्थनियत्थे कढिणसंकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति,
उत्तराए उत्तराभिमुहे संपत्थिते. ततेणं से सोमिले पंचमदिवसंमि पुव्वा-

सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रतलिये थे, परन्तु पीछे से साधुओं के समागम के अभाव से तेने श्रावक धर्म छोड दिया और मिथ्यात्वियों की संगत से मिथ्यात्व में गिरगया और काष्ठमुद्रासे मुँह को बांधना, अग्नि जलाना, कंदमूल खाना व तापसी दीक्षा लेकर अज्ञान कष्ट करता हुआ मिथ्यात्व की क्रिया करता है; इसलिये यह तेरे कार्य दुष्ट कहे जाते हैं, ऐसा देवका वचन सुनकर फिर सोमिल बोला कि अब मेरी प्रव्रज्या (दीक्षा) कैसे अच्छी होवे, तब फिर भी देव बोला काष्ठ मुद्रादि मिथ्यात्व की क्रिया को छोडकर पहिले मुजब सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रतोंको अंगीकार कर, उससे तुमारी क्रिया सफलहोवे. इस प्रकार देवका वचन सुनकर सोमिलने मुँह बांधनादि तापसी दीक्षाकी मिथ्यात्वी क्रिया छोडकर फिरसे श्रावक धर्म अंगीकार किया. तब देवने सोमिल को वंदना नमस्कार किया और अपने स्थान चला गया, उसके बाद सोमिल तापसने श्रावक धर्म पालन करते हुए उपवास, छट्ठ, अट्ठम, मासार्द्ध मास क्षमाणादि बहुत तपस्यादि धर्म कार्य करते हुए अंतमें १५ दिन का अणशन करके अपना आयुः पूर्ण कर ज्योतिषी निकाय में शुक्र नामा बडे ग्रहपने में उत्पन्न हुआ [यद्यपि सम्यग्दृष्टि व्रत धारी तपस्या करने वाला श्रावक वैमानिक देवलोक में जाता है, परंतु सोमिलने श्रावक धर्म की विराधना करके काष्ठमुद्रासे मुँह बंधनादि मिथ्यात्व सेवन किया था, फिर उसकी आलोयणा (प्रायश्चित) नहीं ली, बिना आलोयणा किये आयुः पूर्ण करने से विराधक हुआ, इसीलिये ज्योतिषी में उत्पन्न हुआ है. यदि मिथ्यात्वी क्रिया की शुद्ध भावसे आलोयणा करलेता और आराधक होता तो अवश्य ही वैमानिक देवलोक में उत्पन्न होता.] वहां देवभवका आयु पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र मे मनुष्य जन्म लेवेगा और संयम लेकर यावत् मोक्षमे जावेगा।

६०. देखिये- ऊपर के पाठ में मिथ्यात्वी तापसने काष्ठकी मुद्रा अपने मुंहपर बांधी उसको देवताने दुष्ट कह कर त्याग करवाया और शुद्ध श्रावक धर्म अंगीकार करवाया काष्ठ की मुद्रादि मिथ्यात्वी क्रिया की आलोयणा न लेने से विराधक हुआ, इस बाबत का सब पूरा पाठ को छोड कर सिर्फ 'निरयावली' सूत्र के नाम से ढूंढिये लोग जैन मुनियोंको भी हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहराते हैं, और भोले जीवों को बहकाते है, यह कैसी मायाचारी की ठगबाजी है. 'नि

७०. फिर भी देखिये विचार करीये—उपरके 'निरयावली' सूत्रके पाठके कथन मुजब जब तक सोमिल तापस की मुखबंधनादिक मिथ्यात्वी क्रिया रही तबतक देवता ने उसको वंदना नमस्कार नहीं किया था, परन्तु मिथ्यात्वी क्रिया छुड़ानेके लिये उपदेशतो हमेशा देताही रहाथा, और जब सोमिल तापस प्रतिबोध पाकरके मिथ्यात्वी क्रिया छोडने वाला व शुद्ध श्रावक धर्मको अंगीकार करने वाला हुआ, तब देवताने सोमिलको वंदना नमस्कार कियाथा. इसी तरह से अभी भी श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी जो २ गृहस्थ भव्य जीव होंगे उन्हों को तो सोमिल की तरह हमेशा मुंहबंधा रखने रूप मिथ्यात्व की क्रियाको करने वाले सब ढूंढियों को वंदना नमस्कार करना कल्पे नहीं परन्तु ढूंढियोंका प्र

वन् आज पांच वां दिन है, आधिरातको जहां उत्तर वृक्ष तहां आया, आकर कावड़ स्थापन की, वेदिका बनाई, गोबरसे लीपी, झाड़कर साफकरी, यावत काष्ठकी मुंहपत्ति मुखपर बांधकर मौनस्थ रहा, यो निश्चय अहो! देवानुप्रिय ! तेरी प्रव्रज्या दुष्ट प्रव्रज्या है ॥ २९ ॥ तब वह देवता सोमिल ब्राह्मण से यों बोला यदि अहो देवानुप्रिय ! प्रथम अंगीकार किये पांच अणुव्रत सात शिक्षाव्रत स्वयमेव अंगीकार कर विचरो तो तुमारी इस वक्त सुप्रव्रज्या होवे" इत्यादि ।

देखो खास ढूंढिये लोग अपने छपवाये निरयावली" सूत्र में सोमिल मिथ्यात्व में गिरकर अपने मुंहपर काष्टकी मुंहपत्ति बांधी थी उसको दुष्ट (खोटी) कहकर देवता ने छुड़वाया, और श्रावक धर्म अंगीकार करने से सुप्रव्रज्या (अच्छी दीक्षा) कही, ऐसा ढूंढिये ही लिखते हैं तिसपर भी सोमिलके काष्ट मुद्रा बांधने का प्रमाण आगे करके जैन मुनियों को हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराकर उत्सूत्र प्ररूपणा से मिथ्यात्व फैलाते हैं, यह कितना बड़ा भारी अधर्म है सो पाठकगण आपही विचार सक्ते हैं।

और "जैन तत्त्वादर्श" नामा ग्रन्थ के चौथे परिच्छेद में श्री विजयानंद सूरी आत्मारामजी महाराज ने सांख्यमत के साधुओं का स्वरूप बतलाया है, उसमें काष्ठ मुद्रा मुंहपर बांधने का लिखा है ढूंढिये लोग इस बातको अपने मन में समझते हुए भी मायाचारी से प्रपंच करके भोले जीवों को अपने मत में फंसानेके लिये "जैनतत्त्वादर्श" के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराते हैं, सो भी सर्वथा झूठ है। क्योंकि-इन महाराज ने ढूंढकमत को झूठा समझ कर त्याग किया है और "सम्यक्त्वशल्योद्धार" नामा ग्रन्थ में हमेशा मुंह बांधने का निषेध करके श्रीजिन मूर्तिको मानने पूजनेका आगमपाठानुसार अच्छी तरह से सिद्ध करके बतलाया है उस ग्रन्थके बांचने से हजारों जीवोंने ढूंढक मतको झूठा जानकर त्याग किया है अभी त्याग करते हैं और आगे त्याग करेंगे इसलिये इन महाराजके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराना यही बड़ी मायाचारी है।

मिथ्यात्व छुडाने के लिये उपदेश तो हमेशाही देना योग्य है, उनमेंसे जो
जो आत्मार्थी ढूंढिये सोमिल की तरह अपनी मुंह बंधने रूप मिथ्यात्व
की क्रियाको छोडकर शुद्ध धर्म अंगीकार करने वाले होंगे वह तो उपरके
देवता के दृष्टान्त की तरह वंदन करने के योग्य होंगे परंतु सोमिल की
तरह मुंह बंधा रखने रूप मिथ्यात्वकी क्रिया करने वाले वंदनादिकरने के
योग्य कभी नहीं होसकते. जिसपरभी ऐसे मिथ्यात्वकी क्रिया करने वा-
लों को शुद्ध संयमी जानकर दृष्टिराग से जो वंदनादि करेगा, वह अवश्य
जिनाज्ञा का विराधक होगा. इस बात को विवेकी दीर्घदृष्टिवाले पाठकगण
अच्छी तरह से विचार सकते हैं ।

७१. फिर भी देखिये विचार करिये—सम्यक्त्वमूल बारह व्रत
के शुद्ध श्रावक धर्म से भ्रष्ट होकरके मिथ्यात्व में गिरने वाला, कन्दमू-
लादि अनन्त जीवों को भक्षण करने वाला, गंगानदी में स्नान करके अ-
ग्नि होम बलिदानादि मिथ्यात्व की क्रिया करने वाला सोमिल तापस
लेकरके मुखपर लकडेकी पटडी बांधीथी और हमेशा सर्वथा मौन रहता
था। ढूंढिये लोग उनका प्रमाण बतलाते हैं तब तो सोमिल की तरह
सब ढूंढियों को भी सोमिल जैसा वेष बनाकर सोमिल की तरह गंगा
नदीका स्नान–अग्नि होम बलिदानादि सर्व कार्य करते हुए अपने मुखपर
लकडे की पटडी बांधना योग्य है. और हमेशा मौन रहेना चाहिये, क्यों
कि सोमिल तापसके काष्ट मुद्रा बांधनेका प्रमाण बतलाकर जैन मुनि-
यों को हमेशा मुंहपत्ति से मुंह बंधा रखना ठहराना यह कभी नहीं ब-
न सकता। इसलिये अगर ढूंढियों को मुख बांधनाही पसंद हो तो जैन
नाम धारण करना छोडदें और जैन शासन पसंद हो तो हमेशा मुंह बांधने
रूप मिथ्यात्व को छोड दें इसलिये जो आत्मार्थी ढूंढिया होगा वह ऐसे
मिथ्यात्व को अवश्य ही त्याग करेगा. देखो,-सोमिल ने देवता के उपदे-
श से अपना मिथ्यात्व त्याग करके अपनी भूलकी सुधार ली तो उसलि
शुद्ध धर्म को प्राप्त करने वाला हुआ और आगे [illegible] त्याग करके मोक्ष मे
जावेगा. परन्तु अपनी भूलके [illegible] क्या [illegible]
होगी ? जैन नाम धारण [illegible] क्रिया
करने वाले व [illegible] पुष्ट करने
वाले तथा भोले जीवोंको [illegible] और जैन शासन
में हमेशा मुख बांधन रूप मिथ्यात्वका झगडा फैलाने वाले ढूंढियों को

करतेही रहनाचाहिये तबतो ढूंढियोंके कहने मुजब उन वस्तुओंके शब्द प्रमाणे नाम सफल हो जायेगें नहींतो निष्फल हो जायेंगे, अगर ऐसा करते रहें तोभी एकांतवाद प्राप्त होनेसे मिथ्यात्वी ठहरेंगे और सब जगतके भी विरुद्धहोगा. देखिये—भोजन करनेके समय पात्र को पात्र कहतेहैं परन्तु भोजन न करनेके समय पात्र को पात्र न कहना ऐसा कोईभी नहीं कहसक्ता और मान सक्ता भीनहीं. इसीतरहसे यदि ढूंढिये लोग [illegible] भी [illegible] हो [illegible] हाथपत्ति कभी नहीं कहसके, इसलिये मुंहपत्तिको हाथपत्ति कहकर निषेध करतेहैं सो भोले जीवोंको उन्मार्गमें डालनेकी यह प्रत्यक्षही मायाजी जाहिर होतीहै. ऐसेही 'पगकी रक्षाकरे सो पगरखी' कहीजाती है, उसको भोजन करते, जलपीते, सोते, स्नान करते, प्रतिक्रमण करते, पौषधकरते, मुनिको दानदेते, व्याख्यान सुनने वगैरह सर्वकार्य करते हुए पगमें हमेशा पहीनीहुई रखनेका कोईभी धर्मी पुरुष मान्य नहीं करता, परन्तु चलनेका कामपडे तब पगमें पगरखीको पहिनतेहैं. व अन्य समय पासमें पडी रहने परभी उसको पगरखीही कहतेहैं, वैसेही अब बोलनेका कामपडे तब मुंहपत्तिको मुंहआगे रखतेहैं व अन्यसमय हाथमें या पासमें पडीरहे तोभी उसको मुंहपत्तिही कहना यह जगतप्रसिद्ध न्यायहै. तोभी ढूंढिये मुंहपत्तिको हाथपत्ति कहकर निषेध करतेहैं सो प्रत्यक्ष झूठ बोलकर जगतके सामने अपनी बडी अज्ञानता प्रकटकरतेहैं. इतनेपरभी ढूंढियोंके मानेहुए 'मुंहपर बांधेसो मुंहपत्ति' वाले इसन्यायकी तरह 'पगमें रखते सो पगरखी ' कोभी हमेशा पहिनीहुई रखवाकर सब ढूंढियें गृहस्थी खान—पान व सामायिकादि सर्व धर्मकार्य करते करनेका स्वीकार करलें तो ढूंढियोंका यह न्याय सच्चा समझाजावे और ढूंढियोंके विवेक बुद्धिकी व पवित्रताकी भी जगतमें खूब शोभाहोवे. इसलिये ऐसे न्याय मानने वालोंकोतो ऐसाही करना योग्यहै. अगर ऐसा न करें तो ' मुंहपर बांधे सो मुंहपत्ति ' ऐसी अपनी अज्ञान दशाको छोडकर शुद्ध जैनधर्म अंगीकार करें, व्यर्थही खोटी कुयुक्ति लगाकर भोले जीवोंको उन्मार्गमें डालकर पापके भागी न बनें । सत्य बातके ग्रहण

करनेकी अभिलाषावाले आत्मार्थियोंको ऐसे मिथ्यात्वका त्याग करना ही श्रेय कारीहै।

(श्रीगौतमस्वामीका और अइमत्ता कुमारका अधिकार.)

७९. ढूंढियेलोग कहते हैं कि—गौतमस्वामीजी महाराज जब गौचरी गयेथे तब राजकुमारने महाराजके हाथकी अंगुली पकडकर रास्तेमें बातें करते हुए अपने राज महलमें लेगयाथा, उसवक्त एकहाथ में पात्रोंकी झोलीथी; दूसरे हाथकी अंगुली कुमारने ग्रहणकीथी और बातें करतेहुए खुलेमुंह बोलना साधूको कल्पे नहीं, इसलिये मुंहपर मुंहपत्ति बंधी हुई होवे तभी रास्तेमें चलते बातें होसकतीहैं, उससे मुंहपत्ति बांधना ठहरताहै. ऐसा ढूंढियोका कहना अन समझकाहै. क्योंकि टबवृत्ति सहित छपेहुए " अंतगडदशा " सूत्रके पृष्ठ २३—२४ में ऐसे पाठहैः—

"तते णं भगवं गोयमे पोलासपुरे नगरे उच्चनीय जाव अडमाणे इंदठ्ठाणस्स अदूर सामंतेणं वीतीवयाति. ततेणं से अइमत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीतीवयमाणं पासति २ त्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागते २ भगवंगोयमं एवं वदासी—केणं भंते! तुम्भे किं वा अडह तते णं भगवंगोयमे अइमत्तं कुमारं एवं वयासी अम्हेणं देवाणुप्पिया! समणा णिग्गंथा ईरियासमिया जाव बंभयारी उच्चनीय जाव अडामो, तते णं अतिमुत्ते कुमारे भगवंगोयमं एवं वयासी एह णं भंते! तुम्भे जा णं अहं तुम्भं भिक्खं दवावेमीत्तिकट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हति २ जेणेव सतेघिहे तेणेव उवागते " इत्यादि।

८०. इस पाठमें भगवान गौतमस्वामी पोलासपुरी नगरीमें गौचरी के लिये फिरतेथे वहां अइमत्ता (अतिमुक्त) कुमारने गौतमस्वामी को देखेः देखकर पासमें आया [illegible] पु[illegible] [illegible] लिये फीरते है तब गौतमस्वामी [illegible] समिति आदि धारण करनेवाले ब्रह्मचारी साधुहै [illegible] फिरतेहैं ऐसा वचन सुनकर अइमत्ता कुमारने [illegible] मैं आपको गौचरी (आहार) दिलाऊं. इसप्रकार कहकर बालस्वभाव व गुरुभक्तिसे गौतमस्वामीकी अंगुली पकडकर अपने राजमहलमें अपनी माता श्रीदेवीके पास में लेआया, तब [illegible] बंनाहि[illegible]

करके आहार वहोराया.

८१. देखिये-ऊपरके पाठमें गौतमस्वामीकी अंगुली पकडकर कुमार अपने महलमें लेगया ऐसा लिखाहै, परन्तु रास्तेमें बातें करते हुए चलेगये, ऐसा नहींलिखा, इसलिये रास्तेमें बातें करते चलेगये ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै।

८२. अगर कहा जाय कि यदि अइमत्ता कुमार रास्तेमें बातें करता चलता या अन्यकोई आकर वन्दनादि करता या कुछ सवाल पूछता तो उस वक्त एक हाथमें पात्रोंकी झोलीथी, दूसरे हाथकी अंगुली कुमारने पकडीथी इसलिये तीसरा हाथ नवीन बनाकर उससे मुंहपत्ति मुंहपर रखकर जवाब देना पडता या खुले मुंहबोलना पडता. इसलिये यदि मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई होवेतो रास्तेमें चलते बातेंकरने वगैरहमें कोई बाधा नहीं पडती, उससे मुंहपत्ति बांधनाही ठीकहै. यहभी ढूंढियोंका कहना अनसमझकाहै, क्योंकि देखो-रास्तेमें बातें करते हुए चलना साधुको कल्पता नहींहै. और गौतमस्वामी भगवान्के व अइमत्ता कुमारके रास्तेचलतेहुए कुछभी बातें हुईभीनहीं इसलिये कुमारके साथ रास्तेमें बातें करनेकी शंका करनाही व्यर्थहै. जिसपरभी कभी अइमत्ता कुमार कुछ बातें करता या अन्य कोई आकर वंदनादि करता, कुछ पूछता तो एक जगहमें खडे रहकर साधुके संभोगी केवली रहतेहैं उस मुंहके आगे डालकर उससे बातें करलेते, पूछनेका जवाब देदेते, फिर आगे चलते. अथवा पात्रोंकी झोली वाले हाथसे मुंहपत्ति मुंह आगे रखकर जवाब देसकतेथे क्योंकि आहार लिया नहींथा, इसलिये पात्रोंकी खाली झोलीमें कुछ वजन नहींहोता उससे झोलीवाला हाथभी मुंहपर करनेमें कोई हरकत नहीं होसकती, झोलीवाले हाथसे भी मुंहकी यत्ना अच्छीतरहसे हो सकतीहै. अथवा कभी कुमार बातें करने लगे तो [illegible] हूं हूं आदि चेष्टासे जवाब देते हुए चले जावें अथवा कुमार बातें करता होवे उसको चुपचाप सुनते हुए चले जावें उसका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मुंहपर [illegible] [illegible] चल सकतेहैं [illegible] [illegible] मुंहपर मुंह [illegible] [illegible] कभी नहीं ठहरसकता [illegible] [illegible] मुंह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करनेवाले बडी [illegible] [illegible] [illegible]

८३. फिरभी देखो दिगम्बरो-साधुको छींक आवेतो हाथसे, पर्व- मुंहपत्तिसे मुंहको, नाक-मुंह दोनोंको यत्ना करके पीछे छीं-कादि करनेका आचारांगादि मूलआगमोंमें कहाहै. इसलिये यदि रस्तेमें चलतेहुए कभी गौतमस्वामीको छींक आतीतो लटकाकर फुमारसे हाथ छुड़ाकर उस हाथसे या झोलीवाले हाथसे मुंहको यत्नाकरके छींकको अवश्यही करते परन्तु यहां तीसरा हाथ नवीन बनाकर मुंहको यत्ना नहीं करते, या नाक और मुंह दोनों खुले रखकर छींकादि कभी नहीं कर-ते. यह बात ढूंढियोंकोभी मन्य करनीही पड़तीहै (ढूंढियोंके कहने मुजब मुंहबन्धा हुआ होवे तो भी छींकआवे तबतो नाककी यत्ना हाथसे अ-वश्यही करनी पड़तीहै) इसीतरहसे रस्तामें चलते हुए कभी बातें करने का काम पड़जाता तो गहे रखकर फुमारसे हाथ छुड़ाकर या झोलीवा-ले हाथसे मुंहको यत्ना करके जवाब देसकतेथे, इसलिये तीसरा हाथ न-वीन बनाकर मुंहके आगे मुंहपत्ति रखनेकी या खुले मुंहबोलनेकी कोई जरूरत नहीं थी. इसन्यायसेभी.हाथमें मुंहपत्ति रखना साबित होताहै, परन्तु हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखना कभी नहीं ठहर सकता. जिसपरभी ढूंढियेलोग अपनी अज्ञतासे बन्धीहुई ठहरानेकी कुतर्क करते हुए बिना प्रयोजन गणधर महाराजकों हमेशा मुंहबन्धा रखनेका झूठा दोष लगातेहैं और आगमार्थके आशयको समझे बिना हमेशा मुंहबंधा रखनेका झूठा पंथ चलाते हुए उत्सूत्रप्ररूपणासे मिथ्यात्व बढातेहैं इसलिये आत्मार्थियों को ऐसे झूठे पंथका त्याग करनाही उचितहै।

८४. यह केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवानका कहाहुआ जैनशासन है इसमें मोक्षसिद्धिके लिये कोइभी [illegible] बिनाप्रयोजन [illegible] नहीं बतलायी किन्तु यथायोग्य [illegible] बत-लाईहै. रजोहरण [illegible] रखने की भगवानकी आज्ञाहै [illegible] किया जाताहै परन्तु बिनाप्रयोजन [illegible] सा-मान्य बुद्धिवाला मनुष्यभी [illegible] लोग हमेशा मुहपत्ति बन्धी [illegible] भगवानकी आज्ञा [illegible] प्रयोजनहोवे तब मुंहआगे मुंहपत्ति रखना [illegible] सप्रयोजन [illegible] और बनाबाके

मुंहपर हमेशा बंधी रखना सो निष्प्रयोजन निष्फलहै, जब साधु १-२ प्रहर, १-२ दिन या महीना पंदरहरोज अथवा चार छ महीने पर्यंतक मौनपणे काउसग्ग ध्यानमें रहे तब बोलनेका कुछभी प्रयोजन नहीं पडताहै, उससमय हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखनेका कोईभी प्रयोजन नहींहै, तिसपरभी ढूंढियेलोग वर्षभरके काउसग्ग ध्यानमें उस समयभी मुंहपत्ति बंधी रखनेका कहते हैं और अभी बंधी रखतेहैं सो निष्प्रयोजन निष्फल होनेसे जिनाज्ञा विरुद्धहै. अगर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका सर्वज्ञ कहेहुए शास्त्रोंमें होवेतो निष्फल क्रिया करनेका उपदेश देनेवाले सर्वज्ञ ठहरजावें, उससे सर्वज्ञ पनेमें बाधाआवे, सर्वज्ञ होकर निष्फल क्रियाका उपदेश कभी नहीं करसकते, इसलिये सर्वज्ञके कहेहुए जैनशासनमें हमेशा महबंधनेकी निष्फल क्रिया कभी नहीं होसकती. ढूंढियेलोग हमेशा मुंहबांध कर सर्वज्ञ शासनके नामसे सर्वज्ञके शास्त्रोंकी, और सर्वज्ञके शासनकी बडीभारी अवज्ञा (हीलना) करवातेहैं, यहलोग सर्वज्ञ-भगवानके भक्तनहीं किंतु शत्रुताका काम करतेहैं इसलिये इनलोगोंको सच्चेजैनी कहना और मानना सर्वथा अनुचितहै, आत्मार्थियोंको ऐसे कुपंथको अवश्यही त्याग करना योग्यहै ।

८५. फिरभी देखिये विचार करीये-जैसे रजोहरणका बैठने, सोने वगैरह कार्योंके लिये जब प्रयोजनहोवे तब उससे रजादिदूर करनेका काम लिया जाताहै और कभी पैर वगैरहके उपर सचित्तरज या त्रस जीवपड जावें तो पूंज-प्रमार्जन करके उसको भी उपयोग पूर्वक दूरकरनेमें आवे, नहींतो विनाप्रयोजन रजोहरणभी पासमें नजदीक पडारहताहै. तैसेही रजोहरणकी तरह मुंहपत्तिसेभी बोलनेका कामपडे जब प्रयोजन होवे तब मुंहके आगे रखकर यत्नापूर्वक बोलनेका कार्यकरना और मुंहके उपर मस्तकके उपर, कानोंके उपर या नासिकादि स्थानों के उपर कोई सूक्ष्म त्रसजीव पडजावेतो उसको मुंहपत्तिसे उपयोग पूर्वक पूंज-प्रमार्जन करके दूर करनेमें आताहै. नहींतो विनाप्रयोजन रजोहरणकी तरह मुंहपत्ति भी पासमें नजदीक पडी रहतीहै, इसलिये मस्तकादि उपर त्रसजीवादि पडे उसीवख्त मुंहपत्तिका उपयोग किया जाताहै, यदि हमेशा मुंहपर बंधीहुई होवेतो मस्तकादिके उपर प्रमार्जना कैसे होसके, अगर रजोहरणसे प्रमार्जना करनेका कहा जावेतो यहबात अनुचितहै और बन सकतीनहीं

नहीं क्योंकि रजोहरण जमीन आसन व पैरादिके पूंजनेके काममें आता है उसको मस्तकपर फेरना अनुचितहै और रजोहरण बडा होनेसे आंख, कान, नाकादि, छोटे स्थानोंपर सूक्ष्म जीवोंको पूंजनेके काममें नहीं आसकता. इसलिये इनछोटे स्थानोंको पूंजनेके लियेतो मुंहपत्तिही काममें आतीहै. यह प्रत्यक्ष अनुभव सिद्धहै और शास्त्रकारोंनेभी मुंहपत्तिसे पूंजनेका लिखाहै उसके पाठआगेके लेखोंमें बतलानेमें आतेहैं इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बंधीरखना सर्वथा अनुचितहै अगर कहा जावे कि छोटी सी पूंजणी रखकर उससे आंख, नासिका, कानादिछोटे स्थानोंको पूंजना-प्रमार्जना करेंगे, ऐसा कहनाभी शास्त्र विरुद्धहै, क्योंकि मुंहपत्ति रखनेका प्रयोजनही शास्त्रोंकारोंने मुंह आगे रखनेका और सूक्ष्मजीवोंकी प्रमार्जना करनेका खुलासा पूर्वक बतलायाहै. रजोहरण व मुंहपत्ति दोनों वस्तु पूंजने प्रमार्जनेके लिये शास्त्रोंमें कहीहैं परन्तु तीसरी छोटी पूंजणी रखकर मुंह आदि पूंजन-प्रमार्जन करनेका किसी भी शास्त्रमें किसी जगह नहींलिखा, शास्त्रकारोंने मुंहपत्तिसे प्रमार्जन करनेका लिखाहै सो करना नहीं और शास्त्रविरुद्ध होकर हमेशा मुंहपर बांधीरखना और मुंह, नासिका, कानादि प्रमार्जनके लिये अपनी कल्पना मुजब तीसरी पूंजणी रखनेका नवीन ढोंग चलाना यहभी मिथ्यात्वहीहै।

(मुंहपत्ति हमेशा बांधी रखनेमें कष्टहै या हाथमें रखनेमें कष्टहै ?)

८६. ढूंढिये कहतेहैं कि बिनाकष्ट सहज काम हरएक आदमी सुगतमें करलेताहै. परन्तु कष्टवाला कार्यतो कोई वीरलाही करताहै. वैसेही मुंहपत्ति हमेशा बंधी रखना यहभी बडा मुश्किलीका कामहै, इसलिये हरएक नहीं करसकता, केवल हमलोगही यह कष्टका काम करसकते हैं. यहभी ढूंढियोंका कहना सर्वथा अनुचितहै. क्योंकि देखो-जैनागममें शुद्ध उपयोग रहित अज्ञान कष्टको मिथ्यात्व कहाहै. यह अज्ञान कष्ट आत्महित करनेवाला नहीं होसकता और ज्ञानसहित शुद्ध उपयोगसे थोडासा कष्टकरे तोभी वह मोक्ष देने वाला होताहै. नरक व तिर्यंच गतिमें प्राणी परवश अनंत कष्ट भोगताहै तोभी मोक्ष नहींहोता और ज्ञानीपुरुष कष्टबिनाभी शुद्ध उपयोगसे (मारुदेवी माताकी तरह) मोक्षप्राप्त करलेताहै. उससे हमेशा मुंहपत्ति बंधीरखना यह जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे अज्ञानकष्ट संसारवृद्धिका कारणहै, इसलिये ऐसे अज्ञानकष्टका ढूंढियोंको अभिमान

करना सर्वथा व्यर्थहै ।

८७. फिरभी देखिये—दोरा डालकर हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रख नेमें शरीरको कुछभी कष्टनहींहै व उपयोगभी शुन्य रहताहै और हाथमें मुंहपत्तिको मुंहआगे रखनेसे जब २-४ घंटे बोलनेका कामपड़े तब मुंह आगे २-४ घंटे हाथरहनेसे स्थंभित होजाताहै, दुःखने लगजाताहै, उपयो गभी शुद्ध रहताहै. देखो—जबजब बोलनेका कामपड़े तबतब हरसमय शुद्धउपयोग रखकर मुंहआगे हाथरखना पडताहै तथा जब छींक, उबा सी वगैरह आवें तबभी उपयोग पूर्वक मुंहआगे हाथरखना पडताहै, इ ससे सदा हरसमय उपयोग शुद्ध रहताहै, वारवार हाथको कष्टदेना पड ताहै उससे अशुभ कर्मोंकी निर्जराभी ज्यादे होतीहै और मुंहपत्ति हमे शा मुंहपर बंधीहुई होवेतो हाथको कष्टदेनेकी कुछभी जरूरत रहतीनहीं हरसमय मुंहआगे हाथ रखनेका उपयोगभी नहींरहता, उससे कर्मोंकी निर्जराभी नहींहोती, इसलिये हाथमें मुंहपत्ति रखनेसेही कर्मोंकी निर्जरा करनेवाला व शुद्ध उपयोग वाला कष्टज्यादे होताहै, परन्तु बंधी रखनेमें कष्टनहींहै. तोभी ढूंढिये हमेशा बंधी रखनेमें कष्ट बतलातेहैं सो प्रत्यक्ष झूंठहै. इतने परभी अगर मुंहपत्ति बांधनेमेंही ढूंढिये कष्ट मानते होवेंतो वस्त्रकी कोमल मुंहपत्तिमें ज्यादेकष्ट नहींहै, इसलिये सोमिलकी तरह का ष्टकी परडीकी मुंहपत्ति बनाकर उससे नाक और मुंह दोनोंबांध लेवेंतो ज्यादे कष्टहोगा तथा नाकको गरमश्वाससे जीवोंको बहुत कष्टहोताहै. वहभी न होगा, दयापलेगी. देखो—मुंहतो मौन रहनेसे या सोजानेसे बं ध रहताहीहै. परन्तु नाकतो हमेशा खुलाही रहताहै इसलिये नाक बांधने में जीवदयाका बहुत लाभ और कष्टभी ज्यादेहोगा. नाक बांधनेका कष्ट करते नहीं झूंठा कष्टका नाम लेकर व्यर्थही मायाचारीसे मिथ्या मान्य, करतेहैं, सो सर्वथा अनुचितहै ।

८८. उत्तराध्ययनादि सूत्रोंमें मुनियोंके कष्ट सहन करनेके लिये २२ प्रकारके परिषह बतलायाहैं, परन्तु मुंह बांधनेका २३ वा परिषहका कष्ट सहन करनेका किसीभी सूत्रमें नहीं बतलाया तोभी मुंह बांधनेका कष्ट हम सहन करतेहैं, ऐसा ढूंढिये कहतेहैं सो प्रत्यक्ष झूंठहै और जिनाज्ञा विरुद्ध हमेशा मुंह बांधकर थूंकमें असंख्यात जीवोंकी हानी करनेसे व मायाचारीसे बहुत जगह झूंठी २ बातें बनाकर उन्मार्ग जमानेके अधर्मसे

सके विपाकरूप संसार परिभ्रमण करनेका कष्टतो भवांतरमें अवश्यही
सहन करना पड़ेगा. परन्तु हमेशा मुंह बांधनेमें कर्मोंका नाश करनेवाला
जैनशास्त्रानुसार धर्मरूप कष्ट नहींहै।

(थूंकमें समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै या नहीं.)

८९. ढूंढिये कहतेहैं कि हमेशा मुंहपत्ति बंधीरखनेसे बोलते स-
मय थूंक लगकर थूंकसे मुंहपत्ति गीली होतीहै, परन्तु उसमें समूर्च्छिम
जीवोंकी उत्पत्ति नहींहोती, क्योंकि "पन्नवण्णा" सूत्रमें समूर्च्छिम जीवों
की उत्पत्तिहोनेके १४ स्थान बतलायेहैं परन्तु वहां थूंकमें समूर्च्छिम जी-
वोंकी उत्पत्ति होने का १५ वां कोईभी स्थान नहीं बतलाया, इसलिये थूं-
कमें समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति नहींहोती. यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्य-
क्ष झूंठहै, देखिये-"पन्नवण्णासूत्र" वृत्तिसहित छपाहै, उसके प्रथम पदमें
छपेहुए पृष्ठ ५० वेंमें ऐसा पाठहै:—

" उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा
पित्तेसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीव-
कलेवरेसु वा थीपुरिससंजोएसु वा णगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइ-
ट्ठाणेसु, एत्थ णं समुच्छिम मणुसा संमुच्छंति, अंगुलस्स असंखेज्जइभा-
गमेत्ताए ओगाहणाए असन्नी मिच्छदिट्ठी अन्नाणी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं अप-
ज्जत्तगा अंतोमुहुत्ताउया चेव काल करेंति "

९०. इस पाठमें इतने स्थानोंमें जीवोंकी उत्पत्ति होनेका बतलाया
है. मनुष्योंकी विष्टामें १, पेशावमें २, मुखके मैल-खेल (कफ-थूंकसहित
खंखारा) में ३, नाकके मैल-श्लेष्म (लेडा) में ४, वमन (उलटी) में ५,
पित्त पड़तेहैं उसमें ६, परु (रसी) में ७, खून (लोही) में ८, शुक्र (वीर्य)
में ९, विष्टा-वीर्य आदि सुके हुए पुद्‌गल फिरसे भींगनेसे गीलेहोवे उसमें
१०, जीवरहित मुर्देके शरीरमें ११, स्त्री पुरुषके संयोग (मैथुन सेवन) में
१२, नगरकी खाल (गटरमें) १३. और सर्व अशुचि स्थानोंमें १४. मनुष्यों
संबंधी इन अशुचि वस्तुओंमें अन्तरमुहूर्त्त (दोघडीमें कुछकम) जितने
समयमें अंगुल जितनी जगहमें असंख्यात असंज्ञी पंचेन्द्रीय समूर्च्छिम
मनुष्य उत्पन्न होते हैं व मरतेहैं।

९१. ऊपरके पाठमें मुखके मैल खेलमें जीवोंकी उत्पत्ति कहीहै
सो खेलः याने-कफ-थूंकवाला खंखाराको खेल कहतेहै. उससे कफके

साथ थूंकभी मुखका मैल गिना जाताहै. इसलिये थूंकमें भी समुर्छिम पंचेन्द्रीय जीवोंकी उत्पत्ति अवश्यही होतीहै और सर्व अशुचि स्थानोंमें मनुष्योंके शरीरकापसीना मैल तथा मुखका थूंक व लाल वगैरह सब अशुचिमें हैं. इसलिये ऊपरके पाठ मुजब थूंक मुखकी लाल आदि सर्वअशुचि वस्तुओंमें जीवोंकी उत्पत्ति होना ज्ञानियोंके वचनानुसार मान्य करनाही पडेगा. उपरके पाठमें मुखकी लालका नाम अलग नहीं बतलाया तोभी कफ व पित्तके साथ लालभी पड़ती है इससे लालमें भी जीवोंकी उत्पत्ति मानी जातीहै, वैसेही थूंकका नाम अलग नहीं बतलाया तोभी लालकी तरह कफ व पित्तके साथ थूंकभी पड़ताहै इसलिये थूंकमें भी जीवोंकी उत्पत्ति अवश्यही मानी जातीहै, थूंक-लाल वगैरह को जगत भी अशुचि मानताहै यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै. और कई गृहस्थी लोग एकही लोटेको एकही गिलासको हरएक आदमी जलपीने समय अपने अपने मुखको लगाकर जलपीतेहैं उससे एकएककी लाल-थूंक दूसरे दूसरे आदमीको लगतीहै उससे कभी कभी किसी आदमीके मुखमें रोगकी उत्पत्ति होतीहै और पढे-लिखे अच्छे अच्छे समझदार आदमी थूंक-लाल वाले झूंठे गिलाससे जलपीना अच्छा नहीं समझते, यहभी प्रत्यक्ष प्रमाण है. इसलिये थूंकको अशुचि (अशुद्ध) मानताही पडेगा व उसमें जीवों की उत्पत्ति माननीही पड़ेगी. इसलिये ढूंढिये लोग हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बांधतेहैं उससे बोलते समय मुंहपत्तिके थूंक लगताहै, थूंकसे मुंहपत्ति गीली होतीहै उसमें असंख्यात असंज्ञी पंचेन्द्रीय मनुष्य उत्पन्न होतेहैं व मरतेहैं, यह पाप हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने वाले सर्व ढूंढियोंको अवश्य ही लगताहै, इसलिये १४ स्थानों में थूंक नहींहै व थूंकमें जीवोत्पत्तिका १५ वां स्थान नहीं कहाहै ऐसा ढूंढियोंका कहना, लिखना, छपवाना प्रत्यक्ष झूठहै. क्योंकि १४ स्थानोंमें तीसरे खेल स्थानमें व चोदहवें सर्व अशुचिस्थानमें थूंक-लाल पसीनावगैरह आजातेहैं. उसमें जीवोत्पत्ति होतीहै और थूंककी गीली मुंहपत्ति चौमासेमें सुकाने परभी दोदो तीनतीन रोज तक नहीं सूकती उसमें समय समय असंख्यात जीव पैदा होतेहैं व मरते हैं यहभी पाप हमेशा मुंहपत्ति बांधने वालोंको व इसबातका उपदेश देने वालोंको और पुष्ट करने वालोंको अवश्यही लगताहै और थूंक लगी हुई गीली मुंहपत्ति मुंहपर बंधी रखनेसे ओष्ट (होठ) के लगताहै उसमें

ठ झूठा होताहै, ऐसे झूठे मुंहसे सूत्रका पाठ उच्चारण करना यहभी
ज्ञानकी प्राणीरूप आगमकी बडीभारी आशातना लगतीहै, उससे
ज्ञानावर्णीय कर्म बंधन होताहै इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधने वालोंको
इसी बड़ा भारी दोष लगताहै और धूप (गरमी) के दिनोंमें प्रशेवासे
या थूंकसे अन्दरसे उपरसे दोनों तरफसे मुंहपत्ति गीली होतीहै ऐसी
गीली मुंहपत्ति हमेशा मुंहपर बन्धी रखनेसे दुर्गन्धी होतीहै उससे मुंह
गन्धाताहै, जिससे अन्य दर्शनीय कोई अच्छा आदमी पासमें आकर बैठे
। ऐसी दशा देखकर घृणा करताहै उससे शासनकी बडी हीलना होती
, शासन हीलनाका यहभी दोष हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखने वाले ढूं-
ढियोंको लगताहै और ऐसी दुर्गन्धी वाली गीली मुंहपत्ति हमेशा मुंह-
र बन्धी रखनेसे कभी कभी किसीके मुंहमें रोगकी उत्पत्तिभी होजाती
, होठके दाने (चाटे) पड़ जातेहैं. इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बन्धी र-
खना सो रोगकी उत्पन्न करने वाली होनेसे सर्वथा अनुचितहै १, जिनाज्ञा
विरुद्धहै २, असंख्यात असंज्ञी मनुष्य पंचेन्द्रीयजीवोंकी हानी करने वा-
लीहै ३, ज्ञानावर्णीय कर्म बन्धन करने वालीहै ४, शासनकी हीलना करा
ने वालीहै, शासनकी हीलना कराने वालोंके संयम व सम्यक्त्वका नाश
होताहै और दुर्लभ बोधी होकर अनंत संसार बढताहै ५, तथा काउस-
ग्ग ध्यानमें मौन रहनेपरभी बिना कारण मुंहपत्ति बन्धी रखनेसे बाल-
चेष्टा जैसी निष्फल क्रियाकाभी दोष आताहै ६, और होठके उपर मुंह-
पत्ति बन्धी रहनेसे सूत्रपाठका शुद्ध उच्चारण साफ नहीं होसकता ७, इ-
त्यादि अनेक दोष हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखनेमें आतेहैं औरभी इन्दौर श-
हरमें मुंहपत्तिकी चर्चाके प्रथम विज्ञापनमें १२ दोष बतलायेहैं सो इसग्र-
न्थकी आदिमेंही छपाहै, वहाँसे समझ लेना ।

९२ ढूंढिये कहतेहैं कि थूंकको गीली मुंहपत्तिमें मुंहकी गौरमीसे
जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होसकती यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै
क्योंकि जैनसिद्धांतोंमे शीतयोनी-उष्णयोनी व शीतोष्णयोनी ऐसी तीन
प्रकारकी जीव उत्पन्न होनेकी योनिये बतलाईहै (यहतो प्रसिद्धहीहै)
और तीनों तरफसे मुहपत्ति खुली रहताहै इसलिये हवाके संयोगसे बार
बार मुंहसे अलग होजातीहै अथवा बारबार जलपीनेके समय या आहार
करनेके समय हरवक्त मुंहपत्ति मुहपरसे दूर करनी पडतीहै उसवक्त थूंक

की गीली मुंहपत्तिमें शीतयोनियें जीवोंकी उत्पत्ति होजातीहै फिर वो जीवोंकी उत्पत्तिवाली गीली मुंहपत्ति मुंहपर बांधनेसे उत्पन्न हुए सब जीवोंका मुंहकी गरमीसे नाश होजाताहै इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधने वालोंको थूंककी गीली मुंहपत्तिमें असंख्यात असंज्ञी पंचेंद्रीय जीवों की घातका हमेशा दोष लगताहै ।

९३ ढूंढिये कहतेहैं कि हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेसे थूंकलगने से असंख्य जीवोंकी उत्पत्ति और हानि होतीहै, ऐसा कहतेहो तो मंदिर में जब श्रावक लोग पूजा करतेहैं तब २-४ घंटेतक मुखकोश बंधा रखतेहैं उसमेंभी बोलनेसे थूंकलगनेसे जीवोंकी उत्पत्ति और हानि होगी, उसका निषेध क्यों नहीं करतेहो. ऐसा ढूंढियोंका कहना अनसमझका है क्योंकि मूलगंभारेमें भगवान्की पूजाकरते समय श्रावकोंको बोलनेकी साफ मनाईहै अगर भूलसे कोई बोलेतो अवश्यही दोषका भागी होता है और २-४ घंटे जबतक रंगमंडपमें पूजा पढातेहैं तबतक पूजा पढाने वाले मुखकोश बंधाहुआ नहीं रखते, सिर्फ मुंहआगे वस्त्रादि रखकर यत्नासे पूजापढातेहैं, जिसपरभी कोई मुखकोशको बंधाहुआ रखकर पूजा पढावे तो थूंकसे गीला होनेसे जीवोंकी उत्पत्ति अवश्य होगी व होठके लगनेसे मुंह झूंठा रहेगा, भगवान्की आशातना लगेगी और कर्म बंधेंगे. उसीतरह हमेशा मुंहपत्तिभी बंधी रखने वालोंको बोलनेसे थूंक लगताहै, थूंकसे मुंहपत्ति गीली होतीहै, उसमें असंख्य समूर्छिम जीवोंकी उत्पत्ति और हानि होतीहै उसका पाप हमेशा मुंहपत्ति बांधने वालोंको लगताहै, इसलिये मुखकोश बांधनेका बतलाकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराना सर्वथा अनुचितहै ।

९४ ढूंढिये कहतेहैं कि मुंहपत्ति बांधनेमें ऐसे दोषहैं तो फिर संवेगी साधू व्याख्यान बांचते समय क्यों मुंहपत्ति बांधतेहैं. इस बातका इतनाही जवाबहै कि-ढूंढिये साधू नाकखुला रखकर होठोंपर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखतेहैं, उसीतरह संवेगीसाधू होठोंपर नहीं बांधते किंतु नाक के उपरसे बांधतेहैं, उससे मुंहपत्तिके व होठोंके थोड़ा अन्तर रहताहै होठोंको लगने नहींपाती और थोड़ीदेरमें सूत्ररूपी होनेही बदल देतेहैं इसलिये थोड़ीदेरमें थूंक लगनेका व होठोंके लगकर मुंहझूंठा होनेका संभव नहींहै और ढूंढिये लोगतो हमेशा बंधी रखतेहैं उससे बोलनेमें मुंह

कैसे थुंक लगताहै उससे जीवोंकी उत्पत्ति वगैरह अनेक दोष लगतेहैं
और हमेशा मुंहपत्ति बंधीहुई रखकर बजारमें, गलियोंमें, रास्तोंमें फिरने
से बहुतलोग हांसी करतेहैं. इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधना अनुचितहै।

९५. संवेगी साधु अपने नाककी दुर्गंधी व मुंहकाथूंक भगवान्‌की
प्रतिरूप आगमपर न गिरनेके लिये कारणवश थोडीदेरके लिये नाकमुंह
दोनों बांधतेहैं, परन्तु पीछे खोल डालतेहैं. उसका भावार्थ समझे बिना
ढूंढिये साधुओंके व्याख्यान समय मुंहपत्ति बांधनेका दृष्टांत बतलाकर
हमेशा मुंहबांधनेका अपना झूंठा मत स्थापन करतेहैं यहभी ठगबाजीही
है. देखिये—बहुत संवेगी साधु शास्त्रोंके पाने हाथमें न लेते हुए ऐसेही
मुखजबानीसे व्याख्यान बांचतेहैं, तब नाक-मुंह दोनों नहीं बांधते, किंतु
हाथमें मुंहपत्ति रखकर उपयोगसे मुंहको यत्ना करते हुए धर्मदेशना
देतेहैं. इसीतरह यदि संवेगी साधुओं की तरह ढूंढियेभी वैसेही करना
चाहते होवें तबतो हमेशा मुंह बांधनेके झूंठे ढोंगको जलदीसे त्याग
करें और मुंहपत्ति हाथमें रखना स्वीकार करें नहींतो कारणवश नाक-मुंह
बांधनेका दृष्टांत बतलाकर मायाचारीसे हमेशा मुंहबांधनेका झूंठापक्ष
जमाना योग्य नहीं, आत्महितकी चाहना करनेवाले सज्जनोंको ऐसी मा-
याचारीसे उन्मार्गको पुष्टकरना उचित नहीहै।

(औरभी अन्य बहुत ढूंढियोंकी शंकाओंका समाधान आगे लि-
खेंगे. परन्तु अब यहांपर ढूंढियोंने शास्त्रोंके पाठ बदलकर तथा कई
शब्दोंके अर्थ बदलकर बडे बडे प्राचीन महान् प्रभावक पूर्वाचार्योंके नामसे
हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेके लिये कैसे कैसे मायाचारीके प्रपंच
कियेहैं, उसका निर्णय लिखतेहैं.)

---

९६ उद्योतसागरजी कृत "सम्यक्त्वमूल बारह व्रतकी टीप" के
नामसे मुंहपत्ति हमेशा बंधीहुई रखनेका ढूंढियेलोग कहतेहैं सोभी प्रत्यक्ष
झूठहै. क्योंकि सम्यक्त्वमूल बारहव्रतटीपकी प्रथमावृत्ति सम्वत् १९२८
में [illegible] छापाखानेमें मुम्बईमें छपीहै उसमें श्रावकके नवमें सामायिक
व्रतके अधिकारमें सामायिकमें सामायिकके ३२ दोष निवारण करनेके लिये
दोषरे चलदृष्टि दोष बाबत छपेहुए पृष्ठ [illegible] में ऐसा लेखहै.

"आंखोचलदृष्टि दोष ते सामायक लिधापछे दांट ना डाचा उपर रा-
खे मनना शुद्ध उपयोग राखे मौनपणे ध्यानकरे अने सामायकना शास्त्र

में डालते हैं यह कितना बड़ाभारी अधर्म है. बोलते समय मुंहआगे मुंहपत्ति रखनेसे जीवोंकी विराधनाका व मुखमें रजादि पड़नेका बचाव है तादि, यहतो जगत प्रसिद्ध बातहै, परन्तु उससे हमेशा मुंहपत्ति बांधे रखनेका कभी साबित नहीं होसकता. इस 'योगशास्त्र' में यह महाराज हाथमें मुंहपत्ति रखनेका लिखतेहैं तोभी ढूंढियोंके कैसे अशुभ कर्मोंका उदयहै सो उलटेही चलते हुए बड़े पुरुषोंके नामसे उन्मार्ग चलाते और परभवसे नहीं डरतेहैं।

१०८ " प्रवचन सारोद्धार " नामा ग्रंथके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ढूंढिये लोग कहतेहैं. सोभी प्रत्यक्ष झूंठ है. क्योंकि-सूत्रटीका सहित छपेहुए ' प्रवचन सारोद्धार ' सूत्रके पृष्ठ ११९-१२२ का पाठ देखो —

संपाइमरयरेणू पमज्जणट्ठा वयंति मुहपोत्तीं ॥ नासं मुहं च बंधइ, तीए वसहिं पमज्जंतो ॥ १ ॥ मुखवस्त्रिकायाः प्रयोजनमाह-'संपे' इत्यादि, संपातिमाजीवा मक्षिका-मशकादयस्तेषां रक्षणार्थं भाषमाणैर्मुखे मुखवस्त्रिका दीयते, तथा रजः-सचित्त पृथ्वीकायस्तत्प्रमार्जनार्थं, रेणुप्रमार्जनार्थं च मुखपोत्तिकां वदंति, प्रतिपादयंति तीर्थंकरादय, तथा वसतिं प्रमार्जयन् साधुर्नासां मुखं च बध्नाति आच्छादयति ' तया ' मुखपोत्तिकया यथा मुखादौ रेणु नं प्रविशतीति ॥ १ ॥

१०९ इस गाथाका भाषामें अर्थ " प्रकरण रत्नाकर " भाग ३ रे के पृष्ठ १४१ व में नीचे मुजब छपाहै:—

" अर्थ- सपातिम जीवो मक्षिका डास तथा मशकादि तेओना रक्षण अर्थ भाषण करता मुखनी उपर मुखवस्त्रिका देवायछे तथा [illegible] सचित्त [illegible]काय तेना प्रमार्जनने अर्थ तथा रेणुप्रमार्जनने मुखपत्तिका [illegible] प्रतिपादन करेलछे तथा वसति ते [illegible] प्रमार्जता [illegible] नासिका तथा मुख बांधे [illegible] [illegible] मुखादिकने विषे रेणु प्रवेश करे नहीं तम [illegible]

११० [illegible] मुहपत्तिका मक्षिकादि जीवोंकी [illegible] समय मुंह आगे रखनेका बतलायाहै तथा मुं[illegible] [illegible] उसकी प्रमार्जना करनेके लिये तीर्थंकर [illegible] मुहपत्ति [illegible] रखनेका कहाहै और उपाश्रय प्रमार्जन करतेसम

व्याख्याः— चत्वार्यङ्गुलानि वितस्तिश्चेति, एतच्चतुरस्रं मुखानं तकस्य प्रमाणं, अथवा इदं द्वितीयं प्रमाणं, यदुत मुखप्रमाणं कर्तव्यं मुहणंतयं, एतदुक्तं भवति-वसति प्रमार्जनादौ यथा मुखं प्रच्छाद्यते कृकाटिकापृष्ठतश्च यथा ग्रन्थिर्दातुं शक्यते तथा कर्तव्यम्। अत्र कोणद्वये गृहीत्वा यथा कृकाटिकायां ग्रन्थिर्दातुं शक्यते तथा कर्तव्यमिति एतद्द्वितीयं प्रमाणं, गणणाप्रमाणेन पुनरस्तदेकैकमेव मुखानन्तकं भवतीति ॥ ७११ ॥ इदानीं तत्प्रयोजनप्रतिपादनायाह—

११४ संपातिमरयरेणू, पमज्जणट्ठा वयंति मुहपत्तिं ॥ नासं मुहं च बंधइ, तीए वसहिं पमज्जंतो ॥ ७१२ ॥ व्याख्याः—संपातिमसत्त्वरक्षणार्थं जल्पद्भिर्मुखे दीयते, तथा रजः- सचित्त पृथिवीकायस्तत्प्रमार्जनार्थं मुखवस्त्रिका गृह्यते, तथा रेणुप्रमार्जनार्थं मुखवस्त्रिका ग्रहणं प्रतिपादयन्ति पूर्वर्षयः। तथा नासिकामुखं बध्नाति तया मुखवस्त्रिकया वसतिं प्रमार्जयन् येन न मुखादौ रजः प्रविशतीति ॥ ७१२ ॥ "

११५ देखिये ऊपरके पाठमें साधूको काउसग्ग करनेके लिये चार अंगुलके अंतरसे दोनों पैरोंसे खड़ेरहना, मुंहपत्ति जीवणे हाथ में ग्रहण करनी, रजोहरण डाबे हाथमें ग्रहण करना फिर शरीरको वोसराके नीचे लंबे हाथकरके किसी उपद्रवसे या देवतादिके उपसर्गसे भी चलायमान न होवे ऐसे काउसग्ग करनेका लिखाहै और एकवेंत चार अंगुल अथवा अपने २ मुंहप्रमाणे 'मुहणंतगस्स' मुखानंतकस्य (मुखवस्त्रिका) का प्रमाण बतलायाहै, सो यह मुंहपत्ति डांस-मच्छर-मक्खी आदि संपातिम त्रसजीवोंकी रक्षाकरनेके लिये बोलनेके समय मुंहपर रखनेका कहाहै, सो मुंहपत्ति हाथमें रखनेसे सचित्त पृथ्वीकाय रज उडकर मस्तकादि स्थानोंपर गिरे तो उसको प्रमार्जन करनेके काममें आतीहै और उपाश्रय प्रमार्जन करनेके समय भी नाकमें रजादि प्रवेश न जाने पावें इसलिये मुंहपत्ति त्रिकोंणी करके उसीसे नाक व मुंह दोनों बांधनेका कहाहै मगर ढूंढियोंकी तरह नाक खुला रखकर मुंहपर मैं दोरा डालकर हमेशा अकेला मुंहबंधा रखनेका नहीं लिखाहै, तो ढूंढियेलोग " ओघनिर्युक्ति " के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने कहतेहैं, सो प्रत्यक्ष झूठहै।

११६ देखिये ढूंढियोंकी अंध परंपराका नमूना- " मुहणंतगस्स

का अर्थ मुखवस्त्रिका होताहै तोभी ढूंढियेलोग उसको समझे विना दोरेका अर्थ करके 'ओघनिर्युक्तिकी चूर्णिमें दोरा डालकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै, ऐसा कहतेहैं, लिखतेहैं, मानतेहैं परन्तु कोई भी ढूंढिया 'ओघनिर्युक्ति' की चूर्णिकी प्रतिलेकर अपनी आंखोंसे नहीं देखना. सब अंध परंपरासे ही एक दूसरेकी देखादेखी चूर्णिका नाम पुकारे जातेहैं. उपरके पाठ चूर्णिके नहीं हैं, किंतु श्रीभद्रबाहुस्वामी की बनाई हुई खास निर्युक्तिकेहैं, तो भी व्यर्थही चूर्णिका नाम पुकारे जातेहैं। ढूंढियोंमें विवेकवाला सत्यकी परीक्षा करके झूंठको त्यागकर सत्यग्रहण करनेवाला ऐसा कोन आत्मार्थीहै, सो शास्त्रोंके पाठोंको पूर्वापरके संबंध सहित देखकर सत्यबातका निर्णय करे व झूंठसे बचे. आजकल ढूंढियोंमें कई साधू व्याकरणादि पढे लिखे विद्वान् पंडित प्रसिद्धवक्ता सत्योपदेशक वगैरह नाम धारण करनेवाले बहुत कहे जातेहैं, परन्तु सबे अंधरूढी में फंस गयेहैं. अगर सत्यको प्रकाश करने वाला ऐसा कोई आत्मार्थी होवे तो हमेशा मुंह बांधनेका अंध रिवाज कभी न चलने पावे. प्रश्नव्याकरण, प्रवचनसारोद्धार, ओघनिर्युक्ति, और महानिशीथ वगैरह बहुत शास्त्रोंमें "मुहपंतगेण" "मुहणंतगस्स" ऐसे पाठ आतेहैं वहां सब जगहपर मुखवस्त्रिका ऐसा अर्थ होताहै, जिसपर भी ढूंढिये मुखका दोरा ऐसा खोटा अर्थ अपनी अज्ञानतासे करतेहैं सो सर्वथा झूंठहै. इसलिये मुखका दोरा ऐसे प्रत्यक्ष झूंठे कथनका किसीकोभी विश्वास करना योग्य नहीहै. इस विषयमें पहिलेभी 'महानिशीथ' के पाठकी समीक्षामें इस ग्रंथके छपेहुए पृष्ट ३९ वें की ६३ वीं कलममें लिख आयेहैं, वहांसे समझ लेना।

---

११७ ढूंढियेलोग "यतिदिनचर्या" और "यतिदिनकृत्य" इन दोनों ग्रंथोंके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहरातेहैं सोभी प्रत्यक्ष झूंठहै, देखिये "यतिदिनचर्या" का पाठ ऐसाहै:—

"मुहपत्ती रयहरणं, दुन्निनिसिज्जा उ चोल कप्पतिगं ॥ संथारुत्तरपट्टो, दसपेहाणुग्गए सूरे ॥ २६ ॥ बत्तीसंगुलदीहं, रयहरणं पुत्तियाय अदेसं ॥ जावीए रक्खणट्ठा, लिंगट्ठा चेव एयतु । २७ ॥ व्याख्याः— संप्रति देवसिकप्रतिलेखनाविधिः कथमित्याशङ्क्याह — 'मुंहपत्ति' तत्र क्षमाश्रमण द्वयपूर्वमादौ मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनीया १ ततनु रजोहरण २, पश्चाद्‌द्वौ

कपरकी एक ऊनकी दूसरी सूतकी ऐसी दो निषिद्या, चोलपट्ट, तीनच-
द्दर, संथारीया और उत्तरपट्टा ऐसी दश वस्तुओंकी अनुक्रमसे पडिले-
हणकरे, फिर पात्रे पडिलेहणाके अवसरमें गुच्छे, पडले, पात्रकेशरी-
का, पात्रबंध, पात्रे, रजस्त्राण व पात्रस्थापन ऐसे ७ प्रकारके पात्रोंके उप-
करणोंकी पडिलेहणा करे। और चौवीस अंगुल दंडी तो आठ अंगुल-
दशी (फली) अथवा वीस अंगुल दंडी तो १२ अंगुल फली, ऐसे जीव-
रक्षाके व प्रमार्जन करनेके लिये ३२ अंगुल लंबा रजोहरण रखनेका ब-
तलायाहै और एकवेंत उपर चार अंगुल अथवा अपने अपने मुखप्रमाणे
मुंहपत्ति होतीहै यह मुंहपत्ति बोलनेके समय मुंहआगे रखनेमें आतीहै
इससे बोलते समय उडतेहुए सुक्ष्मजीव मुखमें न गिरने पावें तथा मु-
खादिपर रजादि गिरेतो उसी मुंहपत्तिसे मुंहकी प्रमार्जना करनेमें आती-
है अथवा उपाश्रय प्रमार्जन करते समय नाक और मुख दोनों बांधनेमें
आते हैं।

१२० देखिये उपरके दोनों पाठोंमें बोलनेके समय मुंहपत्तिको मुं-
हआगे रखनेका बतलायाहै परंतु हमेशा बंधी रखनेका किसी जगहभी
नहीं लिखा और ३२ अंगुल प्रमाणे लंबा रजोहरण रखनेका बतलायाहै
उस मुजब ढूंढिये साधू रखते नहीं इससे विपरीत होकर बिना प्रमाण-
का बहुत लंबा रजोहरण रखतेहैं. सोभी शास्त्र विरुद्धहै और गुच्छे, पड-
ले वगैरह पात्रोंके उपकरण रखनेका कहाहै सोभी रखतेनहीं तथा उप-
रके दोनों ग्रंथोंमें जिनप्रतिमाके दर्शन करनेका लिखाहै, उसकोभी मान-
ते नहीं और कारण वश थोडी देरके लिये नाक व मुंह दोनों बांधनेका
लिखाहै, उस मुजबभी बांधते नहीं तिसपरभी दोनों ग्रंथकार महाराजों
के विरुद्ध होकर 'यतिदिनचर्या' व "आचारदिनकर" के नामसे हमे-
शा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ढूंढिये [illegible] प्रत्यक्ष [illegible] मायाचारीसे
झूठ बोलकर भोलेजीवोंको उन्मार्गमें [illegible] और [illegible] बारके आगे
होकर मन हारते है. सो पाठकगण [illegible] विचार करेंगे।

१२१ "आचारदिनकर" में हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै
ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठ है क्योंकि "आचारदिनकर" में
तो खुलासा पूर्वक मुंहपत्ति हाथमें रखनेका लिखाहै इसलिये छपेहुए
"आचारदिनकर" के पृष्ठ ७७ वे का पाठ यहहै.—

" शिष्यः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति ' भयवं मझ्झं पव्वावेह वेषं समप्पेह ' ततो गुरुः पूर्वाभिमुख-उत्तराभिमुखाय शिष्याय सुगृहीतं कुरुमिति भणन् वेषमर्पयति वेषश्च चोलपट्ट—पट्टि—कंबल—रजोहरण मुखवस्त्रिका रूपः शिष्यश्च इच्छंति भणन् दक्षिणकर्णसमीपलग्नरजोहरणदशः करद्वयेन वेषं गृह्णाति, तत ऐशानीं दिशं गत्वा पूर्वोत्तराभिमुखः शिष्यो वेषं परिदधाति, धर्मध्वजदशाः दक्षिण स्कंधलग्नदशां कुर्वन् मुखवस्त्रिकागर्भितांगुलिगर्भो गुरुसमीपमागच्छति" इत्यादि।

१२२ देखिये ऊपरके पाठमें दीक्षा लेनेके समय शिष्य क्षमाश्रमण पूर्वक कहे कि हे भगवन् ! मेरेको दीक्षा दो साधूपनेका वेश देवो तब गुरु पूर्व-उत्तरतर्फ मुखकरके शिष्यकोभी पूर्व—उत्तरतर्फ खडा करके चोलपट्ट, चद्दर, कंबल, रजोहरण, मुंहपत्ति रूप साधूपनेका वेश देवे. तब शिष्य ' इच्छं ' कहता हुआ, जीमणे कानमें रजोहरणकी दशी (फली) लगे वैसे दोनों हाथोंसे वेश ग्रहण करके ईशान कोनेमें जाकर वेश धारण करे और जीमणे स्कंधको दशी लगे वैसे रजोहरण तथा दोनों हाथोंकी अंगुलियोंमें मुंहपत्तिको ग्रहण करके गुरुके पास आवे. इत्यादि दीक्षा लेनेकी विधिमें मुंहपत्ति हाथमें रखनेका कहाहै, परंतु मुंहपर बांधकर हमेशाही बंधी रखनेका नहीं लिखा

१२३ फिरभी दशवै—पृष्ठ १०४ वें में साधुके अहोरात्रिकी चर्याके अधिकारमें साधुके उपकरणोंकी संख्या व प्रमाण तथा कर्तव्य बतलायाहै वहांपर " संपाइमरयरेणु पमज्जणट्ठावयंति मुहपोत्तिं ॥ नासं मुहं च बंधइ, तीए वसहिं पमज्जंतो ॥ ७ ॥ ' इसगाथामें साधुको मुंहपत्ति हाथमें रखना कहा सो बोलते समय मुंहआगे रखनेसे जीवोंकी रक्षा होतीहै व मुखादिपर सचित्तरज गिरे तो उसकी प्रमार्जना मुंहपत्तिसे की जातीहै तथा वसति प्रमार्जनसमय कारणवश थोडीदेरके लिये नाक मुंह दोनो बांधनेमें आतेहैं और पृष्ठ २७५में तीसरे वांदणा आवश्यककी व्याख्यामें " शिष्य श्राद्धो वा विधिवन्मुखवस्त्रिका स्थाप्य प्रतिलिख्य करद्वयगृहीत मुखवस्त्रिका-रजोहरणः " इसपाठमें साधू अथवा श्रावक गुरु वंदना करनेके लिये विधिसहित मुंहपत्तिकी व मुंहपत्तिसे अपना अंगकी पडिलेहणा करके मुहपत्तिको तथा रजोहरणको (साधुके रजोहरण-श्रावकके चरवलो) दोनोहाथोंमें ग्रहण करके विधि-पूर्वक

रखने संबंधी पाठ ऊपरमें बतलाये गयेहैं, इसलिये आचारदिनकर आदि शास्त्रोंके नामसे हमेशा मुंहबंधा रखने संबंधी ढूंढिये व्यर्थही मायावृत्तीसे प्रत्यक्ष झूंठे प्रलाप करतेहैं, सो किसीभी आत्मार्थी भव्यजीवोंको अंगीकार करने योग्य नहीं हैं।

---

१२५ "विचाररत्नाकर" ग्रंथके नामसे ढूंढियेलोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहराते हैं सोभी प्रत्यक्ष झूंठहै, क्योंकि "विचाररत्नाकर" के लिखे हुए पृष्ठ १५४ वें में श्रावकोंको अहोरात्रि पौषध करने की विधि लिखीहै, उसमें पौषध करने वाला अपने गृह व्योपारको छोड़कर पौषध शालामें या गुरुके पासमें आकर उच्चारादिके लिये भूमिको पडिलेहण करे बाद स्थापनाचार्यको स्थापनाकरके "इरिअं पडिक्कमिअ खमासमणं वंदिय पोसह मुंहपत्ति पडिलेहीय ततो खमासमणं दाउं भणाइ इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् पोसहं संदिसावेमि" इत्यादि पाठमें पौषध लेनेके लिये इरियावही करके खमासमणसे वंदनाकर पौषध लेनेवास्ते मुंहपत्तिकी पडिलेहणाकरे फिर खमासमण देव और इच्छाकारेण इत्यादि वाक्यसे पोसह लेनेकी गुरुकी आज्ञालेकर पोसहका पच्चक्खाणकरे, ऐसे लिखाहै सो अभी जिस तरहसे श्रावकलोग पोसह करनेके लिये मुंहपत्ति पडिलेहणा कर हाथमें रखतेहैं उसी तरह हाथमें रखनेका ग्रंथकारने लिखाहै, परंतु ढूंढियोंकी तरह बांधनेका नहीं लिखा और इसीग्रंथमें पृष्ठ ९७ वें में भी प्रतिक्रमण करनेके अधिकारमें रजोहरण तथा मुंहपत्ति रखनेका कहाहै परन्तु इसग्रंथमें बांधनेका तो किसी जगहपर नहींलिखा तोभी ढूंढियेलोग अपने मिथ्यात्वके उदयसे झूंठा झूंठाही ग्रंथोंका नाम लेकर देखो 'विचाररत्नाकर' में मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै. ऐसी मायाचारीसे भोलेजीवोंको मिथ्यात्वमें डालतेहैं, परन्तु ऐसे उत्सूत्रप्ररूपणाके अघोर पापसे परभवमें संसार परिभ्रमणका भयनहीं रखतेहैं. इससे यह लोग जनसमाजमें सत्य उपदेशसे उपकार करने वालेनहींहैं, किंतु खोटा उपदेश देकर जिनाज्ञाकी विराधना करने वाले होनेसे तत्त्वदृष्टिसे जैनसमाजके भावि शत्रुहै।

१२६ ढूंढिया - 'विचाररत्नाकर' ग्रंथमेंतो ज्ञाताजीसूत्र आदिमूल आगम प्रमाणोंके साथ जिनप्रतिमाको माननेका बहुत जगह खुलासा पूर्वक लिखाहै और जिनमंदिर जिनप्रतिमामें हिंसाकहकर निषेध करने-

ाने जिनप्रतिमाके शत्रुओंकी कुयुक्तियोंका समाधान करके जिनमन्दिर
जिनप्रतिमामें धर्मभावना होनेसे एकंतलाभ साबित करके बतलायाहै. उ-
सको तो मानने नहीं और मुंहपत्ति बंधी रखनेका नहीलिखा तोभी भोले-
लोगोंको उन्मार्गमें डालनेके लिये इसग्रंथका नाम लेकर हमेशा मुंहबांध-
नेका प्रत्यक्ष मायाचारीसे झूंठाही प्रलाप करतेहै, यहीगाढ़मिथ्यात्वहै।

---

१२७ श्रीचिदानंदजी महाराजने अपने बनाये "स्याद्वादानुभवर-
त्नाकर" नामाग्रंथमें हमेशा मुंहपत्ति बंधीहुई रखनेका लिखाहै, ऐसा ढूं-
ढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै देखो छपेहुए "स्याद्वादानुभवरत्नाकर"
नामाग्रंथके पृष्ठ १५४ और १५५में ऐसा लेखहैः—

"अब देखो जो जन कहतेहैं कि कानमें मुंहपत्ति गेरके व्याख्यान
नहीं देनो उनका कहना भी ठीकनहीं, क्योंकि जो शुद्ध आचार्योंने पर-
म्परासे कानमें गेरकर व्याख्यान करना कुछ समझ करही चलायाहै. जो
कहोकि अब ढूंढियोंको मुंहपत्ति बांधना क्यों निषेध करते हो ? तो हम
कहतेहैं कि ढूंढिये लोगतो अष्ट प्रहर मुंहपत्ति बांधतेहैं इसलिये हम नि-
षेध करतेहैं. तो भला तुम्हारा कानमें गेरना किसी सूत्रमेंहै या कोरी परं-
पराको मानतेहो. तो हम कहतेहैं कि सूत्रतो सूचिमात्र होताहै और अर्थ
शुद्ध आचार्योंकी प्रवृत्ति मार्गसे मालूम होताहै सो प्रवृत्ति मार्गमें परंपरा
से मुंहपत्ति कानमें डालकर व्याख्यान देतेहैं और जो तुम कहो कि हम
को सूत्रमें बतावो तो हम कहतेहैं कि शास्त्रोंमें ऐसा लिखाहै कि जिस
समयमें साधू ठल्ले जाय उस समय नासिकाको ढकके गुद्दीपर बांधे और
जिस जगह वस्ति, अर्थात् उपाश्रय वा धर्मशालामें प्रमार्जना करे, अर्थात्
दण्डासनसें काजानिकाले उस समय गुद्दीपर बांधे इन दो बातोंके वास्ते
तो शास्त्रोंमें लिखा हुवाहै. तो इस जगहभी गीतार्थ आचार्योंने कारण
लाभ लाभको जान करके व्याख्यानके समय मुंहपत्ति कानमें घालना च-
लाया होगा सो चलताहै, जो कहो कि मुंहपत्तिकी चर्चा में श्री 'केशी-
कुमार' देशना देतेथे उस समयमें जो परदेशी राजा गयाथा उस सम-
यमें परदेशी राजाने अनेक तरहके निन्दारूप विकल्प अपने चित्तमें उठाये
परन्तु ऐसा विकल्प न उठा कि यह देखो मुंहबांधे देशना देताहै, इसलि-
ये श्रीकेशीकुमारजी, श्रीगौतमस्वामीजी, श्रीसुधर्मस्वामीजी आदिक

१४ पूर्वधारी चारज्ञानके धारियोंको कारण कार्य लाभ मालूम न हुवा और यह पंचम कालके तुच्छबुद्धिवाले आचार्योंने लाभ कारण जान कर के कानमें मुंहपत्ति घालके व्याख्यान वांचना चलाया सो ठीक नहीं है तो हम कहतेहैं कि जैनमतके रहस्यके अभिप्राय विनाजाने श्रीकेशीकुमार, जो आदिआचार्योंके नाम लेकर कानमें मुंहपत्ति घालना निषेध कियाहै, जो तुम कहो कि अभिप्राय क्याहै, तो हमकहतेहैं कि अभिप्राय यहहै कि श्रीकेशीकुमार आदि आचार्य महाराजतो १४ पूर्व और चारज्ञानके धारी थे सोभी वह १४ पूर्व कंठस्थथे कुछ पुस्तक पन्नालेकर व्याख्यान थोड़ाही देतेथे, इसलिये जब वह देशना देतेथे उस वक्त डांये हाथसे तो मुखवस्त्र से जैणा और जीमणे हाथसे देशना समझातेथे अथारके कालमें जो कोई बिना पुस्तकके देशनादे और ऐसा करे तो कानमें घालनेकी कुछ जरूरत नहीं परन्तु पुस्तक हाथमें लेकरके जो देशना देनेवालेहैं उनको अवश्यमेव कानमें डालना होगा, क्योंकि जब एक हाथमें पुस्तक और दूसरे हाथमें मुखकी जैणा रक्खेगा तो देशना शून्य हो जायगी और जो देशना शून्य नहीं होगी तो उघाड़े मुख बोलना होगा, जो तुम कहो कि देशनाभी शून्य नहीं होने देंगे और उघाड़े मुखभी नहीं बोलेंगे तो हम कहतेहैं कि सिद्धान्तसे विरुद्ध हो जायगा यदुक्तं " एग समय नत्थी दो उपयोग " एक समयमें दो काम नहीं होते, इसवास्ते कानमें मुंहपत्ति घालकर व्याख्यान देना चाहिये "

१२८ देखिये ऊपर के लेख मे श्री चिदानंदजी महाराज ढूंढियों को हमेशा मुंहपत्ति बांधने का खुलासा पूर्वक निषेध करते हैं सिर्फ हाथ में पुस्तक पन्ने लेकर व्याख्यान बांचें तब तक थोड़ी देर के लिये नाक मुंह दोनों बांधने का लिखा है, जिस में भी पुस्तक पन्ने हाथ में रखे बिना ऐसे ही जबान से व्याख्यान बांचें तो उस के भी मुंहपत्ति बांधने की कोई जरूरत नहीं और ढूंढियों के हमेशा मुंहपत्ति बांधने का निषेध करने के लिये ढूंढियों की कुयुक्तियों के समाधान के साथ अनेक आगम प्रमाणों सहित विस्तार पूर्वक " कुमतोच्छेदन भास्करः" याने 'लिंग निर्णयः' नामा ग्रंथ इन्हीं महाराज ने बनाया है सो छपा हुआ मालवा आदि देशों में प्रसिद्ध ही है, ऐसे खुलासा लेख मौजूद होने पर भी ढूंढिये लोग जान बूझकर कपटता से प्रत्यक्ष झूठ बोलकर इन महाराजके नामसे 'स्याद्वाद अनुभव रत्नाकर नाम ग्रंथके नामसे इसे

१३१ " नवतत्त्व " की भाषाटीकामें मुंहपत्ति बांधनेका लिखा है, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै, देखो- छपेहुए 'नवतत्व' के पृष्ठ ७८ वें में संवरतत्त्व संबंधी ऐसी गाथाहै "इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समईसुय। मणगुत्ति वयगुत्ति कायागुत्ति तहेवय ॥२६॥ इसगाथाके अर्थमें पांचसमिति और तीनगुप्तिके विवेचनमें वचन गुप्तिके अधिकारमें- " वाचना प्रमुखकार्य्यकरती वेलाए मुखे मुंहपत्ति देइने जे जयणाथी बोलवुं ते बीजो भेद जाणवो " ऐसा पृष्ठ ७८में खुलासा लिखाहै. इसमें मुंहपत्ति हाथमें रखकर मुंहआगे रखनेका लिखाहै, परंतु मुंहपर बंधी रखनेका नहीं लिखा. तोभी ढूंढिये लोग मुंहपर बंधी रखनेका लिखाहै, ऐसा कहतेहैं सो प्रत्यक्ष महामिथ्याहै. ऐसेमिथ्या लेख लिखकर जिनाज्ञा विरुद्ध होकर भोलेजीवों को अपने झूंठे पक्षके फंदेमें फँसातेहैं सो कितना संसार बढाते होंगे. ऐसे मिथ्याभाषी उनमार्गको पुष्टकरने वालों को साधु कहनेसे या माननेसेही मिथ्यात्व लगताहै. ।

१३२. श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत "श्रीआवश्यक" सूत्रकी बृहद्वृत्तिके नामसे मुंहपत्ति हमेशा बांधनेका ठहराना यहभी ढूंढियोंका प्रत्यक्ष झूंठहै, क्योंकि "श्रीआवश्यकसूत्र" भद्रबाहुस्वामि कृतनिर्युक्ति सहित तथा श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत बृहद्वृत्तिसहित छपा है उसके पृष्ठ ७९७ ७९८ वें में काउसग्ग करनेकी विधि बाबत ऐसा पाठहै:—

" चउरंगुलं मुहपत्ती उज्जूए, डब्बहत्थे रयहरणं ॥ वोसट्ठचत्तदेहो, काउसग्गं करिज्जाहि ॥ १५४५ ॥ व्याख्या 'चउरंगुले'त्ति, चत्वारि अंगुलाणि पायाणं अंतरं करेयव्वं, मुहपोत्ति 'उज्जुए'त्ति दाहिण हत्थेण मुहपोत्तिया घेत्तव्वा, डब्बहत्थे रयहरणं कायव्वं एतेण विहिणा वोसट्ठचत्तदेहो त्ति पूर्ववत् काउस्सग्गं करिज्जाहित्ति गाथार्थः ॥ १५४५ ॥

१३३. देखिये ऊपरके पाठमें साधूको काउसग्ग करनेकी विधि बतलाईहै उसमें खडेखडे काउसग्ग करे तब दोनो पैरोंके बीचमें चारअंगुल प्रमाणे अंतर (छेटी) रखने, मुंहपत्तिको जीवणे हाथमें रखे, और रजोहरणको डावे हाथमें रखकर शरीरको (बोलने चालनेरूप क्रियाको) वोसरा (त्याग) कर नीचे लंबी भुजा प्रसारकर एकाग्रचित्त से काउसग्ग करनेका बतलायाहै इसपाठमे मुंहपर मुहपत्ति हमेशा बंधीरखनेका नहीं बतलाया किन्तु खुलासा पूर्वक हाथमें रखनेका बतलायाहै,

जिसपरभी ढूंढिये लोग प्रत्यक्ष झूंठ बोलकर श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत आवश्यक बृहद्वृत्तिके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहरातेहैं, सो भोलेजीवोंको उन्मार्गमें डालनेके लिये मायाचारीकी ठगबाजी करके व्यर्थही अपना संसार बढ़ातेहैं ।

१३४. " पिंडनिर्युक्ति "की वृत्तिमें हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै क्योंकि 'पिंडनिर्युक्ति' वृत्तिसहित छपेहुए पृष्ट १३वें में "पायस्सपडोयारो दुनिसिज्ज तिपट्ट पोति रयहरणं ॥ एएउ न वीसामे, जयणा संकामणा धुवणं" ॥ २८॥ इसगाथामें कार्यवश रजोहरण के उपरकी ऊनकी व सूतकी दो निषिया तथा चद्दरचोलपट्ट मुंहपत्ति रजोहरण आदि उपकरण यत्नापूर्वक उपयोगसे धोनेकी विधि बतलाईहै, मगर मुंहपत्ति मुंहपर बांधनेका नहीं लिखा इसलिये पिंडनिर्युक्ति के नामसे बांधनेका कहकर ढूंढियेलोग मायाचारीसे व्यर्थही मिथ्यात्व बढ़ाते हैं ।

१३५. 'दीक्षाकुमारी' नामा पुस्तकके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहरानेवाले ढूंढियेलोग मायाचारीसे प्रत्यक्ष झूंठ बोलतेहैं क्योंकि दीक्षाकुमारीमें किसी जगह हमेशा मुंहबंधा रखनेका नहीं लिखा, यह दीक्षाकुमारी पुस्तक 'दशवैकालिक'सूत्रका साररूप है, इसलिये जब दशवैकालिकसूत्रमें किसी जगह कहींभी हमेशा मुंहबंधा रखने का नहीं लिखा तो फिर सूत्रके साररूप दीक्षाकुमारी में मुंहबंधा रखने की बात कहां से आवे. जैसे-माता-पिताके बिनाही लड़के-लड़कियोंका जन्म होनेकी अयुक्तबात कोईबुद्धिमान समझदार नहीं मान सकता. वैसेही हमेशा मुंहबांधनेका सूत्रमें न होनेपरभी सूत्रके साररूप इस पुस्तकमें हमेशा मुंहबांधनेका ठहरानेकी बातभी ढूंढियोंकी सर्वथा अयुक्त होनेसे कभी सत्य नहीं ठहर सकती और दशवैकालिक सूत्रके पांचवें अध्ययनप्रथम उद्देशकी "अणुप्रविस्तु मेहावी, पडिच्छन्नंमि संवुडे ॥ हत्थगं संपमज्जिता, तत्थ भुंजिज्ज संजये ॥८३॥" इसगाथामें साधू गौचरी गयाहोवे आहार करना होवे, तब बुद्धिमान साधू गृहस्थोंकी आज्ञा लेकर एकांत जगहमें जाकर इरियावही करके 'हत्थगं'-मुखवस्त्रिकारूपं ... मुंहपत्ति हाथमें होतीहै उससे सबने मुंह हाथको ... रकरके ... उपयोगसे आहारकरे. ऐसी सूत्रकारकी आज्ञाहै. इस ... करही

क्षाकुमारी,' के छपेहुए पृष्ट ११२ के अंतमें व ११३ की आदिमें ऐसा लिखाहै "हे मुनि आहार लाव्या बाद पछी मुनिओ केवी रीते भोजन करवुं जोईओ? थे भोजन विधि तमारे अवश्य जाणवा योग्यछे मुनिओ एकांत स्थलमां भोजन करवा बेसवुं. जो गृहस्थना स्थान आवा आहार लेवानो योग्य होयतो मुनिये गृहस्थनी आज्ञा लेई इरियावही पडिक्कमी हाथमां मुंहपत्ति लेई हाथ-पग विगेरे अवयवोने सारीरीते पुजी तेज स्थले भोजन करवुं." इत्यादि इसलेख में सूत्रकारके आशय मुजब हाथमें मुंहपत्ति रखने का लिखाहै आहार करने के पहिलेभी मुंहपति हाथमें रहतीहै और पीछेभी हाथमें रहतीहै मगर किसी जगह बांधनेका नहीं लिखा तोभी मायाचारीसे भोलेलोगों को भ्रममें डालने केलिये बांधनेका अपनी तरफसे बतलाकर उनमार्ग को पुष्टकरतेहैं परंतु ऐसे माया मिथ्याके पापसे नहीं डरतेहैं, इसलिये ऐसे ढुंढियोंके दिलमें शुद्ध धर्मबुद्धि नहींहै, किन्तु पूजा मानताके लिये लोगोंको ठगनेमेंही अपनी बड़ाई समझतेहैं. नहींतो ऐसीमायाचारी कभी न करते. आत्मार्थियोंको ऐसेझूठे पाखंडका त्याग करनाही हितकारीहै दीक्षाकुमारी के नामसे हमेशा मुंहबांधने का उद्यम करतेहैं परंतु दीक्षाकुमारी में ढुंढियोंको जैनसाधू मानेही नहींहैं और पुस्तकको शुरुआतमेंही शांतिनाथ भगवान्‌की प्रतिमादेखनेसे सय्यमभवसूरिजी को वैराग्य प्राप्ति व दीक्षा लेना तथा 'दशवैकालिक' सूत्रकी रचना करना वगैरह बातें खुलासा लिखीहैं, उनबातों को मानतेनहीं और सूत्रकारके आशय विरुद्ध होकर हमेशा मुंहबांधनेका अपना पाखंड जमाने के लिये माया चारी फैलाना, यही दृढमिथ्यात्वी के लक्षणहैं।

१३६ ढुंढियेलोग 'भुवनभानुकेवलि'के रासके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधना ठहराते हैं, सोभी प्रत्यक्ष झूठहै. देखिये. भुवनभानुकेवलि के छपेहुए चरित्रमें पृष्ट ९०-९१में ऐसा पाठहैः—

" पितृगृहे वस्त्राच्छादनादिकं निश्चिन्तमवाप्तेति रोहिणी, किंच मातृ पितृप्रसादेन न कोऽपि कारयति गृहे, ततो देवगृहे गता न कांचिद् वार्ताप्रियां पश्यत्युपविशति गत्वा तत्समीपे, ततो देववंदनं विरहय्याभिदधाति हले! मयैतत् श्रुतम्, एतच्चाद्य जातं त्वद्गृहे, ... प्र.६ नैव कनाप्यसंगतं कथितं ततो रोहिणी प्राह अरे असत्यमिदं किं मामपि त्वमपलपसि ? सा प्राह कथमहमलीकेत्यादि विकत्थना

पण मुख उपरेरे, तहनु माखु त्यांहि ॥गु० ॥ ॥ कपट न आणुं रे, अधरा परे एक रेप ॥गु ॥ मुह रखती सगा थापनीरे वाते व विशेष ॥गु० ॥६॥ को दसो तूनो कोईरे, पण अमे अमारी टेव मरणांतें मुक गहिरे, जो दुहवाए देव ॥गु० ॥७॥ सदुपदेशा नवि सद्दहे अयोग्य थापडी एह ॥गु०॥ अजाण जाणी तव अज्ञाए रे, उवेखी तेह ॥गु० ॥८॥ शंका तजी सा एकदारे, श्रुत सुणतां गुरुपास ॥गु०॥ वदन आछादिनेरे. मुसके मुकती हास्य ॥गु०॥ ॥९॥ जप जप णे जू जू आ रे, अनेक वदे अवदात ॥गु०॥ लख लख करती ते करे वखाण माँहे व्याघात ॥गु० ॥१०॥ माती महिषी तलावनुं रे, डोहोले जोर ॥गु० तीम वखाण डोल्युं तीणेरे, सभा जनसु करी ॥गु० ॥११॥सार्थवाहनी सुता लहीरे, कोइ न धारे कांइ ॥गु० तीम रमणी थाइनेरे, लवती लाजे नांहि ॥गु० ॥१२॥ जो गुरुवादिक वारे दारे, तो थाडी कहे तनु मीड ॥गु०॥ भगवंत हूं वगनी परे, बेसी मुख मीड ॥गु० ॥१३॥ पण पडुत्तर पुछ्यातणोरे, जोजीम तीम न देव ॥गु०॥ तोलोक सहु मुंगी कहेरे, ते वींके कांई बोलाय ॥गु० ॥१४॥ अयो जाणीने सर्वथारे, गुरें पण मेहली उवेख ॥गु०॥ तव निःशंक मुखे मोक रें, विकथा करे विशेष ॥गु० ॥१५॥ छासठमी ढाले जुओरे, वातें वि काज ॥गु०॥ आखर उदयरतन कहेरे, वातें विगडे लाज ॥गु० ॥१६॥

१३१. देखो उपरके चरित्रके पाठमें तथा प्राचीन भाषाके प और रासके पाठमें यह बात खुलासा पूर्वक लिखीहै कि- रोहिणीको दा-विकथा करनेका स्वभावथा सो जिनमंदिरमें देवदर्शन करनेको तो वहांभी अनेक प्रकारकी विकथा करतीहुई लड़ाई खडीकरदेती, श्रावकने समझाया तोभी मानानहीं वैसेही साध्वीकेपास उपाश्रयमें वहांभी स्वाध्याय करना छोडकर साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका निंदा करतीथी, तब साध्वी रोहिणीको समझातीथी कि-इसभव-पर दुःखदने वाली यह कर्मकथा छोडकर आत्माहितकारी अमृततुल्य स्वाध्यायकर. ऐसा साध्वीका उपदेशभी नहीं मानतीथी और मुहवड सामने जवाब देने लगतीथी कि व्रतधारियोंकोभी यह कथा नहीं छु और दूसरेभी यहां मुख बांधकर कोई बैठे नहींहैं, मैं तो जैसा देखुं कहतीहूं, इत्यादि उलटा जवाब देनेसे साध्वीने रोहिणीका उपदेश

के लिये कभी नहीं लिखसका. तैसेही-उदयरत्नजी और लब्धिविजयजी यह दोनों महाराज हाथमें मुंहपत्ति रखनेवाले थे इसलिये सर्वथा शिास्त्र विरूद्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणारूप अनंत संसार बढानेवाला मार्ग मिथ्यात्व हेतुभूत हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखनेका कथन अपने बनाये "भुवनभानु केवलि के रास" में और "हरिबलमच्छीके रास" में कभी नहीं लिख सके इसलिये इनदोनों महाराजोंके नामसे दोनोंरासोंके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ढूंढियेलोग आग्रह करतेहैं सो सर्वथा झूठ होनेसे ढूंढियोंकी बडी अज्ञानताहै।

---

१४६. "शतपदी" में हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै. देखो 'शतपदी' भाषांतरके छापेहुए पृष्ठ ८९ में ऐसा लिखाहै:—

"रजोहरण, मोमती तथा पोछणुं पोतापी बहु छेटे राखवां नहीं इसलियेमें रजोहरणकी तरह मुंहपत्तिभी अपनेसे दूर न रखनेका कहा जैसे-रजोहरण नजदीक होवे तो पूजने व प्रमार्जने वगैरह जीवदयाके लिये जल्दी उपयोगमें आसके, वैसेही मुंहपत्तिभी नजदीक हो तो बोलने समय मुंहआगे रखनेमें आवे तो मुंहमें मक्खी, मच्छर, सचित्तरजादि व धूल वगैरह न गिरने पावे तथा छींक करते समय नाक-मुंहकी रक्षा करनेमें आवे इसलिये हमेशा पासमें रखना चाहिये ऐसा शतपदी का कहनाहै शतपदीके करने वाले भी हाथमें मुंहपत्ति रखने वालेथे और शतपदीमें किसी जगहभी हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका नहीं लिखा, इसलिये शतपदीके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराने वाले ढूंढिये प्रत्यक्ष झूठ बोलकर भोलेजीवोंको उन्मार्गमें डालतेहैं।

---

१४७. श्रीमाकंडपुराणके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ढूंढिये कहतेहैं सो भी प्रत्यक्ष मिथ्याहै क्योंकि देखो— श्रीमार्कंडपुराण के ३० वें अध्याय में ऐसा पाठहै [illegible] मुखनिमुखे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३३॥ इस श्लोकमें मुं[illegible] [illegible] मुंहपत्ति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] मुंहपत्ति हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका नहीं लिखा [illegible] ढूंढिये बंधी रखनेका ठहरातेहैं, सो उन्होंकी बड़ी अज्ञानताहै [illegible]।

ला व धर्मलाभ ऐसा कहता हुआ नमस्कार करके हरिके सामने खड़ाहुआ ॥३॥ और हाथ में पात्र मुंहपरवस्त्र (मुंहपत्ति) व मलिन वस्त्र धारन करनेवाले तथा थोड़ा बोलने वाले ॥२५॥ इन दोनो श्लोकों में ऐसा मुंहपर वस्त्र (मुंहपत्ति) बांधनेका नहीं लिखा, किंतु हाथमें रखनेका लिखा है और जब बोलने का काम पड़े तब मुंहपर धारण करना; पास रखना बतलाया है इसलिये ढूंढिये हमेशा बांधने का ठहराते हैं सो प्रत्यक्षही झूठ है।

१५०. ढूंढिये लोग अपनी पुस्तकों में ऊपर के तीसरे श्लोक को लिखकर "मुंहपत्ति करके ढकने हुये सदा मुख को तथा किसी कारन मुंहपत्ति को अलग करे तो हाथ मुंह आगे करले परंतु उघाड़े मुंह न रहें" ऐसा मन कल्पित अर्थ करके हमेशा मुंह बंधा रखने का ठहराते हैं, इस को देख कर अन्य दर्शनीय मध्यस्थ विद्वान् लोक ढूंढियों की अज्ञानता की हांसी करते हैं, क्योंकि जब २ बोलने का काम पड़े तब २ हमेशा मुंहपत्ति से मुंहढक के बोलना यह तो हम भी मानते हैं, परंतु बिना बोले भी हमेशा मुंह बंध रखना यही ढूंढियों की अन समझ है।

१५१. पुराणों की गप्प और ढूंढियों का मिथ्या अभिमान का नमूना देखिये- ढूंढिये कहते हैं कि-शिवपुराण, श्रीमाल पुराणादिकों बनाये अनुमान पांच हजार (५०००) वर्ष हो गये हैं. इन पुराणों के कथन मुजब ही हम लोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखते हैं यह भी ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूठ है, क्योंकि यह पुराण अनुमान पांच सौ वर्ष के बने हुये मालूम होते हैं. देखिये—श्रीमाल पुराण के ७२ वें अध्याय में गौरि गौतम को कहती है कि—" तपो गच्छस्व भो पुत्र, वीतराग स्मरन्मुदा। नग्नरूपं च ते लोका। वदिष्यन्ति सदा सुतः॥ २५॥" अर्थ- हे पुत्र तू तपस्या करने को वन में जा, वीतराग का स्मरण कर तेरे को तपस्या कर ना देखकर लोग तेरा नग्न कहने लगेंगे। इसी रीति शिवपुराण, की ज्ञान संहिता के २१ वें अध्याय के २८ वें श्लोक में "आदि का सुभाग नाम है, पूज्य होने से तुम पूज्य भी कहला वोगे" इस कथन से अब विवेक बुद्धिवालों को मध्यस्थ दृष्टि से विचार करना चाहिये कि जैन शासन में वर्तमान में तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी मोक्ष गये हैं उन्हीं को अनुमान

ढाई हज़ार (२४५०) वर्ष हो गये हैं सो गौतम स्वामी के तपस्या करने से तपगच्छ नाम नहीं हुआ किंतु भगवान् की परंपरा में ४४ वें पाटपर 'बड़गच्छ' में श्री जगचंद्रसूरिजी आचार्य हुए थे सो शिथिलाचारी चैत्यवासी हो गये थे, परंतु पुण्य के उदय से वैराग्य आने से शुद्ध संयमी, त्यागी होकर विचरने लगे. वनादि में भी रहने लगे, बहुत तपस्या भी करने लगे, बड़े नामी हुए. तब राणाजी ने इन्हों को बहुत तपस्या करते हुए देखकर सम्वत् १२८५ में तपा पददिया, तब से इन्हों की परंपरा वाले तपगच्छ के कहलाते हैं और अनुमान संवत् १५०० में कई गच्छवाले आचार्य प्रमादी परिग्रहधारी हो गये थे सो पालखी आदि वाहनों में बैठने लगे, पैसा लेने लगे, तब लोग उन्हों को श्री पूज्य कहने लगे. यह इतिहासिक बात प्रसिद्ध ही है यही पूज्यनाम तथा तपस्या करने से तपगच्छ कहलाने की बात पुराणों में लिखी है यह तपगच्छ नाम सं० १३०० में प्रसिद्ध हुआ है, इसले सं० १३०० के बाद सं० १४०० या १५०० में पुराण रचे गये ठहराते हैं, इसलिये पुराणों को ५००० वर्ष के प्राचीन ठहराना यह भी ढूंढियों का कथन प्रत्यक्ष झूठ है और ऐसे झूठे प्रमाणोंको आगे करके अपनी प्राचीनताका अभिमान करना भी व्यर्थ है।

१५२. फिरभी देखिये इसी शिवपुराण की ज्ञान संहिताके २१ वें अध्यायके २ और २६ वें श्लोकमें जैनमुनिको धर्मलाभ कहनेका लिखाहै इसलिये शिवपुराणके प्रमाणको माननेवाले सर्व ढूंढियोंको धर्मलाभ कहनेका मान्यकरना योग्यहै और श्रीमालपुराणके ७२ वें अध्यायके ३३ वें श्लोकका प्रमाण ढूंढिये बतलातेहैं इसी श्लोकमें जैनसाधुको हाथमें दंडा धारण करनेका लिखाहै इसीलिये सर्वढूंढिये साधुओंको इसश्लोकके कथन मुजब हाथमें दंडा अवश्यमेव धारण करना चाहिये. जिसके बदले दन्डा धारण करने वालोंको दंडी २ कहकर निंदा करतेहैं, यही बड़ी अज्ञानताहै। जैनसिद्धांतोंमें साधुको दन्डा रखनेका किस किस आगमोंमें लिखाहै व दंडा रखनेसे क्या क्या लाभ होतेहैं उसके विषयमें आगे लिखनेमें आवेगा। और शिवपुराण वगैरहके रचनेवालोंने जैनसिद्धांतोंकी बातोंको समझे बिना व पूरा निर्णय किये बिना अपनी अज्ञानताके जैनशासनकी निंदा करनेके लिये मनकल्पित झूठी झूठी बातें लिखकर अपनी धर्मद्वेष बुद्धिका खूब परिचय बतलायाहै. ऐसे धर्मद्वे-

पियोंके वचनोंको आगे करके अपनी सच्चाईका घमंड करना यही ढुंढि-योंकी पक्षांध निर्विवेकताहै।

---

१५२. ढुंढिये कहतेहैं कि पंजाब देशमें 'नामा' शहरमें मुंहपत्ति-की चर्चा हुईथी वहाँपर शिवपुराणके प्रमाणसे मुंहपत्ति बाँधना विद्वानों ने ठहरायाहै, यहभी ढुंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झुठहै, क्योंकि देखो- ना-माकी चर्चामें जो विद्वान्लोगोंको मध्यस्थ बनायेथे उन्होंने जो फैसलादिया है सो इसी पुस्तककी आदिमें इन्दौरकी चर्चाके विज्ञापन नम्बर पांचवें में चर्चा पृष्ठ १४-१५-१६में छप चुकाहै, सो वहाँसे देख लेना. उन्हीं वि-द्वानोंने शिवपुराणके लेखसे भी हमेशा मुंहपत्ति बांधना नहीं ठहराया, किन्तु जबजब बोलनेका काम पड़े तबतब मुंहआगे वस्त्र (मुंहपत्ति) रखकर बोलना सिद्ध कियाहै इसलिये मुंहपत्ति बांधनेका विद्वानोंने ना-माकी चर्चामें ठहरायाहै, ऐसा ढुंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झुंठहै। फिरभी देखो नामाकी चर्चामें खास ढुंढियोंने ही अपनी हार स्वीकारकी है 'मिथ्यात्व निकंदन भास्कर' नामा ढुंढियोंकी पुस्तकके पृष्ठ २२ में लिखाहै, कि—" पंडितलोग अर्थका अनर्थ कर डालतेहैं, इसवास्ते पं-डितोंके पास अर्थ करवानेकी कोई जरुरत नहींहै, सबब 'नामा' आदि स्थानोंमें और कई जगहपर आगे यह बनाव बन गयेहैं " ढुंढियोंके इस लेखका आशय यहीहै कि 'नामा' आदि बहुत जगह पंडित लोगोंने ह-मारी बातको झूंठी ठहराईहै, तोभी अपना बचाव करनेके लिये अर्थका अनर्थ कर डालनेका पन्डितलोगोंके उपर झूंठा आरोप रखतेहैं, यह ढुंढियोंकी बड़ीभूलहै क्योंकि जो शिवपुराणके नामसे विद्वान्लोग हमे-शा मुंहबंधा रखनेका ठहराते तो ढुंढिये लोग विद्वानोंके उपर बड़े खुश होते और कहते कि विद्वान लोगोंने अच्छा अर्थ कियाहै, परन्तु विद्वा-नोंने ऐसा नहीं किया और हमेशा मुंह बांधना निषेध किया व बोलते वख्त मुंहआगे वस्त्र रखकर बतलाके बोलनेका ठहराया इसलिये अर्थका अनर्थ कर डालनेका विद्वानोंपर झूंठा आरोप रखतेहैं, सो सर्वथा अनुचित हैं और अगर कोई विद्वान ढुंढियोंको खुश रखनेके लिये ढुंढियोंके मनसा माफीक हमेशा मुंह बांधनेका कहे तोभी न्यायसे कभी नहीं कह सकता क्योंकि देखो "हस्ते पात्र दधानश्च, तुंडे वस्त्रस्य धारकः" इस वाक्यसे हाथमें पात्र व मुखपर वस्त्र धारण करनेका समझ कर हमेशा मुं-

हपत्ति बांध ॥ जैन आराधक लिंगहै , समझे नहीं मदांध " ऐसे ऐसे वाक्य "मिथ्यात्वनिकंदनभास्कर" नामा पुस्तकमें मुंहपत्ति चर्चासंबंधी लिखकर ढूंढियोंने खूब मिथ्यात्व फैलायाहै. अभव्य जीवभी साधुपना लेते हैं ढूंढियोंके कथन मुजब मुंहपत्ति बांधतेहैं; तोभी उन्होंकी मुक्ति कभी नहींहोती, अगर ढूंढियोंके कथन मुजब मुंहपत्ति बांधनेसेही तीसरे भवमें मुक्ति होतीहोतो आर्य अनार्य सर्वमनुष्य और पशु पक्षी आदिभी मुंहपत्ति बांधनेसे तीसरे भवमें सब मोक्षचले जावेंगे, तप संयमादि धर्म कार्य करनेका कष्ट मिट जावेगा. ढूंढियोंका बड़ा उपकार मानेंगे तथा ढूंढियोंके मतमेंभी जो कोई क्रोधी-मानी-मायी-लोभी-प्रपंची-व्यभिचारी कुटिल मतिवाले ढोंगीहैं वोभी मुंहपत्ति बांधनेसे तीसरे भवमें मोक्ष ले जावेंगे. ढूंढियोंने मुंहपत्ति बंधवाकर मोक्ष पहुंचानेका ठेका लिया होगा इसलिये ऐसे कहते हैं. बड़े अफसोसकी बातहै कि ज्ञानी महाराजने तो दान-शील-तप-जप-स्वाध्याय-ध्यानादि शुद्ध धर्मकार्यकरनेसे रागद्वेषादि दोषोंके नाश होनेसे मोक्ष बतलायाहै और ढूंढिलोग मुंहपत्ति बांधनेसे तीसरे भवमें मोक्ष होना बतलातेहैं यही ढूंढियोंकी बड़ी प्रबल उत्सूत्र प्ररूपणाहै।

१६०. देखिये सोमिल तापसकी तीसरे भवमें मुक्ति होना देखकर अगर ढूंढियोंनेभी मुंहबांधनेसे तीसरे भवमें अपनी मुक्ति होना मानाकिया होतो यहभी ढूंढियोंका बड़ा भ्रमहै, क्योंकि सोमिल तापसने मुंहबांधना वगैरह अपना मिथ्यात्वी लिंग छोड़कर शुद्ध श्रावक मत पाले थे, उससे मुक्ति गामीहुआहै, परंतु मुंह बांधनेसे नहीं इसी तरहसे ढूंढियोंकोभी अगर मुक्तिगामी होनेकी चाहना हो तो सोमिल तापसकी तरह हमेशा मुंह बांधनेका मिथ्यात्वी लिंगको छोड़ें और शुद्ध जैनलिंग अंगीकार कर शुद्ध संयम पालें तो तीसरे भवमें मोक्ष होसके अन्यथा नहीं. इतने पर भी हमेशा मुंहबांधनेके मिथ्यात्वी लिंगको न छोड़ेंगे व हठाग्रहकरेंगे तो तीसरे भवमें मुक्ति होना तो दूररहा किंतु जिनाज्ञाके विराधक होके संसार परिभ्रमणका कर्म बांधेंगे, उससे चारगतिके अनंत दुःख भोगने पड़ेंगे। मुंह बांधकर हमेशा फिरते रहना यह जैन शासनका आराधक लिंग नहीं है, किंतु दिशापोषण करने वाले तापसोंका मिथ्यात्वी लिंग है इसबातका विशेष खुलासा पहिले "निरयावली" सूत्रके पाठकी स

...में लिंग आये हैं इसलिये मोक्षाभिलाषी सज्जन पुरुषों को सोमिल ताप-सकी तरह ऐसे मिथ्यात्वी लिंगका जल्दीसे त्याग करना योग्यहै।

(अब देखो ढूंढियोंकी कुयुक्तियोंका समाधान)

१६१. ढूंढिये कहतेहैं कि-ज्ञाताजी तथा भगवतीजी आदि आगमोंमें मेघकुमार, धर्मरुचिअणगार, खंधकजीमुनि आदि मुनियोंके संथारा करनेका अधिकार आयाहै, वहांपर संथारा करनेवाले मुनियों ने भगवान्‌की तरफ दोनोंहाथ जोडकर मस्तकसेअंजलि करके नमुत्थुणं कहाहै. सो अगर मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई न होती तो दोनोंहाथ जोडकरके नमुत्थुणं करनेके समय मुंहकी यत्ना नहीं होसकती, इसलिये मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई होनी चाहिये. यहभी ढूंढियोंका कथन प्रत्यक्ष झूठहै. क्योंकि देखो—संथारा करने वाले मुनियोंने भूमिकोप्रमार्जनकी. डाभका संथारा बिछाया, पूर्व दिशी तरफ बैठे, दोनोंहाथ जोडे, मस्तकपर अंजलि किया और नमुत्थुणं किया इत्यादि सर्व कार्य एक साथ नहीं किये किंतु अनुक्रमसे एक पीछे दूसरा कार्य करनेमें कोई बाधा नहीं होसकती. इसलिये पहिले दोनोंहाथ जोडकर मस्तकसे अंजलि की फिर उन्हीं दोनों हाथोंसे मुंहपत्तिसे मुंहकी यत्ना करके नमुत्थुणं कहा ऐसे करनेसे मस्तकमें अंजलिभी होसकतीहै और मुंहकी यत्नासे नमुत्थुणं भी कर सकतेहैं इससे मुंहपत्ति बंधीहुई कभी नहीं ठहर सकती।

१६२. फिरभी देखिये जैसे तीर्थंकर भगवान्‌के च्यवन कल्याणक के समय इंद्रमहाराज देवलोकमें रहे हुए ही उत्तरासन करके भगवान्‌की दिशी तरफ जाकर भगवान्‌को मस्तक नमाकर दोनों हाथ जोडकर मस्तकसे आवर्त करके पीछे उन्हीं दोनों हाथोंसे उत्तरासनका छेडा मुंहआगे रखकर नमुत्थुणं करतेहैं (मुंह आगे वस्त्र रखकर इंद्रमहाराज धर्मकार्यमें निरवद्य भाषा बोलें ऐसी ढूंढियोंकी मान्यताहै) इसमें इंद्र महाराजने भगवान्‌को दोनोंहाथ जोडे मस्तकसे आवर्त किया और मुंहआगे यत्ना करके नमुत्थुणंभी किया परन्तु इंद्र महाराजका मुंह बंधा हुआ नहींथा. ऐसेही संथारा करनेवाले मुनियोंनेभी पहिले दोनों हाथ जोडकर मस्तक नमाकर पीछे मुहकी यत्ना करके नमुत्थुणं कहा है इसलिये ढूंढियोंकी तरह उन्हे मुनियोंके मुंहपर हमेशा मुंहपत्ति बंधी हुई कभी नहीं ठहर सकती।

१६३ फिरभी देखिये—साधु-साध्वी देव दर्शन करनेको मंदिरमें जातेहैं, तब तीनबार मस्तक नमाकर दोनों हाथ जोडकर मस्तकसे आवर्त करके पीछे दोनों हाथोंसे मुंहपत्ति मुंहआगे रखकर चैत्यवंदन करतेहैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै इससे साधु—साध्वियोंके मुंहपर मुंहपत्ति बंधी हुई नहींहै, इसी तरहसे संथारा करने वाले मुनियोंकेभी मुंहपर मुंहपत्ति बंधी हुई नहीं थी।

१६४ फिरभी देखो ढूंढिये हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखतेहैं सो संमूर्छिम असंख्य पंचेंद्रिय जीवोंकी घात करतेहैं, मिथ्यात्वियोंका कुलिंगहै और हवाके जोरसे हमेशा मुंहपत्ति हिलती रहतीहै जिससे समय समय असंख्य वायुकायके जीवोंकी हिंसा होतीहै, इत्यादि अनेक दोष होतेहैं. ऐसे अनेक दोष वाली मुंहपत्ति बंधी रखनेका घोर तपस्वी शुद्ध उपयोगी अप्रमादी मोक्षगामी महामुनियोंको दोष लगाना यह दुर्लभ बोधियोंका कामहै।

---

१६५. ढूंढिये कहतेहैं कि जगतमें अच्छी वस्तु ढकी जातीहै और खराब वस्तु खुल्ली रहतीहै, इसलिये अच्छी वस्तुकी तरह हमभी अपने अच्छे मुंहको हमेशा ढका रखतेहैं, यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै क्योंकि देखो जगतमें अच्छी २ मिठाई, अच्छे २ फलादि मेवा, अच्छे २ वस्त्र, अच्छे २ चांदी सोने-जवाहरातके आभूषण वगैरह माल [illegible] हरएक जगह बाजारोंमें बादशाहकी व राजाकी शोभारूप नगरके साथ दुकानोंमें खुल्ले रखे जातेहैं और विष्टा-पेशाब-मोरी (गटर) का मल-पित्त-कफ आदि घृणीत वस्तुका पाप-धूल-रक्षा (राखोडी) [illegible] ढकनेमें सब कोई लुकातेहैं यह जगत प्रसिद्ध बातहै। और जिस मनुष्यके मुहमें घाव हुआहो, मसोडे फूटगयेहो दांतोंमें कीडे पडेहो, मुंह दुर्गंधी आतीहो अथवा होठादि बिगड गयेहो [illegible] होगयाहो [illegible] बडा होवे या कट गयाहो इत्यादि कारणोंसे लाज शरमसे मुंह ढांकते हैं परन्तु अच्छे निरोगी अच्छा [illegible] मुंह बांधते नहीं। [illegible]

कानों में अंगुली डालने का हठकरेंगे तोभी देखो साध्वी के मस्तकपर चद्दर ओढीहुई होतीहै, उस चद्दर का पला गले में पड़ा रहताहै, सो गोचरी वहोरनेके समय उस चद्दरके पलेको मुंह आगे डाल देतीहै अथवा रंगमेपर कंबल होतीहै उसको मुंहके आगे डालदेती है, उससे मुंह की यत्ना होतीहै और दोनों हाथ खुले रहतेहैं इसलिये ढूंढियोंके हठ मुजब अगर कानोंमें अंगुली डालकर बात करे तोभी उससे हमेशा मुंह पत्ति बांधना कभी साबित नहीं हो सकता।

---

१७० ढूंढिये कहतेहैं कि जैसे साध्वीके साडा बांधनेका दोराकहीं सूत्र में नहीं लिखा तोभी साडा दोरा से बांधतेमें आताहै, वैसे ही मुंह पत्तिकेभी दोरा नहीं बतलाया तोभी दोरा से बांधतेमें आतीहै, यहभी ढूंढियोंका कहना अन समझकाहै, क्योंकि देखो- साध्वी के तो योनि आदि लज्जनीय वस्तु ढकने के लिये दोरा से साडा बांधनेमें आताहै परंतु मुंह तो योनि जैसा लज्जनीय नहीं है इसलिये लज्जनीय वस्तु ढकनेका दृष्टांत बतलाकर मुंह बांधने का ढोंग सिद्धकरना बड़ी अज्ञानताहै।

---

१७१ ढूंढिये कहतेहैं कि जैसे आहार शब्द से चारों प्रकार का आहार समझा जा सकताहै, वैसे ही मुंहपत्ति शब्द से दोराभी समझ लेना चाहिये। यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, देखो आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं ऐसे चारों प्रकारके अलग अलग पाठ सूत्रोंमें मौजूदहैं, वैसेही मुंहपत्ति के दोराका पाठ किसीभी सूत्रमें नहींहै इसलिये मुंहपत्ति के साथ दोरा लगाना सूत्र विरुद्ध हठाग्रहहै और जैसे- रजोहरण बांधनेका दोरा निशीथसूत्रके पांचवें उद्देशामें कहाहै, वैसेही मुंहपत्ति बांधने का दोरा किसी जगह कहा नहींहै परन्तु सर्व शास्त्रोंमें बोलने के समय मुंह आगे मुंहपत्ति रखकर यत्नासे बोलने का कहाहै तथा कभी दुर्गंध आदि कारन के लिये नाक-मुंह दोनों के उपर बांधनी पडे तो त्रिकोणी करके [illegible] बांधने की [illegible] बतलाई है इससे हर वक्त [illegible] नहीं [illegible] ढूंढियोंका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इसलिये [illegible] [illegible] [illegible] अज्ञानताहै [illegible]

कथन सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै, क्योंकि देखो-यह उपरके सर्व कार्य अपनी शोभा रूपहै और ढूंढिये लोगभी अपने मुखकी शोभाके लिये पत्ति बांधना स्वीकार करतेहै, परंतु मुखकी शोभा करने वाले "निशीथ सूत्र" में प्रायश्चित्त कहा है, इसलिये मुंहपत्ति बांधने वाले भी प्रायश्चित्त के अधिकारीहैं। और जैसे- होली के पर्वमें राजा बनकर लोगोंमें हासी का पात्र होता है, तोभी उसमें मानताहै, वैसेही- ढूंढिये लोगभी जिनाज्ञा विरुद्ध ... से जगतमें हांसी के पात्र होते हैं, तोभी अज्ञान समझतेहैं, जो आत्मार्थी समझदार होगा ... त्याग करेगा।

१७५ ढूंढिये कहतेहैं कि बिना उपयोग उघाडे और बार बार उपयोग रहे नहीं इसलिये उघाडे मुंहपत्ति बांधी रखना अच्छा ही है उसमे कभी ... यहभी ढूंढियों का कहना अनुचितहै क्योंकि देखो उत्तराध्ययनादि सूत्रों में साधुको सोना-बैठना-... रहना-आहार करना- भाषण करना-व्याख्यान व करना- ठल्लेजाना- देवदर्शन- ... ना-प्रमार्जनादि सर्व कार्य उपयोगसे यत्ना पूर्वक कभी कोई कार्य बिना उपयोगसे करनेमें आवे, दुकडं देनेमें आताहै, इरियावही करनेमें आतीहै में आलोयणा लेनेमें आतीहै और उपवासादि लिया जाताहै. इसीतरहसे जो अपने सोतो उपयोगसे मुंहकी यत्ना करके बोलेगा उघाडे मुंह बोला जावे तो उसकी भी ... में मिच्छामिदुक्कडं देतेहैं, अपनी भूल। सुधारनेका स्वपकरतेहैं इसी तरहसे ढूंढिये बांधतेहैं उसमें थूक लग कर पंचेंद्रीय ... हानि होतीहै औरभी प्रथम विज्ञापन म ... उसकी आलोयणा कोईभी ढूंढिया लेता मुखबांधना अच्छा समझतेहैं और ...

"जिनवर फुरमाया, मुंहपत्ति बांधो मुख उपरें" ऐसी ऐसी भगवान् के नामसे झूठी झूठी बातें बनाकर वीरप्रभुकी, बीस विहरमानोंकी व अतित, अनागत और वर्तमान कालके अनंत तीर्थंकर भगवानोंकी आज्ञा उत्थापन करके अनंत संसार परिभ्रमण कराने वाला बडा अनर्थ खडा किया है, व करते भी है. इसलिये हमेशा मुंह बांधना बहुत बुराहै।

१७६ फिरभी देखिये-ढूंढियेलोग बोलने का थोडासा उपयोग न रहनेसे मुंहपत्ति बांधना मानतेहैं तो फिर बडे बडे सूत्रों का व प्रकरण ग्रंथोंका नाम से बांधने का ठहरा करके भोले लोगों को भ्रममें डालकर क्यों मिथ्यात्व फैलातेहैं और जो बोलनेका थोडासा उपयोगभी न रखसकें तो ब्रह्मचर्य रक्षाकी नव वाडोंमें तथा अष्ट प्रवचनमाता पालने वगैरह हरएक धर्म के कार्यमें भी उपयोग न रख सकेंगें. उनसे शुद्धसंयम कभी नहीं पलसकता और बोलनेका उपयोग न रहने से मुंह बांध लिया उसीतरह चलने का उपयोग न रहने से विहार करना छोड कर एक जगह पडे रहें या दोनों पैरों के दो पूंजणी बांधकर रास्तेमें झाडु निकालते हुये चलनेका नया सांग निकालें तब तो ढूंढियों की मुंह बांधनेमें दया समझी जावे नहीं तो भोले लोगों को भ्रमानेकी माया जालही समझी जातीहै और उपयोग बिना तो मुंह बांधकर बोले तोभी जिनाज्ञा विरुद्धहै, उपयोगमेंही धर्महै, इसलिये आत्मार्थियोंको ऐसी माया जाल को अवश्य त्याग करना योग्य है।

---

१७७ ढूंढिये कहतेहैं कि संवेगीसाधु उघाडेमुख बोलतेहैं, यहभी कहना झूठहै, क्योंकि सब संवेगी साधु उघाडे मुख कभी नहीं बोलते, बहुत साधु उपयोगसे मुंह आगे मुंहपत्ति रखकर मुंह की यत्नाकरके बोलतेहैं, कोई प्रमाद वश उघाडे मुख बोलेगा वह अपनी आत्माको दोषका भागी करेगा परंतु उघाडे मुख बोलनेकी बातको पुष्ट कभी नहीं करेगा इसलिये सब संवेगी साधुओंपर उघाडे मुख बोलनेका झूठा दोष लगाना बडा पाप है. और ढूंढिये साधु हमेशा मुंह बांधतेहैं, उसको बडे बडे शास्त्रों के झूठे झूठे नामलेकर. कुयुक्तियें लगाकर पुष्ट करतेहैं, भोले जीवों को भ्रममें डालते है. सनाजमें मिथ्यात्व फैलातेहैं, इसलिये बिना उपयोग प्रमादवश उघाडे मुख बोलने वाले थोडे दोषी से भी जिनाज्ञा विरुद्ध हो कर उत्सूत्र प्ररूपणासे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका स्थापन करने वाले ढूंढिये व तेरहापंथी लोग अनंत संसार बढाने वाली भाव हिंसा के महान् दोष के भागी बनतेहैं,

ऐसे महान् पापसे डरने वाले ढूंढिये व तेरहापंथी साधु-साध्वी- और श्रावक- श्राविका हमेशा मुंहपत्ति बांधने का अवश्य त्याग करेंगे परंतु पाप से नहीं डरने वाले भारी कर्मो की वातही जुदीहै।

१७८ कई मुंह बांधने वाले कहतेहैं कि संवेगियों में कान विधाकर व्याख्यान समय मुंहपत्ति बांधने का लिखा है यहभी कहना झूठहै, क्योंकि ऐसा संवेगियों के किसी ग्रंथमें नहीं लिखा और ऐसा कोई करते भी नहीं किन्तु जिसके गृहस्थ अवस्था में कान विंधेहुए होवें, छेदहोवें तो उसमें डालकर नाक मुंह दोनों ढककर व्याख्यान वांचतेहैं नहींतो मेरे व मेरे गुरुमहाराज आदि की तरह हाथमें मुहपत्ति को मुंहआगे रखकर नाक मुंह दोनोंकी यत्नापूर्वक व्याख्यान बांचतेहैं इसलिये ऐसी झूठी बातें फैलाकर बालजीवों को भ्रममें डालना योग्य नहीं है और संवेगी साधु नाक-मुंह दोनों की यत्ना करके व्याख्यान देतेहैं इस दृष्टांतसे नाक खुला रखकर हमेशा मुंह बंधनेका ठहराना बड़ी भूल है।

१७९ कई मुंहबंधे कहतेहैं कि- पुस्तकपर थूंक न लगने पावे इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधतेहैं यहभी मायाचारीका प्रपंचहै क्योंकि देखो- पुस्तको थोडी देर बांचतेहैं और मुंहतो हमेशा बंधा रखतेहैं, अगर पुस्तकपर थूंक लगने के भयसे मुंह बांधने होवे तबतो जबतक पुस्तक बांचें तबतक बंधा रक्खें अन्य समय खोल डालें, नहीं तो पुस्तक बांचने के बहाने हमेशा मुंह बंधा रखना सो बालजीवों को भ्रममें डालने की ठग बाजीहै।

१८० कई मुंहबंधे कहते हैं कि- हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने से मन स्थिर होता है यहभी कहना झूठहै, क्योंकि देखो- ज्ञान दशासे मन को वशकरके धर्म ध्यान में चित्त लगाने से मन स्थिर होताहै परंतु मुंहपत्ति बांधने मात्र से मन स्थिर कभी नहीं हो सकता।

१८१ कई मुंहबंधे कहतेहैं कि- बारहा वर्षी काल पडा तब साधु लोग ढीले (क्रियामें प्रमादी) हो गयेथे, तबसे मुहपत्ति हाथमें रखना शुरू किया है, परंतु उसके पहिले तो सर्व साधु हमेशा मुहपत्ति बंधी रखते थे यहभी मुंह बंधा का कहना सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै क्योंकि देखो- किसी भी आगममें जैन साधु के लिये हमेशा मुंह बांधने का नहीं लिखा, किंतु आचारांग, निशीथ, आवश्यक, दशवैकालिक आदि आगमोंमें सर्व-साधु- साध्वि

देके हमेशा मुंह खुले रखनेका लिखाहै उनके सर्व आगम पाठ
ग्रंथमें पहिले लिख चुकेहैं, इसलिये अनादि कालसे मुंहपत्ति हाथमें
नेकी जिनाज्ञाहै जिसपरभी प्रत्यक्ष आगम विरुद्ध होकर पहिलेके
साधुओंको हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका झूठा दोषलगातेहैं सो उत्सू
प्ररूपणासे अनंत तीर्थंकर महाराजोंकी आज्ञा उत्थापन करतेहैं। जै
शासनमें हमेशा मुंह बांधनेका नया ढोंग विक्रम संवत् १७०९में लवजी
ने चलायाहै सो प्रसिद्धहै और इस ग्रंथमें पहिले लिखभी आयेहैं।

---

१८८. कई मुंहबंधे कहतेहैं कि- साधुओंकी मांडली (टोली) में सब को आहार देते (बांटते) समय अगर मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई न होवे तो आहार देते समय कैसे बोलसके, इसलिये मुंहपत्ति बंधी रखना योग्यहै यहभी मुंहबंधोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि देखो आहार करते समय मौनपने रहकर इशारेसे रोटी-शाक-जल वगैरह साधुलोग मांग सकते हैं, उससे देने वालाभी मौनपने दे सकताहै और आहार करते समय सर्व साधु-साध्वियों के मुंह खुले रहतेहैं तथा हमेशा मुंह बांधकर फिरने वाले ढूंढिये व तेरहापंथी साधु आहार करते समय मुंहपत्ति मुंहपर से खोल डालतेहैं, उस समय मुंह बांधनेकी कोई भी जरूरत नहीं पड़ती इतने परभी अगर आहार बांटने के समय मुंह बांधनेका हठ करोगे तोभी उस समय थोडी देरके लिये बांध लो मगर आहार बांटनेके बहाने चलते फिरते हमेशा बांधकर दुनियाके लोगों को स्वांग जैसा ढोंग बतलाकर सर्वज्ञ शासन की हीलना करवाना योग्य नहीं है।

---

१८९. ढूंढिये कहतेहैं कि मुनिके मृतक शरीर के मुंहपर मुंह-
त्ति बांधी जातीहै उनमें हमभी हमेशा बांधी रखते हैं यहभी कथन
[illegible] समझकाहै, क्योंकि देखो- ढूंढियों के मरे हुए साधु-साध्वियों के
[illegible] मुंहपत्ति बांधनेसे [illegible] अपने मन का हठाग्रहसे मुर्दे कुछ बोलने
[illegible] उसके मुंहपर मुंहपत्ति बांधना [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

तथा बांधना अच्छा समझने वाले सब पाप के भागी होतेहैं फिर
कुछ भी जीव दया का धर्म नहींहै. ऐसे हठाग्रहसे मुरदे के मुंह
बांधना बडी भूलहै और मुरदे के मुंहपत्ति बांधनेका बतला
हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका मान लेना यह उससे भी बडी भूल
और किसी गच्छके यतिआदिकोंमें अगर मुरदे को मुंहपत्ति
रिवाज होगा तो वह लोग भी थोडी देरके लिये व्याख्यान
हृदय बतलाने के लिये नाक-मुंह दोनों बांधते होंगे मगर
तरह नाक खुला रखकर अकेला मुंह कोई नहीं बांधते
ऐसी २ बातों के बहाने बतलाकर नाक खुला रखकर हमेशा मुं
बांधने की बात को पुष्ट करना बडी भूल है।

१८४. ढूंढिये लोग रोगीके चीराफाडी करनेके समय
मुंहबांधते हैं, ऐसा बतलाकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनाठहराते
अनुचित है क्योंकि डाक्टर तो जब चिरा फाडी का काम
थोडी देर के लिये नाक-मुंह दोनों ढकतेहैं, बादमें खोल डालते
लिये अगर डाक्टरों की तरह ढूंढिये भी मुह बांधना मानते
तो जब काम पडे तब नाक-मुख दोनों बांधलें फिर खोल डा
नाक खुला रखकर हमेशा मुंहबांधा रखना योग्य नहींहै।

१८५. ढूंढिये कहतेहैं कि विष्ठा आदि अशुद्ध जगहकी
(मक्षिका) अपने मुखपरबैठ जावे तो मुख अशुद्ध हो जावे उस
का नाम लेना इत्यादि धर्मकार्य नहीं होसके इसलिये हमेशा
मुंहपत्ति बांधीरखना योग्य है, यह भी ढूंढियों का कहना
का है. क्योंकि देखो-अन्न, मिठाई, जल, दूध, गुड, शक्कर, घृ
वगैरह पर मक्खी बैठनेसे उन वस्तुओंको अशुद्ध समझकर
में कोईभी फेंकता नहीं, ढूंढियेभी उन्हीं वस्तुओं को खाते-पीते
ढूंढियोंके हाथकी अंगुलियों पर मक्खी बैठनेसे अपनी अंगुलियें
नहींमानकर उन्हीं अंगुलियोंसे नवकरवाली (माला) फेरकर भ
स्मरण करतेहैं, उसमें कोई दोष नहीं मानते. वैसेही मुहपर म
तोभी मुंह से भगवानका नाम लेने में कोई दोष नहींहै इसलिये
झूठी २ कुयुक्तियें लगा कर भोले जीवोंको उन्मार्गमें डालकर
फैलाना योग्य नहींहै।

पास जानेका लिखा है, सो यह रियाज अभी भी जब विवेक वाले श्रावक लोग जिन मंदिर में देव दर्शन करने को जाते हैं तब और उपाश्रय में गुरु वंदन, व्याख्यान श्रवणादि के लिये देव-गुरु के पास जाते हैं तब दुपट्टे से उत्तरासन करते हैं, वैसेही पहिले भी श्री तीर्थंकर भगवान् को तथा गण-धरादि साधु महाराज को वंदना करने को या धर्म देशना सुनने को विवेक वाले श्रावक जाते थे तब उत्तरासन करके वंदना करते थे परंतु मुखकोश बांध कर किसी भी श्रावक ने तीर्थंकर गणधरादि किसी भी मुनियों को वंदना करने का अधिकार किसी भी आगम में नहीं है और अभी वर्तमान काल में भी विवेक वाले श्रावक मुखकोश बांध कर गुरु को वंदना करनेको नहीं जाते इसलिये तुंगिया नगरी के श्रावक मुखकोश बांध कर वंदना करने को गये थे उस से अभी मुखपर मुंहपत्ति बांधनी योग्य है ऐसा ढूंढियों का कहना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध होने से प्रत्यक्ष मिथ्या है और इतने पर भी ढूंढिये मुखकोश बांधनेका मानते होवें तो भी जैसे श्रावक लोग जिन मंदिर में पूजा करने को जाते हैं तब मुखकोश से नाक मुंह दोनों बांधते हैं वैसेही ढूंढियों को भी मुखकोश की तरह नाक और मुंह दोनों बांधने चाहिये मगर नाक खुला रखना फिर मुखकोश बांधने का दृष्टांत बतलाना और अकेला मुंह बांधने का ले बैठना यह तो प्रत्यक्ष ही मायाचारी है इसलिये आत्मार्थियों को ऐसी मायाचारी का झूठा पक्ष त्याग करना ही उचित है।

१६३. फिरभी देखिये-ज्ञाताजी सूत्रके ८ वे अध्ययन में मल्लिनाथजी के अधिकार में मल्लिकुमारी की पुतली में से जब दुर्गंध निकली तब छः मित्र राजाओं ने अपने २ उत्तरासन के छेडे से अपने २ मुख ढके थे, तथा ९ वे अध्ययन में जिनरिक्ष और जिनपाल दोनों भाइयोंने जब बगीचे में दुर्गंध आतीथी तब उत्तरासन के छेडे से अपने मुख ढके थे और बारहवे (१२) अध्ययनमें खाई की दुर्गंधसे व्याकुल होकर जितशत्रु राजा वगैर-होने उत्तरासन के छेडे से मुख ढके थे, इत्यादि बहुत आगमों में उत्तरासन का अधिकार आता है उसका भावार्थ इतनाही होता है कि, जैसे ब्राह्मणोंके जनोई (यज्ञोपवित) की तरह पहले श्रावकोंके खंधेपर उत्तरासन रहता है सो कभी काम पड़े तो उस का छेडा मुंह आगे रखते हैं, इसलिये उत्तरा-सन कहनेसे मुखकोश की तरह मुंह बांधना ठहराने वाले ढूंढियों की बडी भूल है।

१६४. वीतराग सर्वज्ञ भगवानके पास जाते वंदनादि करने के

मुंहपत्ति कहलातीहै उनके कपडे और शरीर बहुत मैले होतेहैं और उनमें जुवे तक भी पैदा हो जाती है-" रासमाला, सन् १८७८

१८९. सन् १६०२ के अंग्रेज के लेखों को प्रमाण मानने वाले सर्व ढूंढियों को सन् १८७८के उससे भी विशेष पुराणे ४७ वर्षके उपर के अंग्रेज लेख को प्रमाण मानकर अपने झूठे घूर्णित मतको त्याग करना चाहिये-

---

१९०. ढूंढियें कहतेहैं कि 'तुंगिया नगरी' के श्रावकोंने मुखकोश बांधकर भगवान् को वंदना की थी, ऐसा ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूठ है. क्योंकि 'तुंगिया नगरी' के श्रावक अपने अपने घरमें स्नान और देवपूजन करके शुद्धवस्त्र धारण करके जहां पुष्पवती चैत्य में स्थविर भगवान् समोसरेथे, वहांगये उस संबंधी श्रीभगवती सूत्र के दूसरे शतकके पांचवे उद्देशमें सूत्र वृत्ति सहित छुपेहुए पृष्ठ १३७ में ऐसा पाठहै, सो देखो—

"थेरे भगवंते पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति,तं जहा-सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए १, अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए २, एग-साडिएणं उतरासंग करणेणं ३, चक्खुप्फासे अंजलिप्पग्गहेणं ४, मण-सो एगत्ति करणेणं ५, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवाग-च्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता जाव० तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति"

१९१. इस पाठमें 'तुंगिया नगरी' के श्रावक जब स्थविर भगवान् के पास में वंदना करने को गये तब वहां पर सचित्त द्रव्य (अपने अंग पर से पुष्पादि) का त्याग करना १,अचित्त द्रव्य (वस्त्र आभूषण) का त्याग न करना २, एक साडी का (अखंड दुपट्टे) का उत्तरासन करना ३, स्थविर भगवंतको (वडील आचार्य महाराज को) दूरसे देखतेही भक्ति पूर्वक दोनों हाथ जोडने ४, और अपने मनको एकाग्र भक्तिमें ही लगाना ५, इस प्रकार पांच तरहके अभिगमन (विनय) से गुरु महाराज के पास में जाकर विधिसहित वन्दनाकरके शुद्ध मन- वचन- कायासे- सेवाभक्ति करने लगे।

१९२ देखो ऊपर के पाठ म उत्तरासन करके गुरु महाराज के

पास जानेका लिखा है, सो यह रिवाज अभी भी जब विवेक वाले श्रावक लोग जिन मंदिर में देव दर्शन कर ने को जाते हैं तब और उपाश्रय में गुरु वंदन, व्याख्यान श्रवणादि के लिये देव-गुरु के पास जातेहैं तब दुपट्टा से उत्तरासन करते हैं, वैसेही पहिले भी श्री तीर्थंकर भगवान् को या गणधरादि साधु महाराज को वंदना करने को या धर्म देशना सुनने को विवेक वाले श्रावक जाते थे तब उत्तरासन करके वंदना करते थे परंतु मुखकोश बांध कर किसी भी श्रावक ने तीर्थंकर गणधरादि किसी भी मुनियों को वंदना करने का अधिकार किसी भी आगम में नहीं है और अभी वर्तमान काल में भी विवेक वाले श्रावक मुखकोश बांध कर गुरु को वंदना करनेको नहीं जाते इसलिये तुंगिया नगरी के श्रावक मुखकोश बांध कर वंदना करने को गये थे उस से अभी मुखपर मुंहपत्ति बांधनी योग्य है ऐसा ढूंढियों का कहना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध होने से प्रत्यक्ष मिथ्या है और इतने पर भी ढूंढिये मुखकोश बांधनेका मानते होवें तो भी जैसे श्रावक लोग जिन मंदिर में पूजा करने को जाते हैं तब मुखकोश से नाक मुंह दोनों बांधते हैं वैसेही ढूंढियों को भी मुखकोश की तरह नाक और मुंह दोनों बांधने चाहिये मगर नाक खुला रखना फिर मुखकोश बांधने का दृष्टांत बतलाकर हमेशा अकेला मुंह बांधने का ले बैठना यह तो प्रत्यक्ष ही मायाचारी है इसलिये आत्मार्थियों को ऐसी मायाचारी का झूठा पक्ष त्याग करना ही उचित है।

१६३. फिरभी देखिये-ज्ञाताजी सूत्रके ८ वे अध्ययन में मल्लिनाथजी के अधिकार में मल्लिकुमारी की पुतली में से जब दुर्गन्ध निकली तब छः मित्र राजाओं ने अपने २ उत्तरासन के छेडेसे अपने २ मुंह ढके थे, तथा ९ वे अध्ययन में जिनरिखी और जिनपाल दोनों भाइयोंने जब बगीचे में दुर्गंध आतीथी तब उत्तरासन के छेडेसे अपने मुख ढके थे और बारहवें (१२) अध्ययनमें खाई की दुर्गंधसे व्याकुल होकर जितशत्रु राजा वगैरहोंने उत्तरासन के छेडे से मुख ढके थे, इत्यादि बहुत आगमों में उत्तरासन का अधिकार आता है उसका अर्थ इतनाही होता है कि जैसे ब्राह्मणोंकी जनोई (यज्ञोपवित) की तरह अच्छे आदमियोंके दुपट्टेका उत्तरासन होता है सो कभी काम पडे तो उस का छेडा मुंह आगे रखते हैं. इसलिये उत्तरासन कहनेसे मुखकोश की तरह मुंह बांधना ठहराने वाले ढूंढियों की बडी भूल है

१६४ वीतराग सर्वज्ञ भगवानके पास नजिकसे वंदनादि करने के

लिये लाते हैं तब अपने सुखके लिये, अपने शरीरकी शोभा के लिये, अपनी पंचेन्द्रियोंके विषयोंकी पुष्टिके लिये पुष्पादि सचित्त वस्तु भगवान्के पास नहीं ले जाते, परंतु भगवानकी भक्तिके लिये, शासनकी प्रभावना के लिये भगवान् के पास समोवसरण में ही जल से उत्पन्न होने वाले कमलादि और स्थल (जमीन) से उत्पन्न होनेवाले जाई-जुई आदिके पुष्पोंकी वर्षा देव करते थे, उसी तरह अभी भी भगवान् के मंदिरमें आनेके समय अपने सुख के लिये पुष्पादि सचित्त वस्तु मंदिर में ले जाने की मनाई है परंतु भगवान् की भक्ति के लिये पुष्पादि सचित्त वस्तु मंदिर में ले जाने में कोई दोष नहीं है । और भी देखिये- जैसे सचित्त वस्तु का त्यागी तथा महाव्रतधारी साधु रास्ता में विहार करते हुए जब जल वाली नदी उतरता है तब अप्काय (जल) व नीलण फुलण वगैरह के सूक्ष्म असंख्यात व अनंत जीवोंकी हानि होती है, कच्चा जल वगैरह का संघट्टनभी होता है तोभी साधु के मनके परिणाम, संयम धर्म में शुद्ध होनेसे साधु सचित्त का भोगी व महाव्रत रहित नहीं हो सकता तथा साधु-साध्वियों के कपड़ों को (कम्बलों को) बनाने वाले कच्चे जल से धोते हैं और श्राविका तथा श्रावक हाथ में लेते हैं वंदनादिक करते हैं तो भी उसमें साधु- साध्वियोंको कच्चे जल का और श्राविका श्रावक के संघट्ट का दोष नहीं लगता, वैसेही भगवान्की प्रतिमा को भी कच्चा जल व सचित्त पुष्पादि चढाने से भगवान् त्यागी के भोगी कभी नहीं हो सकते तथा भगवान् को सचित्त पुष्पादिके संघट्ट का दोष भी नहीं लगता और भगवान् त्यागी हैं तो भी भगवान् की भक्तिके लिये स्वाम भगवान् के बैठने के लिये देवता रत्नजड़ित सिंहासन बनाते हैं, भगवान् उसपर बैठते हैं, भगवान् के ऊपर देवता चामर ढोलते हैं भगवान् की भक्ति के लिये महिमा करने के लिये देव दुन्दुभी बगैरे आदि अनेक तरह के वाजिंत्र बजाते हैं भगवान् के सामने इन्द्राणी वगैरह देव-देवी आदि नाटक करते हैं, तोभी भगवान् वीतराग होने से त्यागी के भोगी कभी नहीं हो सकते और भक्ति से यह कार्य करने वालों के मन के परिणाम शुद्ध तथा भगवान के गुण गान करनेसे होते हैं इसलिये ऐसी भक्ति करने वाले इन्द्र देवतागण अपने अशुभ कर्मोंकी निर्जरा करते हैं, [illegible] पुण्य उपार्जन करते हैं [illegible] पश्चात् शुभ अनुबंधकी परंपरासे मोक्ष [illegible] फल प्राप्त करते हैं वैसेही भगवान की प्रतिमाको भी चामरढोलने आदि कार्य करने से भगवान त्यागी के भोगी कभी नहीं हो सकते और [illegible]

करने वाले भक्तजनों के मनके परिणाम संसारी मोह माया तथा विषय वासना आरंभ समारंभादि संसारी पापबंधन करनेसे छुटजाते हैं, और भगवान्‌की भक्ति में एक चित्त होता है, भगवान्‌के गुण गानादि में लयलीन हो जातेहैं उस समय अशुभ कर्मों का नाश होता है, शुभ पुण्य उपार्जन करते हैं और उत्कृष्ट शुभ भाव चढ जावें तो क्षण भर में मोक्ष प्राप्ति का एकंत शुभ फल उत्पन्न कर लेते हैं, इस बातका और जिनप्रतिमा जिन सरीखी किस अपेक्षा से है व पूजामें भावहिंसा नहीं लगती एकंत लाभ होताहै तथा जिन प्रतिमा पूजने से मोक्ष प्राप्ति का फल कैसे मिले इत्यादि सब बातोंका विस्तार पूर्वक खुलासा सब तरह की शंकाओं का समाधान सहित, "श्री जिन प्रतिमा को वंदन-पूजन करने की अनादि सिद्धि" नामा ग्रंथमें अच्छी तरह लिखा है उस के वांचने से सब बातों खुलासा हो जावेगा।

---

१९५. ढूंढिये कहते हैं कि "हितशिक्षा" के रासमें हमेशा मुंह पत्ति बांधना लिखा है, यह भी प्रत्यक्ष झूठ है क्योंकि देखो "हितशिक्षा" के रास भीमसिंह माणेक ने मुंबई में छपवाया है उस के पृष्ठ ३७-३८ में अज्ञानी, अगीतार्थ, व्याख्यान वांचने के अयोग्य के लक्षण बतलाये हैं उसमें "सूत्र भेद समझे नहीं. चरित्र तणों नहीं जाण ॥ अवसर सभा न ओलखे, ते शुं करे वखाण ॥ १ ॥ योग्य अयोग्य जाने नहीं, जिम तिम दिये उपदेश ॥ पंखिनी सुघरीनी परे, पामे तेह कलेश ॥ २ ॥" इत्यादि अयोग्य पुरुष को हित शिक्षा देनेके प्रसंग में मुंहपत्ति संबंधी भी "मुखे बांधी ते मुहपत्ति, हेठे पाटो धारी ॥ अति हेठी दाढीयह, जोतर गले निवारि॥१॥ एक काने धज सम कही, खंभे पछेडी ठाम ॥ केडे खोशीते कोथली. नावे पुण्य ने काम ॥२॥" यह दो गाथा कही है सो इन गाथाओंसे हमेशा मुंहपत्ति बांधना कभी साबित नहीं हो सकता क्योंकि इन गाथाओं में अज्ञानी प्रमादियों को उपदेश देते हुए कहा है कि मुंहपत्ति को कोई तो मुंहपर बांधलेता है. कोई पाटे की तरह मुंह से थोडी नीचे कर लेता है, कोई डाढी पर रखता है, कोई गले में जोतर (झूसर) की तरह लटकाता है. कोई ध्वज की तरह एक कान पर लटकाता है. कोई थैली की तरह कमर में खोस लेता है. कोई चद्दरकी तरह खंभे (स्कंध) पर रख लेता है. इस प्रकार मुहपत्ति को मुहपर बांधने से व थोडी नीचे रखने से मुहपत्ति पुण्य के काम में नहीं आती, यानी- जिनाज्ञा में नहीं है।

११६. देखिये ऊपर के लेख में मुंहपत्तिकी बांधना निषेध करके बांधने वालोंको अज्ञानी ठहराये हैं, इसलिये आगे पीछेका संबंध छोड कर बीचमें से थोडासा बिना संबंध का अधूरा लेख बतलाकर उसका उलटा अर्थ कर के हमेशां मुंहपत्ति बांधने का ठहराना बडी भूल है।

११७. फिर भी देखो विचार करो "हित शिक्षा" के रास को बनाने वाले ऋषभदास जी श्रावक हाथ में मुंहपत्ति रखने वाले थे, उनके गुरुजी भी हाथ में मुंहपत्ति रखने वाले थे तथा उनकी श्रद्धा भी हाथ में मुंहपत्ति रखने की थी, इस लिये मुंह की यत्ना करने के लिये हाथ में मुहपत्ति रखने का निषेध नहीं किया किन्तु बांधने का निषेध किया है और ऊपर की गाथा मुजब ढूंढिये ही मुंहपत्ति को मुंहपर बांधते हैं, तथा किसी को कभी छींक आवे तब नाक में श्लेष्म आता है उस को साफ करने के लिये कोई मुंहपत्ति को थोडी नीचे कर लेता है, तथा कोई दवाई लेने के लिये या जल पीने के लिये कोई मुंहपत्ति को खींच कर डाढी पर नीचे कर देतेहैं, कोई डाढीके भी नीचे गलेमें व कोई ध्वज की तरह एककान पर लटका लेते हैं, इस तरहसे ढूंढिये ही मुंहपत्तिकी विटंबना करतेहैं यह बात प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध है और हमनेभी हमारे कई ढूंढिये मित्रों को ऐसे करके दवा या जल पीते देखाहै और मुंहपत्ति का डोरा छोडकर ढूंढियों के साधुपने को झूठा जानकर त्याग करके शुद्ध संयम लेने वाले बहुत साधु यह बात खुलासा पूर्वक कहते हैं कि-हमको फजर में दूध वगैरह लेते समय या सुपारी वगैरह खाते समय, दवाई लेते समय तथा रोगादि कारण से सरदी लगजाती तब नाकका श्लेष्म साफ करने के लिये और मुंह की लाल या कफ वगैरह बाहिर फेंकनेके लिये, यत्र दबा कर काई वस्तुको ऊंची-नीची करनेकी तरह अथवा नाटक के परदेकी तरह बारबार हमेशा दिनमें १०-२० दफे ऊपर लिखे प्रमाण मुहपत्तिका विटंबना करनी पडतीथी सो इस विटंबनाको हमने ता छोडदिया, इसलिये ऊपर की गाथा खास ढूंढियाके लियेही रासके किसी लेखकने बनाईहै, क्योंकि कोईभी संवेगी साधु मुहपत्ति बांधी रखता नहीं तथा दवा या जल पीते समय मुंहके नीचे डाढी या गले में या एक कान वगैरह पर लटकाताभी नहीं और यह कार्य ढूंढिये प्रत्यक्ष करतेहैं, ढूंढियाको ऐसा करनेका निषेध करनेके लिये ही रूपकालंकारमें ढूंढियों

का उपहास करते हुए ऐसी गाथा बनाई हैं इसलिये मुंहपत्ति बांधने का निषेध करने वाली गाथाओंका भावार्थ समझे बिना ऐसी गाथाओं को देखकर मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेवाले ढूंढियोंकी बडी अज्ञानताहै।

---

२०० ढूंढिये कहतेहैं कि नाककी हवा से जीव नहीं मरते इस लिये हम नाक खुला रखतेहैं यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष मिथ्याहै, क्योंकि देखो-"आचारांग" सूत्रमें उश्वासलेते, निःश्वास लेते, छींककरते नाक मुंह दोनों ढकलेना कहाहै, तथा 'आवश्यक' सूत्रमें भी कायोत्सर्गमें यदि खांसी, छींक, आदि आवें तो उसकी यत्ना करनेके लिये हाथ उठाकर नाक-मुंह दोनोंके आगे रखनेका कहाहै. इसके पाठ पहिले लिख चुकेहैं, इस प्रमाणसेभी नाकसे जीवोंकी हानि होना आगमप्रमाणानुसार प्रत्यक्ष सिद्धहै।

२०१ फिरभी देखिये-सोतेसमय, चलतेसमय या जोरसे कार्य कर ते समय नाकके छिद्रोंसे इतना वेगसे जोरका श्वासोश्वास निकलताहै कि कभी २ श्वासके झपाटे से नाकके अन्दर डांस-मच्छर-मक्षिका, आदिजीव घुस जाते हैं, यह प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध जगत् प्रसिद्ध बातहै इसलिये सिद्धहुआ कि नाककी हवासे भी जीव अवश्य मरतेहैं, यदि ढूंढियोंको जीव दयासे प्रीति हो तो नाकपर अवश्य मुंहपत्ति बांधें, जिसपरभी नाककी हवासे जीव नहीं मरनेका कहकर नाककी यत्ना करने का उडा देतेहैं, सो प्रत्यक्ष आगम विरुद्ध होकर मिथ्याभाषण कर के असंख्य जीवोंकी हानिके पापके भागी बनतेहैं।

---

२०२ ढूंढिये कहतेहैं कि"पन्नवणा"सूत्रमें लिखाहै कि भाषा वर्गणा के पुद्गल मुंहके अन्दर रहें तबतक चार स्पर्शवाले होतेहैं परन्तु जब मुंहके बाहिर निकलें तब आठ स्पर्शवाले होकर वायुकायके जीवोंका नाश करतेहैं इसलिये वायुकायके जीवोंकी रक्षाके लिये हमलोग हमेशा मुंहपत्ति बांधतेहैं, यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि देखो- 'पन्नवणा' सूत्र वृत्तिसहित छपेहुए पृष्ठ २६१ में ऐसा पाठहै—

"जाइं भावतो फासमंताइं गेण्हति ताइं किं एगफासाइं गेण्हइ, जाव अट्ठफासाइं गिण्हति? गोयमा! गहणदव्वाइं पडुच्च णो एगफा-

दूर रहा किन्तु सर्वथा मुंहके आगेभी कभी नहीं रखते, और जब धर्मदेशना देतेहैं, तब एक योजन (चारकोस) के प्रमाणमें देव, मनुष्य व तिर्यंच पशु, पक्षी आदि सबके सुननेमें आतीहै और ढूंढियोंके कथनानुसार भाषा वर्गणाके पुद्गल मुंहके बाहिर निकलनेसे आठ स्पर्शवाले होकर यदि वायु कायके जीवोंकी हानि करते होवें तब तो तीर्थंकर भगवान् बहुत वायुकायके जीवोंकी हिंसा करने वाले ठहरेंगे, ढूंढियोंकी दया तो तीर्थंकर भगवान्से भी बहुत ज्यादा बढगई, सो आप खुद मुंह बांध कर दया पालने वाले बनतेहैं और तीर्थंकर भगवान् को हमेशा खुले मुंह बोलने से वायु कायके जीवोंकी हिंसा करने वाले ठहरातेहैं, बडे अफसोस की बातहै कि ढूंढियोंमें कैसी अज्ञान दशा फैली हुईहै सो तीर्थंकर भगवान्की अवज्ञा करने वाली कुयुक्ति करनेमें संकोच नहीं करते हैं, शास्त्रोंमें तीर्थंकर भगवान् की भाषा को एकान्त निर्दोष बतलाया है. इसीसे साबित होताहै कि भाषाको आठ स्पर्शवाली कहकर वायु कायके जीवोंकी हिंसा करने वाली ढूंढिये ठहराते हैं सो प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्ध है।

२०६ यहांपर कोई शंका करेगा कि तीर्थंकर भगवान् मुंहपत्ति नहीं रखते हैं उसी तरह हमलोग भी मुंहपत्ति न रक्खें तो क्या दोष है. इसबात का समाधान ऐसा है कि- भगवान् का आचार अगोचर है वह तो कल्पातीतहैं तथा रागद्वेष मोह प्रमाद वगैरह दोष नाश करने वालेहैं छद्मस्थ अवस्था में भी सदा अप्रमादी रहतेहैं व अवधिज्ञान होनेसे उपयोग वंतभी रहतेहैं, और हमेशा काउसग्ग ध्यानमें मौन रहते हैं व कभी बोलनेका कामपडे तोभी उपयोग से निर्वद्य भाषा बोलते हैं इसलिये रजोहरण- मुंहपत्ति वगैरह कोई भी उपकरण नहीं रखते और अपन लोग राग द्वेष मोह कषायादि दोष सहित प्रमादी हैं और समय २ भूलने वाले,हैं इसलिये जीवदया वगैरह के लिये रजोहरण मुंहपत्ति वगैरह उपकरण रखने पड़ते हैं। दूसरी बात यह भी है कि- भगवान् तीर्थनायक हैं जब सर्वज्ञ होते हैं तब धर्म देशना देते हैं सर्वज्ञकी भाषा सर्वथा निर्दोषहोतीहै और अपने को भगवानकी आज्ञा मुजब चलना पडताहै परन्तु भगवानकी देखादेखी कभी नहीं करसकते और भगवानने सबसाधु- साध्वियोंको रजोहरण- मुंहपत्ति वगैरह उपकरण रखनेकी आज्ञादी है इसलिये अवश्यही रखने चाहिये इतने परभी जो कोई अभी भगवान् की देखा देखी मुंहपत्ति न रक्खेगा वह भगवान की आज्ञा का उत्था-

बनजाते हैं, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधने का रिवाज बहुत बुरा होने से अवश्य त्याग करना उचित है। और बोलने के समय मुंह के आगे मुंहपत्ति रखने से उसमें खुली हवा जाती आती रहती है उससे दुर्गंध वाले खराब पुद्गल उडजाते हैं उससे मुंहआगे मुंहपत्ति रखने से उपर के दोष नहीं आसकते, इससे सिद्धहुआ कि हमेशा मुंहपत्ति बांधना छोडकर हाथ में रखना और जब बोलने का कामपडे तब मुंहआगे रखकर यत्नासे बोलना योग्य है।

---

२११ ढूंढिये कहते हैं कि–'अवतार चरित्र' में हमेशा मुंहपत्ति बांधना लिखा है, यहभी प्रत्यक्ष झूठ है. क्योंकि देखो–'अवतार चरित्र' में जैनसिद्धांतों का तथा जैन–बौद्धकी भिन्नताको समझे बिना २३ वें बुद्धावतार के चरित्र में कई तरह की जैनधर्म की कुछ बातें लिखी है, और जैसे अपने लोग रजोहरण कहते हैं, उसको कई अन्य दर्शनीय लोग झाडु, बुहारी या पुंजिका कहते हैं और अपने लोग मुंहपत्ति-मुखवस्त्रिका कहते हैं उसको कई अन्य दर्शनी मुखवस्त्रि या मुखपट्टि कहते हैं उसी तरह से बुद्धचरित्र में भी 'अवतार चरित्र' के छपे हुए पृष्ठ ४१६ में "सब श्रावक पोसा दिवस रात्रि॥ मुखपट्टि कर आरंभ उपाधि" इस वाक्य में श्रावकों के पौषध करने संबंधी मुखपट्टि (मुंहपत्ति) बतलाया है, मगर मुखपट्टि मुंहपर बांधी रखने का नहीं लिखा इसलिये 'अवतार चरित्र' के नाम से हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराना बडी अज्ञानता है।

---

२१२ ढूंढिये कहते हैं कि "षड् दर्शन समुच्चय" नामा ग्रंथ में हमेशा मुंहपत्ति बांधने का लिखा है, यह भी प्रत्यक्ष झूंठ है. देखो- मलधारि श्री राजशेखर सूरिजी विरचित "षड्दर्शन समुच्चय" ग्रंथ के छपे हुए प्रथम पृष्ठ में ही जैन दर्शन संबंधी 'सब जैनानां लिङ्गं, रजोहरण मादिम्॥ मुखवस्त्रं च वेषश्च [illegible]' यह श्लोक कहा है इस श्लोक में जैन साधु का लिंग रजोहरण व मुखवस्त्रिका कहा है तथा [illegible] दिखलाया है इस में मुखवस्त्रिका का नाम बतलाया है मगर मुंहपत्ति को मुंहपर बांधने का नहीं बतलाया इसलिये 'षड्दर्शन समुच्चय' के नाम से हमेशा [illegible] बांधने का ठहराना प्रत्यक्ष मिथ्या बात है।

---

२१४ अब आत्मार्थी भव्य जीव सत्य बातको ग्रहण करनेवाले सज्जन पाठक गणसे मेरा इतनाही कहनाहै- कि ढूंढियोंकी तरफसे हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराने बाबत आजतक जितनी पुस्तकें छपी हैं उसमें जिस २ शास्त्र का नाम लेकर और झूठीमूठी कुयुक्तियें लगा कर हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहरायाहै उन्ह सर्व शास्त्रोंके पाठों के साथ और सर्व कुयुक्तियोंके समाधान सहित मैंने इसग्रंथमें हमेशा मुंहपत्तिबांधीरखनेका नयारिवाज सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध साबित करके बतलाया है तथा हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने में अनेक दोषभी बतला दियेहैं और मूल आगमप्रमाणानुसार मुंहपत्ति हाथ में रखनेका सिद्ध कियाहै, सो जब बोलने का कामपड़े तब मुंहआगे रखकर यत्नापूर्वक बोलना यही अनादि मर्यादाहै, यही जिनाज्ञा है, और यही युक्तियुक्त सत्य बातहै, इसलिये अब जो आत्मार्थी होगा सो इस ग्रन्थको पूरा २ अवश्य बांचकर सत्य असत्य का निर्णय करके दृष्टिराग, लोक लज्जा व गुरुपरंपराका झूठाआग्रह को छोडकर अपने आत्मकल्याण के लिये जिनाज्ञानुसार सत्य को अवश्य ग्रहण करेगा. मेरा विचार इस ग्रंथ में जिन प्रतिमा के दर्शन- पूजन करनेकी रीति व उसका लाभ तथा चैत्य विवादका निर्णय और दंडा, धोवण, बासी, विदल, आचार, कंदमूल, अनुधर्म, रात्रिजल वगैरह विषयों संबंधी इस जगह खुलासा लिखने का था परन्तु यह ग्रंथ बहुत बढगया इसलिये यहां नहीं लिखता, इस ग्रन्थ की जाहिर उद्घोषणा में थोडा २ लिखूंगा, और विशेषतासे "श्रीजिनप्रतिमाको वंदन-पूजन करने की अनादि सिद्धि" नामाग्रंथ में लिखने में आवेगा. वहां से पाठकगण इन सर्व बातोंका निर्णय समझ लेंगे। इति शुभम्.

श्रीवीर निर्वाण सं० २४५१, विक्रम सं० १९८२ आषाढ कृष्ण २ मंगलवार.

हस्ताक्षर-परमपूज्य परमगुरु शांतमूर्ति श्रीमन्महोपाध्यायजी श्री १००८ श्रीसुमतिसागरजी महाराजके चरणकमलोंका सेवक पं० मुनि-मणिसागर.

ठिकाना जैन धर्मशाला, राजपूताना, मु- कोटा.

॥ इति श्रीआगमानुसार मुंहपत्तिका निर्णय नामाग्रन्थ समाप्तः ॥

इस ग्रंथको छपवाने संबंधी द्रव्य सहायक महाशयोंके नाम.

रु० ५०१) श्रीयुत, सेठजी गणेशदासजी हमीरमलजी,
१५१) श्रीयुत, सेठजी पानाचंदजी उत्तमचंदजी,
१०१) श्रीयुत, एक गुप्त श्रावक,
१०१) श्रीयुत, देवराजजी प्यारेलालजी जिन्दाणी,
१०१) श्रीयुत, गुलाबचंदजी सोभागमलजी मुथा,
१०१) श्रीयुत, हिम्मतरामजी जुहारमलजी सिंघवी,
१०१) श्रीयुत, चंदनमलजी रीखबदासजी लुणीया,
१०१) श्रीयुत, सीरेमलजी मूलमलजी सिंगी,
१०१) श्रीयुत, जयचंदजी तेजमलजी मालू दलाल,
६१) श्रीयुत, फतेराजजी गजराजजी मुणोत,
५१) श्रीयुत, भेरूदानजी केशरीमलजी मालू,
५१) श्रीयुत, सोभागमलजी सांकला,
५१) श्रीयुत, सूरजमलजी बागचार,
२५) श्रीयुत, मुनीमजी बालुरामजी चौबे ब्राह्मण,
२५) श्रीयुत, शेरसिंहजी ओंकारसिंहजी कोठारी,
२५) श्रीयुत, चिन्तामणदासजी, बरड़ियारी धर्मपत्नी,
२५) श्रीयुत, वृद्धिचन्दजी डाकलिया,
२५) श्रीयुत, मोतीलालजी भणसाली,
२५) श्रीयुत, समीरमलजी कल्याणमलजी बोथिरा,
२५) श्रीयुत, दौलतराम जी फतेचंद जी अग्रवाल,
२१) श्रीयुत, पन्नालालजी बारां वाले की धर्म पत्नी,
१५) श्रीयुत, मघमलजी प्यारचन्दजी जौहरी,
१५) श्रीयुत, छगनमलजी मोतीलालजी बाफणा,
११) श्रीयुत, सूरजमलजी जुगराजजी बाफणा,
११) श्रीयुत, जेठमलजी चांदमलजी पारख,
११) श्रीयुत, [illegible] पारख,
११) श्रीयुत, [illegible] चिन्तामणदासजी बरड,
११) श्रीयुत, [illegible] समदड़ीया,
११) श्रीयुत, गोविंदसिंहजी डांगी,
७) श्रीयुत, [illegible] भंडारी,
५) श्रीयुत, हीराचन्दजी [illegible] मुथा,
५) श्रीयुत, [illegible] पारख,
५) श्रीयुत, [illegible] जेठमलजी पारख,